TEXT FLY
WITHIN THE
BOOK ONLY

UNIVERSAL LIBRARY
OU_182163
UNIVERSAL LIBRARY

काला पानी

[श्री. ईश्वर पेटलीकर के प्रसिद्ध उपन्यास 'जनमटीप' का अनुवाद]

अनुवादक

आ. विभूदेव

वोरा अेन्ड कंपनी, पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड,

३, राउन्ड बिल्डिग, कालबादेवी रोड, बंबई २. भव्यता

प्रथम आवृत्ति
१६५६

मूल्य रु० ३)

मुद्रक : मणिलाल टी. शाह, लिपिका प्रेस, कुर्ला रोड, अन्धेरी ।
प्रकाशक : एम० के० वोरा, वोरा एन्ड कम्पनी, पब्लिशर्स प्राइवेट लि०,
३, राउंड बिल्डिंग, कालबादेवी रोड, बम्बई-२

दो शब्द

प्रेमी पाठकों की सेवा में गुजराती के 'जनमटीप' उपन्यास का हिन्दी रूपान्तर 'काला पानी' प्रस्तुत करते हुए मुझे हार्दिक आनन्द प्राप्त हो रहा है। प्रस्तुत उपन्यास गुजराती साहित्य के सुविज्ञ साधक श्री ईश्वर पेटलीकर की उत्कृष्ट सामाजिक रचना है।

इस पुस्तक में लेखक ने एक कृषक परिवार की जागरुक कथा का सद्ग्रथन किया है; अबला समझी जानेवाली एवं नीच मानी जानेवाली एक वीरांगना का सजीव चित्रण किया है। कथोपकथन की भाव-भूषा मनोहारिणी तथा मधु-धारिणी तृप्तकारिणी है।

आद्योपान्त पुस्तक में कहीं भी उपन्यास-कला के नाम पर चलनेवाली अश्लीलता का नाम भी नहीं है। साहित्य-सफल साधक की पैनी सूझ-बूझ ने निस्सन्देह पाश्चात्य भावना से भरे युवक युवतियों को पथ-प्रदर्शन दिया है। इन्हें स्त्रीत्व पुरुषत्व की मान-मर्यादा के उत्तुंग श्रृङ्ग तक पहुँचाया ही नहीं है किन्तु आदर्श की सफल समाप्ति का रुचिर रूप बिखेर कर रख दिया है।

तभी तो इस प्रसिद्ध उपन्यास को गुर्जर प्रदेश के आबाल-वृद्ध बड़े चाव और उत्साह से पढ़ते दिखते हैं, समानरूप से अपने अपने मनभावने चरित्र-चित्रणों से श्रव्य एवं दृश्य काव्य का अमन्दानन्दामृत पान करते हैं।

इस संक्रान्ति काल की सांस्कृतिक संघर्ष वेला में सत्साहित्य से ही जातीयजीवन समुन्नत, स्वच्छ और स्वस्थ्य होता है। साहित्यकार की यही तो सफलता है कि उसे अपने साहित्य में सर्जन की स्पष्टता झलकती दीखती हो, उसके पात्रों की भाषा और भावना में भव्यता

की प्रतिभा पूगती हो, पवित्रता पनपती हो, पारणा पजलती हो।

यदि साहसिक घटना में सत्साहस, सदाचार एवं सौमनस्य का मेल नहीं है तो व्यर्थ हैं सारे प्रयास; इससे तो समाज की स्वच्छता, स्वस्थ्यता समाप्त होकर अव्यवस्था व अस्वच्छता आ जाती है, देश-जाति की उन्नति पिछड़ जाती है।

पाठकों को उपर्युक्त भावों की पूर्णता इस उपन्यास में प्राप्त होती है। इसी लोभ से हमें इसको रूपान्तरित करके राष्ट्रभाषा की समृद्धि में पत्र-पुष्पम् सर्मापित करना पड़ा है।

पुस्तक का सौंदर्य अनुवाद करते समय अक्षुण्ण रख कर बढ़ाने का ही यत्न किया गया है।

आप पुस्तक पढ़कर स्वयं को खोने से न बचा सकेंगे, हमारा यह विश्वास पूर्ण होगा, एक बार पढ़कर देखिये तो। जय भारती, जय राष्ट्रभाषा।

—अनुवादक

प्रवेशक

देखने के लिए आँखें हों, सुनने के लिए कान हों, एवं स्वानुभूति की रत्ती भर कमाई को भी रसायन बनाने की जिसके पास कला है, वही सच्चा सर्जक है; भले ही वह नवीन हो या लघु हो। गुर्जर भूमि तीव्र गति से हुँकार मारती हुई उठ रही है, खड़ी होती जा रही है। अपना ही क्यों! भारत के तो प्रत्येक प्रदेश के कण कण में जीवन धारा प्रवाहित हो रही है। गुजरात का लोकसमाज स्वयं की सत्य-कला-चित्रण की बाट जोह रहा है गाँव गाँव में गतियों के साथ। किन्तु अधिकांश लेखनियाँ इस ओर अक्षयकोष का पुनीत पात्र नहीं भर पातीं। क्योंकि लेखनी के धनी कलाकार या तो छोटे बनकर उच्च वर्ग की मिथ्या पोच सृष्टि में दब गए हैं, अथवा जब कभी वे गुजरात के निम्न श्रेणी के श्रमजीवी-समूह की ओर अभिमुख होते हैं तभी शोषक-शोषित, पीड़क-पीड़ित के वादों की भूमि पर उतर कर, राजनीति की दृष्टि से लिखकर गुजरात के लोकजीवन को घटाते ही रहते हैं, अथवा अपने पात्रों को निज-स्वभाव-आवेश की सीमा में ला खड़ा करते हैं और वाचकों को असद्-जगत् का दर्शन कराते हैं।

अपनी जन्म-भूमि की महक

चौकठे में से मुक्त रहने वाले कोई कोई लेखक तो एकाएक बिदक जाते हैं और स्वयं की अनूभूत, पददलित छोटी सी साधारण प्रजा को अनुप्रमाणित कर के भी कला को जीवित रख पाते हैं। तब गुजरात की धरती पर नूतन आलोक फैल जाता है एवं आषाढ़ की प्रथम वृष्टि से उठी हुई धरो की धूल में से जो मनो मोहक महक उठती है, वही हमें प्रमोद के भार से भर देती है। वही सुगन्ध तो भाई ईश्वर पेटलीकर उठा रहे हैं।

साबर, वात्रक, मही एवं रेवा माता के सारित्तट प्रदेशों में जिन लोगों की बसती है उनमें वकील हो तो छोटी बड़ी कचहरियों में आरोपियों एवं साक्षियों के रूप में अधिकांशतः वे देखने को मिलते हैं, अथवा बहुत हुआ तो साबरमती जेल

में पंक्तिबद्ध प्रविष्ट होते हुए विकृत, बहिष्कृत से धारी चित्रित बन्दीवेश में निष्प्राण समता साधे दीख पड़ते हैं।

पन्नालाल एवं पेटलीकर ने इन लोगों को उनकी धरती माता की धूलि में लोटते, प्रेम तथा रोष करते, छोटे-बड़े सदसद् आवेशों में रंगते, गुप्तवध करते और प्रकाश में हार्दिक दुःख बताते, अपनी विचित्र लगती आन के नाम पर मरते मिटते, राग-द्वेष की तरल-लोल लहरों में लहरातें, मुरदे, नंगे एवं शूरवीरों की शान सजाते, तुच्छ क्षणों के वश में होते, तथा भव्य पलों में समस्त प्राणतत्व धकेलते इन्हें इन्हीं के रूपों में देखकर चित्रित किया है। इनके ऊपर कतई कलई नहीं चढ़ाकर उनके वास्तविकरूप में बिना सुघरता और श्रृंगार सजा के बलात आरोपित नहीं किया कोई भाव चित्र !

कलाकार का भिन्न लक्षण

'जनमटीप', यानी हिन्दी 'काला पानी' की पात्र सृष्टि, पाटण वाडिया नाम से परिचित गुजरात के किसान-ठाकुरों की एक सर्व निम्न उपवर्ण में से की गई है। मार-पीट और लूटफाट के अपराधों के लिए तो यह उप-वर्ण जाति सर्वाधिक प्रसिद्ध है। वंश-परम्परा में उतरे हुए बैर-अदावत तो इस श्रेणी की अपनी विशेषता है। जीते-जागते मनुष्य को इच्छानुसार मार-काटकर भूजभाजकर लापता करने में भी ये सब से अग्रणी हैं। यह कार्य तो इन्हें बैंगन के भुर्त्ता से सरल लगता है। राजकीय दरबारी पुलिस विभाग में जाकर इन लोगों के रजिस्टर में देखा जाय तो बड़ी विचित्रता दीखेगी इन बेचारों के जीवन में। जिनमें नीरसता, नीरवता एवं निस्सारता के सिवाय और कुछ नहीं है, इस दृश्य से तो दर्शक कम्पायमान हो उठता है। और समाज सेवकों को भी इन्हें सुधारने के लिए इनमें जाने से पूर्व कुछ सोच समझकर निश्चय करना पड़ेगा।

किन्तु कलाकार का प्रतीक तो थानेदार, न्यायाधीश, जेलर या समाज सुधारक के ध्येय से सर्वथा पृथक है। यह ध्येय मानव-मात्र के बहिरंग की यवनिका को भेदकर उसके अन्तरंग में उतरकर उसकी मानवता का हार्द ग्रहण करने में ही पूर्ण होता है। 'जनम-टीप-काला पानी' में यह मानवता विकसित एवं पोषित हो रही है। 'काला पानी' का लेखक इसी ध्येय-पूर्ति के लिए

ही तो इन मानवों के हार्द ग्रहण के लिए सीधे इनके जीवन-लीलाधाम अर्थात् खेतों में प्रविष्ट होता है। क्योंकि जीवन-लीला की मदभरी तरुणाई को पकड़ने के लिए तो इनके घर बहुत संकीर्ण और छोटे हैं, और शयन कक्ष तो रुद्ध हैं।

कुतूहल का उद्दीपन

शरदातप की भीषण काला कर देनेवाली धूप की एक विहान में इस कथा का श्री गणेश हो जाता है, एवं ठीक एक वर्ष के बाद उन्हीं दिनों धधकते हुए नक्षत्र की धूप के नीचे चलती हुई कटाई के बीच में इसकी पूर्णाहुति होती है। उमड़ते यौवन के प्रेम-हिंडोले में झूलते हुए वरवधू-भीमा और चन्दा के फड़कते लहकते तूफ़ान की ठेठ अगली प्रभात तक की प्रणयलीला का सुरभित रंगीला ख्याल देकर लेखक कथा का प्रारम्भ एक अपशकुनी दिन से करने लग जाता है। घर से भोजन लेकर चन्दा खेतों में आने वाली है, उसकी प्रतीक्षा की हद हो जाती है, आस-पास के सभी खेतिहर भोजन करके दुबारा काम पर लग जाते हैं, अपने माँ-बाप के साथ भीमा भी भूख के मारे चन्दा के अनचीते विलम्ब की भूमिका खोजते है, सब्र-सन्तोष सीमा लँघ जाती है, प्रेम का पुतला भीमा फिर विफर जाता है, माँ की तीखी वाग्बाण वर्षा से आहत हो जाता है। लेखक इन दोनों चित्रों में ग्रामीण श्रमजीवी जनता की यथार्थ स्थिति को सम्यक्तया निरूपित कर देता है और पलक मारते ही पाठकों को भीमा की परेशानियों से पड़ने वाली लाठी के दो हाथ चन्दा की देह पर सुनाई देते हैं। आगामी दिन तक सुकुमार प्रणय लीला की जो पार्श्वभूमि अपने अन्तर पर छा जाती है, उसके मध्य में इस लाठी-प्रहार से जर्जरित हुई प्रथम गर्भालोक सुन्दरी की सुन्दर सुकोमल देह एक ओर लथड़ जाती है, तो दूसरी ओर से 'मार, अभी और मार लेना। क्यों रुक गया है ?' ऐसा कहती हुई इस नारी के अन्तिम बोल, 'तुझसे और होने ही वाला क्या था ?' ये शब्द कुतूहल की पराकाष्ठा पैदा कर देते हैं।

चन्दा कलाधरी है

इस कौतुक को शान्त एवं अधिक सतेज करनेवाला रहस्य रोटी खाते खाते प्रकट होता है। पूँजा बोमरोलिया नाम के एक गुण्डे ने नदी से पानी का घड़ा

लाती हुई चन्दा के रूप एवं ·यौवन की मजाक की। इस बात का स्फोटन बहू सशक्त कुशल कलाकार के अभिनय से शनैः शनैः करती है। ऐसा कहते समय उसके प्रत्येक शब्द में से एक ही ध्वनि निकलती रही : 'जिसका पति निर्बल होता है, उसी की पत्नी के परिहास और छेड़खानी किये जाते हैं।'

भीमा के गम्भीरतम मर्मस्थानों का भेदन करनेवाले ये स्त्री के कठोर बोल कलाकार ने बिना उतावल के और बिना कृत्रिमतावश हुए लेखनी के स्थिर आधिपत्य को व्यक्त किया है।

उसी दिन की रात में बिस्तरे में पड़े जाने दोनों को नींद के स्थान पर अपमान के मर्मस्थल वेधक कण्टक चुभ रहे हैं, चन्दा ने विवाह करने से प्रथम ही भीमा से शर्त की थी : 'मैंने साँड नाथा है यह बात मैं कभी नहीं सुनाऊँगी, न ही, इस बात का अपमान ही प्रदर्शित करूँगी। मैं डाभी की लड़की मिट कर वारेचा की 'बहू' बनना चाहती हूँ, किन्तु तुम्हें भी मेरे अपमान का बदला प्राणों की बाजी लगा कर लेना होगा।' इस शर्त की स्मृति सुलगाकर चन्दा ने तब तक भीमा के घर न रहने की बात कही, जब तक अपमान का बदला नहीं लिया जाता और उसने प्रभात की किरणों के पदार्पण के साथ ही अपने पीहर चले जाने की घोषणा कर दी। और वह यह भी बोली : 'भीमा ! यदि आजीवन मेरे लौटने का समय न भी आया तो एक बात याद रखना कि चन्दा के हाथों में अन्तिम साँस तक चूड़ियाँ तो तेरी ही रहेंगी।'

पूर्वेतिहास की पार्श्व भूमि

चन्दा की यह अलविदा हमारे हृदयों को ऊँचा उठा देती है, और हमारे कुतूहलों को यह जानने के लिए तीव्र करती है कि उस शर्त का क्या रहस्य है। इस मानिनी का पूर्वेतिहास कैसा है ! और इस दर्प के पीछे कौन सा प्रताप छिपा है, गुप्त है, लेखक इस इतिहास को बाद में प्रकट करता है। रयजी पाटणवाड़िया की सबसे अन्तिम सन्तान चन्दा, जिसमें बाप की तरुणाई का जोश एवं जोर उतर आया था, जिसकी पैनी नुकीली आँखें धूर्षित साभिमानमुख अभिमान

भरी सुघर नाक, अकड़ी हुई उन्नत ग्रीवा, वस्त्राबन्धन में बँधा नितरता हुआ यौवन छलाँगे मार कर चलती चन्दा का फटाक फटाक होता हुआ घाघरा, और इन सब से भी परे लाल रंग की ओढ़नी में शोभायमान इसका गन्दुभी देह प्रत्येक के हृदयों को खींच लेता था। उसने एक दिन गाँव के मदमस्त साँड़ को साहस एवं सुध से नाथकर गाँव के मरदों का पानी उतार दिया था। इस असाधारण पराक्रम ने चन्दा को विवाह के लिए भीषण बना दिया था। इसने एक रोगी क्षीणदेही लड़के की सगाई को छोड़ दिया था; उसने रामदेव पीर के मेले में जात के सभी युवकों को सौन्दर्य के घूम चक्कर पर चढ़ाकर खूब तरसाया था, और अन्त में उसकी आँखें मदभरी जवानी की अलमस्ती में झूमते हुए एक युवक पर ठहर गयीं। जिसे उसने शहर में गाड़ी हाँकते समय अपना जीवन सौंपने का निश्चय किया था, पराक्रम की पुतली चन्दा के नयनों में लेखक ने भीमा का जो शौर्य स्थापित किया है, वह भी नैसर्गिक तथा सम्भवित है। गाँवों के कस्बों के नगरों के सँकरे बाज़ारों में ग्रामीणों के किराये की गाड़ियों पर हुकूमत चलाने-वाले पुलिस का चाबुक सहनेवाला भीमा, अगली गाड़ी पर बैठी हुई चन्दा के हृदय में बस गया का। पेटलीकर का सुन्दर प्रसंग, पाठकों की रूचि को पूरा पूरा बढ़ाने लगता है।

तीन ही घटनाएँ

ऐसे भूतकाल की पीठिका पर लेखक ने भीमा-चन्दा का घटना की प्रथम-रात्रि का ही मर्मभेदक-विच्छेद निरूपित किया है, तथा शक्तिशाली पार्श्व-भूमि का चित्रण लघु-सी कथावस्तु को भी सबल बना सका है। इसका सजीवोदाहरण यह 'कालापानी' स्वयं है। इसके बाद की तो केवल दो तीन ही घटनाएँ हैं; गाँव के साहूकार के घर पर आक्रमणकारी डाकुओं का सामना करते हुए भीमा का गम्भीर घायल अवस्था में शहर के हॉस्पिटल में जाना, और इस घटना को सुनकर चन्दा का अपने पीहर से सेवा के लिए चले आना, और इतनी तत्परता से भीमा की सेवा-शुश्रूषा करना कि जैसे कुछ हुआ ही नहीं, और अपने पुनीत प्रणय-सेवा से डाक्टरों को भी चकित कर के भीमा को शीघ्र स्वस्थ कर देना, सास-ससुर के प्रज्वलित रोष को भी पीकर कार्यरत चन्दा का संयमित व्यवहार,

एवं अन्त में अस्पताल छोड़ने के समय सबको दिङ्मूढ़ कर के चन्दा का पीहर लौटना; चन्दा के मायालु हार्द को प्रकट करनेवाला यह एक प्रसंग; और दूसरा प्रसंग पूँजा बामरोलिया गुण्डे को रात में ही खेत में जान से मारकर काला-पानी जानेवाले पति-श्वसुर की अनुपस्थिति में तुरन्त चन्दा का अपने ससुराल में पहुँच कर नष्ट होते हुए शेष संसार का सूत्र-संचालन अपने हाथों में लेकर पड़ोसियों को आश्चर्य में डाल देनेवाला प्रसंग, इन दोनों घटनाचक्रों के मध्य में प्रवाहित यह वार्ता-प्रवाह इस जात के सांसारिक वातावरण को जहाँ एकतः सुष्ठुता से सँभार रहा है वहाँ द्वितीयतः चन्दा के चरित्र की असीम रेखाओं को भी समेट रहा है।

कथा की प्रधान ध्वनि

विवाह की प्रतिज्ञा का पति ने पालन किया है, अतएव फिर तो कभी चूड़ी न बदलनेवाली चन्दा, निज अरमान की सुगन्धि को महकाती कभी भी न लौटने-वाले पति की ओढ़णी का धर्म पालती है, छोटे छोटे ननँद देवरों की अनाथता को सनाथ बनाती है, मृत्यु-मुख में गयी हुई सास को संजीवनी पिलाकर खड़ी करती है, और जिस खेत की शस्यश्यामला धरती पर इस वार्ता का श्रीगणेश होता है, लेखक अपनी सुखद-सुघर लेखनी से उसी शस्यश्यामला धरती पर कथा की समाप्ति कर देता है, बड़ी मोहक अभिनय की अदा से सजीव यवनिका पतन की भाँति। संयोगों के भयंकर संघर्षों के बीच उत्थापित कटाई का यह प्रसंग समग्र-कथा की मुख्य ध्वनि को प्रतिध्वनित कर देता है, जन-धन, ऐहिक प्रेय-श्रेय तो नश्वर हैं; अनश्वर सत्य तो केवल आत्मिक एकनिष्ठा, एवं सत्य स्नेह है।

कलाकार की धीरता

भाई पेटलीकर के हाथ में इनकी रचना का समस्त साधन तो निस्सन्देह असीम है, एवं इस साधन सामग्री की पकड़ में भी भाई पेटलीकर को सम्पूर्ण सफलता मिली है, बाह्यान्तर एक भी जीवन स्थिति इनके हाथों से नही छूटी किन्तु प्राथमिक साधन सम्पन्नता से ही कोई रचनापूर्ण तो नहीं हो पाती, निरा जन

सम्पर्क भी तो सर्जन की शक्ति नहीं दे सकता ? मेरे हाथ में कोई कोमलतम मृत्पिण्ड ही क्यों न दे दे तो भी क्या मैं एक शकोरा भी बना सकूँगा ? स्वयं को अव्यर्थ अभिनय से प्रथक् रखकर परलक्षिता पर अस्थिर रहकर कथानक का संवहन जिस सामर्थ्य से किया गया है, उससे प्रतीत होता है कि यह कुशल कला बिना सुदीर्घ स्वाध्याय के सम्भव नहीं है, अथवा यह योग्यता प्रकृति प्रदत्त है, मुझे इस बात का परिज्ञान नहीं है, किन्तु इनका सफल कथानक, चमत्कृति के तत्त्व को नचाता हुआ एक के बाद एक प्रसंग का कौतुकोत्पादक उद्घाटन, जिन पात्रों को स्वयं हाथ लेता है, उनकी बुद्धि शक्ति की चतु: सीमा को सुरक्षित रखनेवाला पात्र विकास, वार्तालापों की सुरम्यता एवं इन सबको जिसका अभाव निरर्थक बना सकता है उस परमावश्यक कलाकार की धीरता का तत्व, इससे 'काला-पानी' —जनमटीप की रचना उत्कृष्ट तथा समुज्ज्वल बन सकी है। अन्ततः मैं रचनामय बन कर विश्राम लेता हूँ।

झवेरचन्द मेघाणी

★

श्रद्धा

गुजरात ने जिसका सोत्साह अभिनन्दन किया है, ऐसे अपने उपन्यास का हिन्दी स्वरूप देखकर मेरा हर्षित होना स्वाभाविक है। भारत गांवों का देश है और इसका सच्चा दर्शन गांवों के माध्यम से ही हो सकता है। गुजरात के गांव से उठा इस उपन्यास की कथावस्तु का पर्दा किसी भी प्रान्त में उसी रूप में पाया जा सकता है। इस दृष्टि से यह कथा हिन्दी पाठकों को इतर-प्रान्तीय भूमि की वार्ता प्रतीत न होगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

इसके हिन्दी रूपान्तर के लिए मैं श्री आचार्य विभुदेव का आभारी हूँ।

गुजराती पाठकों की भांति हिन्दी के पाठक भी इसे स्वीकार करेंगे ऐसी मेरी श्रद्धायुक्त मान्यता है।

२५-४-५६
आणंद (गुजरात)

ईश्वर पेटलीकर

: १ :

मालिक

आज उठते ही न जाने किस कमबख्त का मुँह देखा होगा कि सबेरे-सबेरे ही भीमा को अपशकुन हो गया। प्रतिदिन की भाँति पिता के साथ खेत में जाने की तैय्यारी करके देहली से बाहर जाने के लिए उसने पैर रखा ही था कि चन्दा भी कन्धे पर रस्सी और हाथ में दराँती लिये पीछे चलने की तैय्यारी करने लगी। किन्तु माँ की आवाज सुनते ही भीमा का देहलीज से बाहर रखा हुआ पैर जहाँ का तहाँ रह गया।

'बहू ! आज मैं जा रही हूँ। तू रात के सारे कामकाज से निबट कर दोपहर में रोटी लेकर आ जाना।'

हाथ की दराँती फिर से दीवार में रख कर चन्दा ने कहा: 'अब तो तू ज.. न यहाँ से।'

ऐसा आँखों से इशारा किया ही था कि भीमा 'जल्दी आना' ऐसा कहने के लिए उसकी ओर ताकने लगा।

भीमा की उतावली की परवाह न करते हुए, चन्दा ने नाक फुला कर अँगूठा दिखाया और चुपचाप आकर घर में घुस गयी कहते हुए: 'जल्दी आवे मेरी बला।'

'देखूँगा, तू कैसे जल्दी नहीं आयेगी।' ऐसी प्रभुता की अनादर सूचक दृष्टि से देख कर भीमा आगे बढ़ते हुए बाप के पीछे जल्दी-जल्दी हो लिया।

संयुक्त परिवार के तरुण दम्पती को जो छूट केवल रात में शयनागार में ही मिलती है, वह स्वतन्त्रता भी छोटे संकुचित एक दो कमरों वाले घर में चन्दा और भीमा को सुलभ न थी। वहाँ तो माँ-बाप, भाई-बहन पास के कमरे में सोते, इसलिए चोर की तरह 'चुप रह, कोई सुन लेगा' ऐसी मर्यादा से उमंगभरी जवानी की चिनगारियों को दबा कर एक दूसरे की आड़ में दोनों को चुपचाप छिप जाना पड़ता था। परन्तु उभरती जवानी क्या ऐसे शान्त बैठ सकती है ? इसलिए मस्तानी प्यार की कारगुजारी जैसे ही प्रकट होने को होती वैसे ही झूठी-झूठी खाँसी के बहाने से उसे ढकने का प्रयत्न होने लगता।

इतने पर खुल कर खेलने का मौका तो इन्हें खेतों में ही मिलता था। माँ घर के कामकाज से निबट कर दुपहरी में खेत आती थी। अपने पुराने अनुभव

मे सव कुछ जानता हुआ बाप जहां तक बनता उन दोनों को अलग काप करने का सुभीता सदा देता रहता था । तो भी इतने से जैसे वे दोनों मन खोल कर न मिल पाते हों यह समझ कर बूढ़ा: 'अच्छा में जरा बेकार भगत की कुटिया से आग ले आऊँ' कह कर वहाँ मे टल जाता था, और घण्टे दो घण्टे से पहले कभी नहीं लौटेगा, यह सोच-समझ कर दोनों उस समय का मदुपयोग करने से नही चूकते थे।

बहुत बार तो एक दूसरे को पकड़ने के लिए वे दाव खेलते थे, अन्त में थक कर या जानबूझ कर चन्दा पकड़ में आ जाती, तो जाने भागता हुआ शत्रु हाथ लग गया हो, इतने विजयोल्लास से भीमा चन्दा को नीचे पटक कर ऊपर चढ़ बैठता था । और दोनों कनपटी पकड़ कर चन्दा के चन्दा से गुलाबी गालों के ऊपर चुम्बन करता। पूछता: 'बोल भागेगी कभी ?' तब नीचे धरती की गोद में पड़ी-पड़ी पति के बलात्कार और प्रेमभार को उठाती चन्दा भीमा को उलटने का प्रयत्न करने लगती थी । इस समय इसके हृदय में जो मद की मादकता लहरी नाचती उसकी निश्चित है कि कोई भी वैज्ञानिक थाह न पा सकता । एक दो मन की रुई की रजाई में छिप कर प्रणय-क्रीड़ा करते प्रेमियों में भी इतनी मिठास शायद मिलती होगी ? जिसका अमन्दानन्द इन्हें प्रकृति के प्रेमल पावन वातावरण में आ रहा था।

भीमा चन्दा से कमजोर न था, जो उसकी ताकत से उथल जाता, वह तो उसकी उथलाने वाली टाँगों में मीठी चुटकी काटने लग जाता था, पर इसका मतलब यह नहीं है कि चन्दा उसे छोड़ देती थी, वह भी खूब मार मारती थी, किन्तु उन दोनों की मारें मारें न होकर मार की मार्मिक मर्माहत मार थी, जिसकी मार से शायद ही कोई बच पाता होगा ? कभी-कभी तो चन्दा भीमा की प्रेमार्द्र पीड़ा से बचने के लिए भीमा को गुदगुदाने लगती, तभी भीमा की मजबूत पकड़ शिथिल पड़ जाती, वह मुक्त हो जाती ।

उन दोनों प्रणयियों का यह घण्टा डेढ़ घण्टा ऐसा बीत जाता था कि इन्हें भान भी न हो पाता था । जब उन्हें सुध आती बूढ़े की खाँसने की आवाज कानों में आने पर, या माँ बुढ़िया के रोटी लाने की जल्दी की दूर की आवाज से । झट से बेचारी प्रभात चन्द्रिका सी चन्दा अपने को छुड़ाती हुई बोल पड़ती:

'चल कहीं का, आदमी है या गधा। कुछ सोच समझ कर ! देखता नहीं वह कौन सामने आ रहा है ?' बेचारे की यौवन की मदभरी मस्ती थम जाती, उसे ऐसा करने में बड़ा कष्ट वहन करना पड़ता।

कल तो चन्दा ने बहुत कुछ कर दिखाया। वैसे तो वह सदा ही छूटने के बाद यही कहा करती: 'बस इतना ही पानी है ?' और झट से दूर हो जाती। लेकिन आज तो भीमा ने उसे न छोड़ने की कसम खा रखी थी। उसकी प्रभुता चन्दा के 'बस इतना ही पानी है ?' से क्रुद्ध हो गयी थी, वह आज सब कुछ झेलने के लिए तैय्यार था, मगर एक क्षण भी चन्दा को छोड़ना उसे स्वीकार न था, अन्त में जब चन्दा की पार न बसायी तो वह नया दाव चल दी। और बोली: 'तुझे कुछ भले-बुरे का ध्यान भी है या नहीं ? अकेली थी तो जैसी तेरी मर्जी थी तूने खूब रोंधा, पर अब तो...........' तभी भीमा को माँ के कहे पाँच दिन के शब्द याद आ गये: 'बहू ! इस बार तो तुझे न्हाये हुए दो महीने हो गये हैं न' और जाने स्वयं बड़ी भारी मूर्खता कर बैठा हो ऐसे भीमा ने झटपट चन्दा को छोड़ दिया।

चन्दा तो इतना ही चाहती थी। इसने दूर से भोजन लाती हुई सासू को देखा। अब क्या था, निर्भय होकर बोली: 'ले, ऐसे नहीं तो दूसरे ढंग से खूब बहकाया न ? ऐसा कोई हाथ लगाने भर से तेरा छोकरा थोड़े मर जाता। आया बड़ा बाप बनने वाला, देखा भला ऐसा...........'

और तो भीमा कुछ न कर सका, इतना कह कर दाँत चबाता-चबाता चुप हो गया: 'अच्छा कल देखूँगा, तेरी आज की बात को।'

'ऐसी तो कितनी कल आयी और चली गयी।'

'गयी या नहीं गयी, यह तो कल मालूम पड़ेगा।'

'कल तू बड़ा शेर का शिकार करेगा ?'

शेर नहीं—बहू का ?

'बड़े मरद का बेटा है !'

इतने में तो माँ आ गयी और दोनों की जीभ की घसघस बन्द हो गयी। बहू के ऊपर की रिस घास के ऊपर निकाल रहा हो, ऐसे भीमा दाँत कटकटाता 'सर्र् सर्र्' हँसिया से काट करने लगा।

यह कल का किया वायदा माँ के चन्दा को घर पर रोक लेने से समाप्त हो गया। भीमा बाप के साथ बाजरे की नराई के लिए बैठ तो गया, पर इसका मन आज घर पर चक्कर काट रहा था। उसे रह रह कर चन्दा की चाँदनी की मोहिनी बुला रही थी। पीछे से माँ ढोरों को खेत के किनारे बाँध कर चरी लेने के लिए आयी तो उसका चेहरा रोज की तरह सूखा-सूखा था। फिर भी भीमा को लगा कि हो न हो माँ ने कल हम दोनों की कहासुनी सुन ली है, तभी तो इसने चन्दा को आज घर में ही रोक लिया हो तो क्या पता ? बाप की ओर देख कर नहीं तो वह क्यों हँसी ?'

और तभी धीमे से आती हुई माँ को देख कर बाप ने कहा: 'तू न आती तो ठीक होता। बहू के आने से आज यह सारे बाजरे की नलाई हो जाती।'

माँ के पेट की बात जानने की गरज से भीमा के कान खड़े हो गये। किन्तु माँ ने कोई कारण न बता कर कहा: 'यों ही आज मेरे मन में विचार आया कि मैं ही क्यों न खेत में हो आऊँ ?'

ऐसा बहाना सुन कर भीमा को माँ के पेट के पाप का पता चल गया। अन्त में वह मन में कहने लगा: 'माँ आज आ गयी, कौन यह रोज-रोज आने वाली है ? भले ही आज चन्दा छटक गयी हो, कल तो हाथ में आयेगी, देखूँ तब कैसे निकल जायेगी ?'

पर इसके अशान्त मन को शान्ति न मिली, चन्दा आयेगी, कितनी चुटकी काटेगी ? यही कल है कि दूसरी ? ओ हो बड़े कल वाले तो बहुत देख लिये ?

और चन्दा के इन विचारों से भीमा का मन, तन को यहीं छोड़ कर सीधे घर पहुँच गया। वह पानी भर रही होगी, बकरी, बछड़ी-बछड़ों को पानी पिला रही होगी, दूध काढ़ कर बाहर ही भूल गयी होगी तो वह राँड काली बिल्ली पी गयी होगी। नहीं, नहीं, वह ऐसी कच्ची थोड़े ही है, जो बिल्ली की चलने दे।....

बाप से पीछे स्वयं को देख कर भीमा चन्दा को वहीं छोड़ कर जल्दी-जल्दी हाथ-पैर चलाने लगा। बाजरे की घुमस और सूर्य की तपन क्रमशः बढ़ रही थी। भीमा का अंग-अंग पसीनों की बूँदों से भर गया। जहाँ देखो वहीं श्रमवारि बिन्दु अपनी कहानी टपक-टपक कर कह रही थीं। बाप ने जरा सुस्ताने की गरज से भीमा को हुक्का भर लाने के लिए कहा। चिलम में आग रखते-रखते फिर से:

चन्दा की याद ताजी हो गयी । अब मेरी रानी रोटी सेक रही होगी, कटखना कुत्ता भी रोटी की लाग से आँखेंमीचे ड्योढ़ी में बैठा-बैठा ऊँघ रहा होगा। हाँ, लेकिन बेचारी माँ तो बुढ़िया जो हो गई, भूल जाती है, मगर वह तो बिल्ली को झाँकने भी नहीं देती होगी, तो कटखने कुत्ते का काम ही क्या है वहाँ ?

और हुक्के में नया पानी भर के गुड़गुड़ करता हुआ, मुँह से धुआँ निकालने लगा, मानो वह घर पर रसोईघर से मिली कोठरी में बैठा-बैठा हुक्का पी रहा हो, चन्दा रोटी पका रही हो, उसकी रोटी बनाने की 'टपाकटपाक' की आवाज़ उसके कानों में आने लगी । जब हुक्का पीकर बाप को दिया तो उसे ऐसा लगा कि उसकी रानी चन्दा चूल्हे पर प्याज की कढ़ी पका रही है, और उसकी मधुर गन्ध उसे लुभा रही है ।

भीमा अपनी रानी की मुग्धकारी कढ़ी का माधुर्य पूरा-पूरा ले भी न पाया था कि पिता ने झट से काम समाप्त करने की नीयत से कहा: 'प्यारे बेटे ! बोल एक बात कहूँ । रोटी आने से पहले एक ओर की नलाई पूरी कर लें ।'

मरियल माँ तो घाम से तप गई थी, उसने हँसिया को ज़मीन पर रखकर धोती की किनार पर बँधी अफीम की डब्बी में से थोड़ी सी अफीम ली और झट से निगल गई । इसकी दुबली देह पसीने में तर-बतर हो गई थी । बेचारी अफीम के नशे के चढ़ने की प्रतीक्षा में सिम्मल के पेड़ के नीचे बैठ गई । भीमा ने सहानुभूति बताते हुए कहा: 'बैठी बैठी हाँफ रही है न ? क्यों नही उसी को आने दिया ?'

माँ भीमा की भावना को ताड़ गई या नही, यह तो भगवान ही जाने, किंतु बहू के कष्ट को बखानती हुई बुढ़िया बोली: 'मेरे बेटे ! क्या बहू को थोडा सुस्ताने की जरूरत नहीं है ?'

अगले स्टेशन से गाड़ी छूटने की घण्टी बजी हो, वैसे ही भीमा के कानों में 'टनन्टनन्' की आवाज आई । जाने चन्दा माथे पर रोटियों की कंडिया, और कन्धे पर घास बाँधने की रस्सी, और हाथ में बकरी का जेवड़ा पकड़े आ रही है खेत की ओर । जेल जैसे विद्यालय से छूटे भाई-बहन जेली और राहो उसके आगे आगे दौड़े चले आ रहे हैं, ऐसे पदचाप उसके कानों में आ रहे थे ।

अभी तो आधी नलाई और थी वहाँ: 'माँ, भाभी खाना........' ऐसे राहा की

स्पष्ट शिकायत करते शब्द भीमा के कान में पड़े। वह आधा सा ऊपर उठकर पीछे देखने लगा, किन्तु वहाँ तो कोई भी न नजर आया।

बाप ने भीमा को देखा ही था कि सैन-सैन में माँ बोली: 'क्या तुम मुझे नहीं देखा करते थे? यह तो सब का ऐसा ही है?'

कोई कुछ बोला नहीं, किन्तु भीमा को शर्म जरूर आ गई। वह झट से शेष बाजरी को काटने लगा, मुँह नीचा किये किये।

धूप बराबर बढ़ रही थी। सूरज अपना रहा-सहा जोर लगा रहा था। ढोर बेचारे छाया में सुस्ता रहे थे। रोटीवाली स्त्रियाँ अपने सिरों पर कंडियाँ धरे खेतों की ओर आ रही थीं, बच्चों को गोदी में थामे, हाथ से ढोरों को हाँकती हुई।

काम करनेवाले खेतिहरों को दुहरी मार का समाना करना पड़ रहा था, ऊपर से सूर्य और अन्दर से भूख त्राहि त्राहि मचा रही थी। अँगुलियों से माथे पर छलकती पसीने की बूँदों को पोंछते पोंछते, भोजन आने से पहले निश्चित काम को पूरा करने की धुन में इतनी गर्मी की परवाह किये बिना 'सररर-मररर्' बाजरी काटने में जुटे थे।

बाप-बेटों ने पूरी कटाई कर ली थी, दोनों विजयी योद्धाओं की भाँति काट कर सीधे खड़े हो गये, तभी भीमा की आँखें चन्दा को ढूँढने के लिए दूर दूर तक दौड़ गयीं। पिता ने कोख पर हाथ रखते हुए कहा: 'अरे! यह तो घर का अन्धा काम है, अबेर-सबेर हो ही जाती हैं। जा, तू ज़रा बढ़िया सी चिलम तो भर ले!'

हाथ के पहुँचे से माथे का पसीना पोंछते पोंछते भीमा ने हुक्का उठाया। धूनी में थोड़ी सी लकड़ियाँ रखकर फूँक-फूँक कर आग सुलगायी, और चिलम भरकर फिर से आग को राख से ढँक दिया। इतने पर भी भीमा विचारों के प्रवाह में बहता ही रहा, तभी माँ ने भीमा को जगाते से कहा: 'क्यों रे! क्या सोच रहा है व्यर्थ में? अरे! आग तो बुझ रही है, सुलगा न!'

आग, भूख और सूर्य की गर्मियों से व्याकुल भीमा घबरा गया। उसे आज सबेरे के चन्दा के वचन याद आये: 'देख, मैं तो देर में आऊँगी!' उसे यह ठट्ठा भी सच लगा। मन ही मन बड़बड़ाता बोलने लगा: 'तेरी माँ की राँड मारूं,

बस, अपनी ही बात करेगी ! मैं कुछ बोलता नहीं हूँ, तभी न ?'

भीमा को हुक्का पीते देखकर माँ बोली. 'बेटे ! ऐसा आराम से बैठा है ? जरा मेरी ओर का बाजरा ही कटवा देता !'

'यहाँ तो भूख के मारे बेजार हैं, तुझे अपनी पड़ी है ।' भीमा ने कुछ खिचकते हुए कहा ।

'तो ऐसे बैठने से भूख मिट जाएगी ? अभी रोटी तो आ जाने दे !' माँ ने घर की राह देखते हुए कहा ।

बाप ने हुक्का का धुआँ छोड़ते हुए कहा: 'देख न ताप को, रहने दे तू यह । खाने के बाद सब ठीक हो जाएगा ।'

माँ भी थकावट से चूर चूर थी । उसने जरा खड़ी होकर देखा तो चिड़ियाँ तक कहीं पर नहीं मार रही थी । पास-पड़ोस खेतों के किसान खा-पी कर विश्राम ले रहे थे । सब से देर में रोटी लानेवाली गंगा गड़रियाइन भी तो एक हाथ से गाय को हाँकती हुई द्रुतगति से आ रही थी । और तो और पड़ोसी लल्लू भाणा भी बहू की माँदगी से खुद घर जाकर रोटी लिए आ रहा था, बिलकुल पास में ।

माँ ने पूछा: 'क्यों भैय्या लल्लू ! कहीं हमारी बहू भी देखी है आती हुई ?'

हाथ ऊँचा उठाकर 'ना' का सिग्नल दिखाते हुए लल्लू भाणा ने ना कर दिया ।

माँ नीचे बैठ गई । उसने भीमा की ओर देखा । शायद आँखों से कह रही थी लड़के को: 'हाँ हाँ, देख ली तेरी मर्दानगी ! तुझ में पानी होता तो बहू अब तक न आयी होती !' और ऊपर प्रकट में बड़बड़ायी वह अलग: 'अब तक क्या कर रही होगी ! ऐसा क्या काम-धंधा आ गया उसे ?'

बाप ने चन्दा का पक्ष लेते हुए कहा: 'तेरी सन्तान बड़ी सुघड़ है न ! दुष्ट स्कूल से आकर बेचारी के प्राण ले रहे होंगे ।'

'यह तो मैंने उसे नाहीं कर दी है कि उन्हें खाना मत देना । वहाँ भी खाएँगे और साथ आ कर खेत में भी ।'

'लेकिन वे भलेमानस मानेंगे तब न !'

माँ-बाप तो ये बातें करते करते समय टाल रहे थे और भीमा अपनी प्रभुता को कलंकित होते देख रहा था । न जाने उसके मन में क्या क्या विचार उठ

रहे होंगे ! परन्तु उसके मुख के क्षण क्षण में बदलते रूप, संकेत से बता रहे थे कि यदि वह सामने होती तो भीमा कुछ न कुछ कर के छोड़ता। वह सोचता: 'मैं एकाकी होता तो क्या बात थी ! लेकिन राँड की बेटी को यह तो सोचना चाहिए कि माँ-बाप क्या सोचते होंगे ?'

देर होती जा रही थी और भीमा का मन मचलता जा रहा था। आज तो सारी दुनिया की व्याकुलता भीमा के मन को दो टूक कर रही थी। उससे बैठे न रहा गया। उसकी प्रभुता जाग पड़ी, उसने उचक कर चन्दा को देखा ही था कि झट से माँ नें आरपार निकल जानेवाली गोली दाग दी: 'क्या देख रहा है, काला कौआ भी नहीं दीखता।'

'भूख से मरी जा रही है बेचारी ! जा न, सामने से; कहीं जाकर मर क्यों नहीं जाती ?' बाप ने खीजते-खीजते कहा। लेकिन साधारण ढब से जवाब देती हुई माँ बोली: 'बात तो बड़ी थोड़ी है, पर तुम्हीं देख लो कामका कितना नुक-सान हो रहा है। हमें छोड़कर सारे के सारे लोग हौले-हौले सुस्ता कर अपने-अपने काम पर लगने की तैय्यारी करने लगे हैं। ज़रा बहू को भी खयाल आना चाहिए न ? इतनी बेदरकारी भी क्या ?'

'बच्ची है—बच्ची। अभी थोड़े अक्ल आ जाती है ?' धीरे से बाप बोला।

'क्या बच्ची है बच्ची ! कल तो माँ होनेवाली है, अभी बच्ची ही बनी रहेगी ?' माँ ने कुछ झुँझलाते हुए कहा।

भीमा इन बातों से जल-भुन रहा था। उसके बस की बात होती तो न जाने वह क्या कर देता। पर विवश था।

घड़ी भर चारों ओर पूरी निस्तब्धता छा गयी थी। कभी कभी तो ढोर गर्मी के मारे हाँफ जरूर रहे थे।

थोड़ी देर में बाप का धैर्य जाता रहा। अबतक बहू की तरफदारी को भुलाता वह बोला: 'हाँ, लगता तो ऐसाही है कि बहू को किसी की कोई चिन्ता नहीं है। अरे ! यह तो हद हो गयी। जैसे ही बापने भीमा की ओर निगाह डाली तो ऐसा लग रहा था कि वह चन्दा की कारगुजारी से बचनेका उपाय ढूँढ रहा था। यदि धरती माताने स्थान दिया होता तो वह वहीं का वहीं समा जाता।

आखिरकार माने भीमासे कहा: 'अरे ! भीमा ! जाकर देख तो आ,

उसे जमीन तो नहीं डस गयी ।'

बेचारी मरियल माँ को क्या पता लगता ! इस बात का क्या असर हो रहा है भीमा के ऊपर। बात को पहचानता हुआ बाप बोला:—'इतनी क्या उतावल है, थम जा न थोड़ी देर और' कही भीमा आवेश में आकर आगे न बढ़ जाय, सोचकर उसने भीमा से कहा: 'जा, जरा एकचित दम ही मार ले।'

बुढ़िया तो पुरुषों के स्वभाव को जानती थी। इसलिए वह चुप रही। पर वह क्या कर सकती थी, जब भगवान ही चन्दा से रूठा हुआ हो।

समय बढ़ रहा था। तीनों प्राणियों का भूख के मारे बेहाल था। भीमा की परेशानी का कुछ पार न था। पल पल में वह संकल्प विकल्प की उड़ान मे पहुँचता और गिर पड़ता था।

वह हुक्का भरकर चुपचाप खड़ा हो गया। उसने अपनी चिरसंगिनी लाठी उठायी और चल पड़ा धरती से बचाने चन्दा को, या प्रभुता की प्यास बुझाने।

भीमा की पीठ फिरते ही देवा ने कंकू से कहा: 'जरा देख तो इस मूर्ख को। गुस्से में है, कही उल्टासुल्टा न कर दे।

इसी शीख का उपदेश माननेवाले देवा ने अपनी जवानी में कंकू का दाहिना हाथ तोड़ दिया था, गुस्से में आकर।

भीमा लम्बे लम्बे डग भरता खेत के खेत लाँघता जल्दी जल्दी आगे बढ़ ही रहा था कि सामने ही चन्दा का रूद्र रूप आता दिखायी पड़ा। उस के नथनों से गरम हवा निकल रही थी। मानों किसीने काली नागिन को छेड़ दिया हो। उस के आगे बेंबें करती बकरी दौड़ी आ रही थी, और पीछे पीछे चन्दा। जिन आँखों की मिलनवेला अमृत की धारा बहाती थी, न जाने आज वे क्यों सूख गयी थी, उन से खून क्यों बरस रहा था ?

भीमाने आव देखा न ताव झट मजबूती से हाथों में लाठी उठाली। माँ बाप लड़के का हालचाल चुपचाप देख रहे थे। आज तो भीमा के पतिपनकी कड़ी परीक्षा थी। चन्दा भीमा की आँखों की भाषा पढ़ गयी थी, उसने बड़ी सावधानी से रोटी की करंडिया सिर से उतार कर हाथ में ले ली और जैसे कोई बात नहीं है। आगे बढ़ गयी। तभी तो 'फट्ट फट्ट' लाठी के दो हाथ

बेचारी चन्दा के ऊपर पड़ गये।

अभी क्षण भर पहले पुत्र को ताने मारनेवाली कंकू भी खड़ी खड़ी काँप गयी। उसके मुँह से भय की चीत्कार निकाल पड़ी: 'दौड़ो दौड़ो, मुए ने तो बहू ठौर ही मार दी।'

देवा वहीं से जोर से चिल्लाया: 'हाँ. हाँ, देखलिया तुझे, मरखनी का बेटा है न। बस रहने दे रहने दे!'

भीमा का हाथ उठा का उठा रह गया। चन्दा भी जैसे उसे लगी ही न हो, रोना तो क्या, विना रोआँ खड़े किये कुछ हिले डुले वहीं की वहीं खड़ी हो गयी। भीमा को ऊपर से और उश्केरती हुई बोली: 'हाँ, मार न, खड़ा क्यों हो गया है! तुझ जैसों से और क्या होना हुवाना था। यही न! साध ले अपनी इच्छा!'

'मुझ जैसों से' भीमा की रहीसई इज्जत इस वाक्य ने समाप्त कर दी। एक तो माँ बापने कहने में कमी न छोड़ी थी, ऊपर से चन्दा ने जलेपर नमक छिड़क दिया। तो क्या मेरी कोई कीमत नहीं?' पछताता सा भीमा सोचता रहा! पर प्रकट में बोला: 'क्या मतलब!'

'यही मतलब कि तेरा पुरुषत्व अबला को मारने में ही है न?'

भीमा की लाठी धीरे से नीचे उतर आयी। और कुछ होने से पूर्व ही बापने जोर की आवाज दी और भीमा को बुला लिया।

लेकिन चन्दा तो बड़ी गर्वीली थी। मार खाकर भी वह भीमा से दो कदम आगे बढ़ गयी, बेचारे भीमा को काटो तो खून नहीं। अपने क्रोध पर पछताता वह भी धीरे से पीछे पीछे चलने लगा।

★

: २ :

देर कैसे हुई ?

सबेरा होते ही पक्षीगण अपनी अपनी घर गृहस्थी की धुन में सुदूर प्रान्तारों को उड़ जाते हैं। मनुष्य भी अपने घोंसलों को छोड़कर अपने व्यवसाय में लग जाते हैं। सदा की भाँति आज भी सारा का सारा गाँव अपने खेतों में पहुँच गया था, केवल दो चार बूढ़े बुढ़ियों को छोड़ कर। साथ ही गाँव के स्कूल के खेलते हुए बच्चों को भी।

वह स्कूल भी खूब है, गायकवाड़ी नियम जो ठहरा। जबरदस्ती बच्चों को स्कूल जाना पड़ता था। जो न भेजे वह राज्य का अपराधी माना जाता था। बेचारे मास्टरजी खूब थे। उन्हें न तो बच्चों के जीवन से मतलब था नहीं राज्यादेश से। वे तो चाहते थे किसी प्रकार उन्हें दोचार सीधी टेढ़ी रोटी मिल जाये। वैसे तो यह गाँव सरकारी दृष्टि से सर्वदा उपेक्षित था। गाँव था भी तो रेल के स्टेशन से ११ मील, सौराष्ट्र की काली चिकनी जमीन, न कोई आता न जाता। हाँ वर्ष में एक आध वेर सरकारी बड़ा अधिकारी आ जाया करता था। तभी तो मास्टरजी अपने आप के सिवाय और किसी बाप की चिन्ता न करता था। वह तो जैसे तैसे अपनी जनप्रियता को बनाना जानते थे। क्या मजाल जो मास्टरजीने कभी किसी विद्यार्थी के संरक्षक से सूचना सरकार को दी हो। वे अपने निर्वाह के लिए थोड़ी बहुत खेतीबाड़ी भी कर लिया करते थे, छोटीसी दुकान भी खोल रखी थी। इसलिए उन्हें समय ही नहीं था जो ध्यान से बच्चों को पढ़ाते ये प्रोत्साहित करते। मौसम में कपास एकत्र करते, खजूर खोपड़ा देकर बच्चों को लूटते। बस सारे गाँव की शान्ति को स्कूल के बच्चों का रामरौला पलभर में भगा देता था और सारी शून्यता न जाने कहाँ छिप जाती थी !

आज शनिवार के दिन प्रातःकाल का स्कूल था। कंकू खेत में जाने से पूर्व ही अपनी बहू चन्दा को समझा गयी थी: 'बहू ! देखना, वे मुये आज जल्दी स्कूल से आ जायेंगे, रोटी माँगेंगे, न देगी तो भला बुरा भी कहेंगे, लेकिन उन्हें एक टुकड़ा भी न देना। वे तो बड़े पेटू हैं, घर पर भी पेट भर खायेंगे, फिर सब के साथ खेत में खाने पहुँच जायेंगे ! इसीलिए उनकी रोटियाँ भी

साथ ही ले आना, वहीं खा लेंगे।'

भगवान के दिये बच्चों पर यह कुदृष्टि, और दुर्भावना! हाय रे राम! लोभी माँ के मुख से बेचारी कंकू यह सब कह तो गयी, लेकिन कहनेमें उस की जीभ एक एक हो जाती थी। करती भी क्या? लड़ाई का जमाना था। चीजों का बड़ा अभाव था। पैसों की तंगी से भी अधिक तंगी सामान की थी। सोना, चाँदी महँगे हो रहे थे। रोजगारी का तो ढूँढने पर भी पता न लगता था। किन्तु ये मुसीबतें इतनी बढ़ गयीं थीं कि कुछ बात न पूछो। श्रीमंतों को कुछ राहत भी थी, वे मन चाहे पैसों से किसी भी चीज को ले सकते थे। पर बेचारे गरीबों की बड़ी मुश्किल थी। उन्हें पेटभर खाना भी नसीब न होता था। न जाने ज्वार और बाजरा बाजारों से कहाँ चला गया था? यही तो गरीबों की मुख्य खुराक थी, सो भी नदारद। अनेक कुटुम्बों में तो बच्चों को रात में छाछ मिली तो छाछ ही पिलाकर सुला देते थे, इसे सिवाय उन निर्धनों के और कौन जानता था?

वैसे तो देवा की शाख गाँव में अच्छी थी। नगर सेठ नेमचन्द समय समय पर दो चार सौ रुपये उसे सामान के रूप में उधार दे ही दिया करता था। इसी सहायतासे तो देवा ने दो लड़कियों का शादीब्याह किया और लड़के भीमा का भी। ये सब कार्य सेठ नेमचन्द की सहायता से ही हुए थे।

इतना विश्वास होने पर भी इस काइँयाँ लड़ाईने सेठ नेमचन्द के मन में भी द्विविधा पैदा कर दी थी। अब वह देवा को दूसरी दृष्टि से देखने लगा। वह सोचता: 'ऐसा न हो, लड़ाई के दौरान में मेरी पूँजी भी समाप्त हो जाय? हो न हो यह देवा अपनी जात पर उतर आये!'

सरकार जाने को बैठी है, यह धारणा चारों ओर फैली थी। छोटी छोटी चीजें, शीशी, बोतल तेल के डब्बे तक, जिन्हें कोई लड़ाई से पहले किसी भाव भी न पूछता था, आज कीमत दे रहे थे। सारे खरीदनेवाले कहते ये सारी वस्तुएँ सरकार खरीद रही है। फलस्वरूप सारे सामान की जगह लोगों के पास कागज के नोटों के ढेर लग रहे थे। गाँव के अर्थशास्त्रियों की भावना यह थी कि इन सब कागजों के ये नोट सिवाय टोकरी, टोप आदि बनाने के किस काम के हैं!

देश का सारा व्यापार शिथिल हो चुका था। व्यापारी नकदी व्यापार के अतिरिक्त कोई व्यापार नहीं करते थे। लोगों को उधार देना बिल्कुल बन्द कर दिया था। भई ! बात ही ऐसी थी, किसी को कल की खबर न थी तो कैसे वे व्यापार करते और लोगों की आवश्यकताएँ पूरी होतीं।

बेचारे देवा पर बड़ी मुसीबत आ पड़ी। आज तक वह सारा का सारा अन्न पैदा कर सीधा नेमचन्द की दुकान पर रखता था ! फिर अपनी आवश्यकता के अनुसार वर्ष भर लेता जाता था। अब उसका गुजारा कैसे चलेगा ?

"जितने दिन बीतें आनन्द से उतने ही ठीक" वाली कहावत हो गयी। हर साल की तरह देवा अब की बार भी सेठ के पास गया था, लेकिन उसकी हैरानी का ठिकाना न रहा, जब उसके सेठ ने टकासा अस्पष्ट जवाब दे दिया। सेठ बोला: 'भाई देवा ! तू तो बड़ा भला है, लेकिन मैं भी करूँ तो करूँ क्या ? मेरे बस की बात होती तो कोई डर न था; किन्तु यह जमाने के हाथ की बात है। तुझे क्या मालूम कि दुनिया का नक्शा कितनी जल्दी बदलता जा रहा है ? ऐसी दशा में बड़े बड़े लखपति करोड़पति भी छोटे मोटे कामों में बिना निश्चित लाभ के हाथ ही नहीं डालते। जाने कल क्या हो ? मैं तुझे ना तो नहीं करता, पर प्रति वर्ष की भाँति पूरा अन्न नही दे सकूँगा। तू कोई बच्चा थोड़े ही है देवा ! दुनिया की ऊँच नीच सब जानता ही है ? भला कौन है जो भले की चिन्ता में न घुल रहा हो ! सत्यानाश हो हाय तेरी लड़ाई का ! क्या राक्षसीपन छाया है लोगों में !'

देवा ने सेठ की बातें एक ही बार में साफ साफ सुन लीं। बेचारे को बड़ा बुरा लगा, पर था क्या पास में, जो बुरा मानता ! और उसके सेठ ने ना कब कहा था ? देवा ने अनुनय विनय के साथ सेठ से डरते डरते कहा: 'सेठ ! अब जो भी हो, तुम्हें खाने की समस्या का समाधान तो करना ही पड़ेगा ? आखिरी समय मेरा तुम्हारे सिवाय और कौन है ? जैसे बने बना दो मेरे राजा सेठ !' इतना कहते कहते देवा का गला रुँध गया था।

सेठ ने तुरन्त ही बात बदलते कहा: 'अरे देवा ! अपना रोआँ दुःखी क्यों करता है ? मैं कब ना कहता हूँ। मेरे कहने का तो यही भाव था कि हर साल की बात तो रहने दो, इस वर्ष जितना भी बनेगा, तुझे सहायता अवश्य दूँगा।

बोल, क्या दे दूँ ?'

देवा सँभल चुका था। वह ऐसे अवसर को हाथ से गँवाना नहीं चाहता था थोड़ा बहुत जो कुछ भी मिलेगा, उसके सिर माथे पर। भला भूखों मरा जाता है ? कहने लगा देवा: 'अन्नदाता ! अगली फसल तक जो कुछ भी भिजवा दोगे, स्वीकार है।'

सेठ नेमचन्द ने छ: बोरी बाजरा और ज्वार भिजवा दिया। देवा ने थोड़े ही शब्दों में आज की कहानी कंकू को कह सुनायी। अब कंकू के हाथ में था वह अन्न को एक दिन में खतम कर दे या महीनों चलाये। कंकू को लगा कि यह सारा भार तो मेरे कन्धों पर आ पड़ा है, देख लूँगी, ऐसे भी क्या हो गयी जो ये मुसीबत के दिन नहीं ढलेंगे।

वह बेचारी कंकू फूँक फूँक कर अन्न का उपभोग करने लगी। स्वयं कम से कम प्राण धारण की गरज से जीमती। उसे लगा ज्यादा खाकर होगा भी क्या ! अमर थोड़े होना है मुझे ! बाल बच्चे लड़के बाले थोड़ा खा लें, यही गनीमत है। क्या जानें, कल क्या होगा ?

तभी तो कंकू ने चन्दा को साफ साफ कह दिया: 'री वहू ! आजकल बड़ी आफत के दिन आ गये हैं। अरे रे ! कल तो गाय भैंस बाँधने के लोहा का कीला कोई उपाड़ कर ले गया है। होशियार रहना, घर को अच्छी तरह बन्द कर देना। बच्चों को साथ लेते आना, वे भी वहीं खा लेंगे। समझ गयी न ! कोई जल्दी नहीं है। लड़के बालों के भरोसे घर छोड़ने का जमाना नहीं रहा।'

'हाँ, हाँ,' चन्दा ने बिछुवे की आवाज के साथ आगे बढ़ते हुए कहा। उतना कह कर कंकू तो ढोरों के साथ साथ आगे बढ़ गयी।

चन्दा सारे गाँव वालों की आँखों में चढ़ी थी। उसके कार्यों से गाँव और आसपास चर्चा पर चर्चा होती रहती थी। पहले तो और छोटे गाँवों में क्या, शहरों में भी ऐसी लड़कियाँ, बहुएँ नहीं थीं। इसने तो गजब ढा दिया था। राम ! राम !! अपनी सगाई के भावी पति को स्वेच्छया छोड़ दिया था, और स्वयं वर चुन लिया। बाप रे बाप ! कितनी हिम्मत वाली है ? इस अर्धसभ्य जाति में चन्दा का यह काम बड़ा आपत्तिजनक बनता गया। लोग ऐसी दुर्घटना देखने या सुनने के लिए तैय्यार न थे। वे सब इसको पागल मानते थे। दूसरी

स्त्रियों के समान चन्दा के साथ, हँसी-मजाक, एकान्त में छेड़खानी करने की किसी की हिम्मत न थी। यद्यपि ऐसी कोई बात हुई न थी, जिससे चन्दा की डरावनी घातें लोग जानते !

लेकिन इसी गाँव में पूँजा नामक बड़ा गर्वीला युवक भी रहता था। उसे यह बात असह्य थी कि उसके रहते हुए यह चन्दा अछूती बच जाय, और लोग इसकी वीरता की डींग हाँकते रहें। उसने निश्चय कर लिया था: 'जो कुछ भी हो, मैं तो चन्दा का मान मर्दन करके ही रहूँगा, तभी मेरा नाम पूँजा है।' वह चन्दा को छेड़ने का मौका ढूँढ़ता रहा और वह मौका आज पूँजा के हाथ स्वयं आ गया।

दोपहरी हो गयी थी, गाँव में बिल्कुल शून्यता छा गयी थी। खेतों की ओर भोजन ले जाने वाली अपनी-अपनी कढ़ी-दाल में लगी थीं, बच्चे स्कूल में बड़े साहब की प्रतीक्षा में मन मारे बैठे थे।

घर का ऊपरी काम करके चन्दा नदी पर पानी भरने जाने वाली थी। चूल्हे पर कढ़ी खदबदा रही थी। उसने सोचा तो यही था कि जल्दी ही काम पूरा करूँ और बच्चों को साथ लेकर खेत पहुँच जाऊँ, लेकिन भावी किसके हाथ में है ? उसने कढ़ी चूल्हे से उतार ली और दो घड़ा पानी लाने की गरज से वह पानी लाने चली गयी।

दोपहर का तड़का पूरे यौवन पर था। चन्दा का गुलाबी मनोहर रंग श्रमज-स्वेद-वारि से सुन्दर लग रहा था, मानो गुलाब की अधखिली मुस्कराती कली पर ओस की मोतीसी नन्हीं बूँदें चमक रही हों। उसने घाघरा और उसके ऊपर की साड़ी को एकम-एक करते हुए लाँग बाँधी थी। पानी के घड़े लेकर वह नदी की ढाल पर मस्त हथिनी की भाँति गिन-गिन कर पग धरती आगे बढ़ रही थी। उसकी अजान में ही उसका यौवन फटे वस्त्र एवं छाती के फूलने से बाहर उभक रहा था। गेहुँवा रंग की रम्भा-सी गठित जाँघों से नीचे पिण्डलियाँ स्पष्ट नजर आ रहीं थी। साथ में मन्दगति के नूपुरों की झनक-झनक भी वेगवती हो रही थी। और पूँजा की मन की मुराद ऐसी नीरवता के समय पूर्ण होने जा रही थी। उसने देखा कि सचमुच चन्दा की देह विधाता ने किन्हीं जुदे तत्वों से ही बनायी है, वाह रे कर्तार ! जैसे ही ढाल खतम करके चन्दा पूनम की चन्दा-सी

चारु-चाँदनी बरसाती उदयाचल से निकल कर समतल पर विराजती है, ठीक वही तो ढंग था इस चन्दा का ! हाँ, वही हूबहू वही ! समतल में आयी ही थी उसने चोरों की तरह छिपे पूँजा को अपने सामने देखा । झट से उसने घूँघट काढ़ लिया ।

पर्दा करने के बाद हँसी-मजाक करनी, छेड़खानी करनी यह नयी बात न थी । पूँजा बोलता अटक रहा था, अन्त में सारा साहस बटोर कर वह बोल पड़ा: 'पर्दा की चीज तो खुली है, बेकार में मुँह ढाँकने से क्या फायदा ?'

सख्त धिक्कार सुनने से मनुष्य जैसी स्थिति में पहुँच जाता है, वैसे ही चन्दा भी इन शब्दों को सुनते ही बेज़ार हो गयी । वह कुरुक्षेत्र के मैदान में जमीन में धँसे कर्ण के रथचक्र की तरह गड़ गयी थी । पूँजा तो सोचता था कि चन्दा बिना जवाब के कब रहने वाली है ? मस्त साँड को नाथने वाली, सगाई सुदा भावी-पति को छोड़ने वाली, यौवन के भार से लचीली, गर्वीली चन्दा, भला विना कुछ कहे मानने वाली है ! इस कल्पना ने पूँजा का दिल बढ़ा रखा था । वर्षों का पापी अभ्यस्त पूँजा का अंग अंग एक अबला को क्या गिनता था, उसे तो अपने बाहुओं पर पूरा पूरा भरोसा था । पर न जाने चन्दा ने आज चूँ तक न की । पूँजा: 'नहीं जी लोग ही कमीने हैं, भला इस चन्दा का डर !' इतना कहते ही ऊपर का कपड़ा जमीन पर पटक कर नदी में धड़ाम से कूद गया ।

चन्दा भीमा की वीरता तोलना चाहती थी । शायद इसी इरादे से वह कुछ न बोली ।

पूँजा की नदी में कूद पड़ने की आवाज से शून्यमनस्क चन्दा नींद से जाग पड़ी । वह आगे बढ़ी ही थी कि पूँजा पानी से ऊपर तरता तरता फिर बोला: 'बेचारी को बोलने तक का तो हौंस नहीं है !' लेकिन किसी को क्या पता है कि यह मौन क्या कर दिखायेगा ?

शरीर पर पड़ी अंदरूनी मार जैसे धीरे धीरे बढ़ती है, वैसे ही इस असंभावित घटना ने चन्दा का रोम रोम झनझना दिया । उसने सिर पर से घड़े उतारे । अब तक तो अपमान की वेदना से उसका तन-बदन झनझना चुका था । आध घण्टे पौन घण्टे तक उसका दिमाग उसी अपमान से व्याकुल बन गया था, बेचारी को पता भी नहीं रहा कि कब टेढ़ी आँख ताकने वाली बिल्ली कढी के

बर्तन में मुँह डाल कर बिखेर गयी। यह तो आज कर्ण की जंघा की बात हो गयी ! जाँघ से खून निकलता रहा, पर उसे पता भी न चला और उसके गुरु परशुराम इस खून की गिलाहट से उठ भी गया। कढी जब तक चन्दा के नीचे न आयी, उसे पता भी न लगा । बिल्ली ने खाया नहीं पर ढोल अवश्य दिया। ऐसा आत्मसन्तोष मानती विघ्न संतोषिणी बिल्ली मूंछों पर ताव देती, लगी कढ़ी चाटती चाटती चन्दा के कुछ कहने से पूर्व ही धूम्र मार्ग से निकल नौ दो ग्यारह हो गयी !

चन्दा पड़ी कढ़ी को दोनों हाथों से हँडियाँ में भरती जा रही थी कि स्कूल मे दौड़ते दौड़ते राहो और जेली आकर बोले: 'चार कोस दूर किसी गाँव मे मुकाम करते हुए हमारे इन्सपेक्टर साहब ने कहलवाया है कि समय हो जाने पर भी आज बच्चों को मेरे आने तक छुट्टी न दी जाय। हम निरीक्षण करने आ रहे है।' पर यह साहब और पहले के लोगों से अच्छा था। इससे पहले जितने भी ऑफिसर आये, शायद ही वे इस पिछड़े भू-भाग में आये हों। वे तो बाहर के बाहर से ही अपनी दैनन्दिनी (रोजनामचा) भर देते थे। और सरकार उसे सब प्रकार मे मान लिया करती थी। तो यह साहब काफी अच्छा है, कम से कम गाँव में आया तो है ! यह साहब भी पढ़ाई-वढ़ाई की बातें तो नहीं, किन्तु खेल-कूद, स्वच्छता आदि पर ध्यान दे लेते थे। साहब की खबर लगते ही मास्टर जी साहब की इच्छानुकूल प्रवृत्ति में स्वयं भी लग गये, और बालकों को भी लगा दिया। कहीं साफ-सफाई, लीपन पोतन, झाड़न हो रहा है, तो कहीं साहब के आराम के लिए सुविधाएँ एकत्र की जा रही हैं। आज तो बहुत दिनों के बाद मास्टरजी ने भी अपने बढ़िया वस्त्र बदल लिये थे, और लड़कों को आदेश दे रहे थे: 'जाओ जाओ, जल्दी जल्दी स्वच्छ कपड़े-लत्ते पहनकर आ जाओ। आज छुट्टी साहब के आ जाने पर ही होगी।'

बड़े बड़े लड़के सर्वप्रकारेण स्कूल को ठीक-ठाक करने में लग गए। भंगी की अनुपस्थिति में उसकी बड़ी लड़की से ही स्कूल के आस-पास का कूड़ा-कचरा साफ करवा दिया था। नम्बरदार के घर से जाजम, कुरसी, खाट आदि की पूरी व्यवस्था मास्टरजी करा चुके थे।

राहो और जेली भी उसी आदेश को मानते हुए नदी में हाथ पैर धोकर घर

में आए और धीरे से भाभी से कपड़े माँगते बोले : 'साब आ रहा है, कपड़े दे दो भाभी !' किन्तु भाभी का तमतमाता मुँह देखकर वे दोनों कुछ न बोले। जो फटे-पुराने कपड़े धुले-धुलाये थे, उन्हीं को पहनकर उतावल से स्कूल भाग गये।

द्वेषाग्नि में जलते-जलते मनस्विनी क्रुद्ध नागिन सी चन्दा अपने काम में लग गयी। उसके चेहरे की सिकुड़नें घट-बढ़ रही थीं। और वह रोटी पकाने में तल्लीन हो गयी।

माथे पर सूरज चढ़ गया था, अभी तक भी स्कूल न छूटा था। चन्दा ने सोचा : 'चलो तब तक दुबारा कढ़ी छौंक दूँ।' उसने जल्दी से दुबारा कढ़ी छौंक दी।

एक बज गया था। चन्दा की बेचैनी देखते ही बनती थी। उसे एक ओर तो खेत के भोजन का ध्यान था, दूसरी ओर भूख-प्यासे बच्चों का। वह बार-बार मास्टर पर खीज रही थी। कहती थी : 'यह भी क्या मुसीबत आयी, न खाने के न पीने के। हाँ, मास्टर ख़ुद बैठा रहे स्कूल में तो क्या बिगड़ता है ? साल भर मुफ्त की तनख्वाह जो खाता पड़ा है ! पर इन मासूम बच्चों की ओर देखना था। सबेरे का ज़रा सा कलेवा किए नन्हों के भूख से जलते पेट ! ओहो ! कितना ज़ुल्म है !'

बेचारी दो-तीन बार स्कूल तक हो आयी, पर मास्टरजी का पत्थर का दिल पसीजता न था। न जाने इन्स्पेक्टर साहब कब आ टपकें ? मास्टरजी कहते : 'नहीं बहन ! जब तक साहब नहीं आ जाते, मैं कैसे छुट्टी दे सकता हूँ ? जाओ तुम, जल्दी ही छुट्टी हो जाएगी।'

बेचारी दुविधा में पड़ी थी, न इधर की न उधर की। आजकल घर सूना-सूना भी तो नहीं छोड़ा जा सकता था ! कैसे बुरे हैं ये दिन ! जिसके हाथ में जो आया, वही ले भागा। सचमच आजकल तो सभी को 'लेभागू' की चिन्ता घेरे पड़ी है।

साथ ही खेतों का रास्ता भी दो कोस का था। 'कैसे दोनों बच्चे अकेले इस सुनसान दोपहर में आते ?' यही चन्दा सोचती थी। कभी आगे कभी पीछे पैर रख कर बैठ जाती थी। बिना बच्चों को साथ लिए उसका जी आगे जाने से इन्कार करता था। वह थोड़ी देर और बाट देखने लगी।

जैसे ही वह फिर से स्कूल में पहुँची तो सामने से ही साहब की प्रतीक्षा करते हुए प्रेक्षकों ने आकर कहा : 'देखो, वह सवारी में टोप लगाए साहब बैठा आ रहा है।'

तस्मै (खीर) जीमकर साहब पूरे घाम में पहले गाँव से चल पड़े। बेचारों की मिट्टी पलीत हो गयी। जैसे ही नीचे उतरकर छाये में सुस्ताने लगे तो मत पूछो उनका बेहाल ! गर्मी के मारे पसीने में तरबतर, दम घुट रहा था। श्रीमान्‌जी हाँफ रहे थे। मानो कोई बड़ा काम करके आये हों। आरामतलबी की हद हो गई ! आरामकुर्सी पर बैठते ही बोले : 'धत् तेरी नौकरी की ! नौकरी क्या है, आराम हराम है।'

मास्टरजी ने जल्दी से इन्सटेक्टर साहब के हाथ में पंखा पकड़ा दिया और सामने मेज़ पर ठंडे पानी का लोटा और प्याला रख दिया, तब कहीं साहब की जान में जान आयी। वे बोले : 'क्यों मास्टरजी ! बच्चों को छुट्टी नहीं दी, क्या दुबारा आये हैं ये ?'

'नहीं जी ! सबेरे के आये हुये हैं।' मास्टरजी ने कहा।

'अच्छा तो जाने दो इन्हें।' इस प्रकार इन्सपेक्टर साहब को अवकाश मिल गया, और वे आराम करने लगे।

सायं तक आराम करने के बाद साहब ने इसी बीच अपनी 'बिजिट बुक' भी पूरी लिख दी। और इस गाँव से चलते बने, दूसरे स्कूल के निरीक्षण के लिए।

लेकिन इतने में तो चन्दा की आभा उतर गयी थी। उसके प्राण मुँह को आ रहे थे। बेचारी की अन्तर्वेदना से किसी को मतलब ही क्या ?'

देर काफी हो गयी थी। वह दोनों बच्चों को साथ लिए उड़ी जा रही थी। बच्चों ने धीमे से कहा : 'भाभी ! ज़रा हौले-हौले चल न ! हम से तो नहीं दौड़ा जाता ! माँ से हम सब कह देंगे कि साब आया था न आज, इसी से देर हो गई।'

लेकिन इतनी देर में तो वह काफी आगे बढ़ गयी थी। खेत निकट था। जैसे ही वह सीमा में पहुँची कि धड़ाधड़ भीमा के दो डण्डे उसकी अगवानी करने लगे।

★

: ३ :

पानी चढ़ाया !

भीमा की लाठी की मार से वे दोनों बच्चे इतने भयभीत हो गये कि माँ से सटकर बैठने तक एक शब्द भी न बोल सके।

चन्दा ने रोटी का बोइया हाथ से धीरे से जमीन धर दिया जैसे कुछ हुआ ही न हो, और चुपके से पास में ही पल्ला खींचकर बैठ गयी। एक बार 'प्रभुता' के मद में मस्त भीमा के विचारों की खिचड़ी खुदबुदा रही थी। नन्दा बिना कारण देर करनेवाली न थी, और पीछे स्वभाव की भी अजीब थी, अतः कुछ न कुछ होना अवश्य चाहिए। भीमा ने बहुत यतन किया, पर उसे देर होने के कारण का कोई सुराग न मिला।

भले ही कोई कारण हो, पर यह भी क्या बात कि कुछ बताती नहीं। छिः, इतना घमण्ड काहे का ? हाँ, रणछोड़ ठीक ही कहता था। बड़ी बेअदब है। उसे कुछ तो समझना चाहिए, कब क्या बोलना चाहिए, इस बात की भी परवाह नहीं करनी। और जो कुछ मुँह में आया, वही बक डालती है।

विचारों से थोड़ा सजग होकर भीमा ने चन्दा को घूरकर देखा, पर वह तो पर्दे की आड़ में देवर-सास की बातें जो सुन रही थी।

'माँ, भाभी तो हमें दो-तीन बार स्कूल में बुलाने गयी थी; पर साब आने वाला था न ! मास्टर ने छुट्टी न दी।' राहा ने कहा।

अपने से बड़े सौ वर्ष के अनुभवी भाई से पूछने की इच्छा हुई थी जेली को, पर न पूछ पायी। वहाँ तो सब के सब मौन थे। घर में आने पर भी भाभी की 'क्विक मार्च' में सब भूल गई थी। यहाँ पर अनुकूल समय देखकर जेली ने पूछा : 'अरे भाईजी ! ये साब सिर पर उलटी टोकरी कैसे रखते होंगे ?'

जेली के प्रश्न से सब खड़खड़ा कर हँस पड़े। चन्दा भी पीछे न रही, चन्दा को हँसते देखकर भीमा ने ज़रा सन्तोष की साँस ली।

चन्दा को हँसते देखकर भीमा ने उसे रिझाने की चेष्टा करते हुए कहा : यह मास्टर किसी दिन मेरे हाथ से मार खानेवाला लग रहा है।'

देवा स्वयं पाटण वाडिया था, उसने भी जवानी के मस्ती भरे दिन देखे थे। लेकिन जहाँ तक बनता था वह निभने तक किसी को कुछ न कहता था। अपराधी बनने का काम ही नही करता था, और सरकारी आदमियों से बच-बच कर पैर रखता था।

'अच्छा रहने दे, रहने दे। कोई दिन ऐसा भी हो जाता है, इसमें क्या हो गया?

उसी मास्टर का शिष्य भीमा बोला : 'पढ़ना-लिखना तो मुर्दार का काम, सारे दिन बच्चों को पिदा-पिदा कर मार डालता है। बड़ा आया समय का पाबन्द कहीं का।'

'तू आया बडी शिक्षा देने वाला। जा जा, चुप होकर बैठ जा, व्यर्थ की बातों मे क्या लाभ है।' रोटी का टुकड़ा चबाता-चबाता देवा बोला।

कंकू भी मास्टर के व्यवहार से सर्वथा अप्रसन्न थी, पति की बात को मानते हुए भी कंकू मास्टर के प्रति ईर्ष्या को न पी सकी। बोली : 'है तो बड़ा पाजी! कहीं बदल कर भी नहीं जाता, और है ही नही जो ऐसा मास्टर हमारे सिर पर लाद रखा है सरकार ने। कपास के दिनों में कपास बिनवाता है, नदी के किनारे से लकड़ियाँ मँगवाता है, लिपाई-पुताई तो साधारण सी चीज हो गयी है।'

भीमा को मास्टर से क्या लेना-देना था, वह तो अपनी वीरता हाँक रहा था, चन्दा को रिझाने के लिए। कभी से चन्दा की ओर टुकर टुकर देख रहा था, पर वह कब देखने वाली थी! समाधिस्था सीता को छलने के लिए रावण के से सारे प्रयत्न भीमा के व्यर्थ हो गये, वह सफल न हो सका। पर वह तो चन्दा को खुश करने की ठान बैठा था। अन्तिम अस्त्र फेंकते हुए वह बोला : 'अबेरे-सबेरे वह मेरे हाथ की मार खाये बिना बचेगा ही नहीं। आज ही बच गया नही तो........'

सासु-श्वसुर की शर्म को ताक में रख कर सर्पिणी-सी फुँकारती चन्दा बोल पड़ी : 'हाँ, बहुत पानी है तो अन्दर ही रहने दो न!'

छाती पर डाम देते समय चर्र्र् खाल बलती हो ऐसे ही भीमा का हृदय जल उठा. उसके रोम-रोम से आत्मग्लानि की गन्ध आ रही थी, वह तड़फ उठा! 'हैं, क्या तूने मुझे नामर्द समझ लिया है?'

बूढ़ा-बुढ़िया एक दूसरे को आँखों में छिपा कर अतीत को याद कर रहे थे।

नाट्य-गृह के पात्रों के समान चन्दा भी सब कुछ भूल गयी और धड़ाक से बोली : 'मैं क्यों नामर्द कहती। नामर्द कहने वालों की कमी है क्या !'

'कहने वाला एक तो बता, खड़े-खड़े न चबा जाऊँ तो मैं अपने बाप का जाया नहीं।'

'हैं हैं,' माँ के मुँह से आवाज फूट पड़ी। 'अरे ! बोलते तो विचार, क्या कह रहा है ?'

सान पर हथियार चढ़ाने से जैसे-जैसे चिनगारियाँ बढ़ती जाती हैं, वैसे वैसे चलाने वाले का जोश भी बढता जाता है। ठीक वाणीरूपी शान पर भीमारूपी हथियार के जोश में आने से चलाने वाली चन्दा ने अपने पति को खूब पानी चढ़ा दिया।

'नहीं, चुपचाप बोलने दे न माँ ! बोल कर पालना हो तब न इसे।'

अन्तिम वाक्य की समाप्ति होते ही मूँछों पर लगी कढ़ी को पोंछता हुआ देवा से न रहा गया। बोला : 'बहू ! इसमें हमारा भी अपमान होता है समझी न ! आज मैं अपनी जिन्दगी में पहली बार सुन रहा हूँ कि वारेचा के बेटे, पोते बोल को नहीं निभा सकते। बहू ! तुझे क्या पता कि इस गाय जैसे सीधेसादे देवा ने ही एक दिन देखते-देखते दुश्मन का सिर भुट्टे के समान धड़ से जुदा कर दिया था।

चारों ओर जहाँ भी लोगों को मौका मिलता था, वे युद्ध के समाचारों पर समालोचना करना नहीं चूकते थे, कोई कुछ कहता, कोई कुछ, आज यही सीन देवा के सामने नाच रहा था। वे सब अपने ही जीवन-संग्राम के समाचारों की टिप्पणियाँ सुन सुना रहे थे।

'हाँ जी ! पुरानी बातें भी सच हो सकती हैं, पर बहुएँ क्या जानें क्या हो चुका है ? मैं तो जो सामने हो रहा है वही जान सकती हूँ।' चन्दा बोली।

'राम ! राम ! तुझे ध्यान भी है कि तू क्या बोल रही है ?' अपनी धौली मूँछों पर हाथ फेरते हुए जोश में खड़ा हो देवा बोला।

देवा की हालत छेड़खानी से खीजे हुए सोये सिंह के समान थी। उसकी लाल लाल चिनगारी उगलती आँखों को देख कर कंकू किसी भावी अशुभ कल्पना

से कांप गयी । थरथराती आवाज में चन्दा को को… : 'क्यों बहू ! सास-ससुर की भी लाज न रही ?'

'लजाने की क्या बात है, मैं आखिरकार बहू ही तो हूँ ।' चन्दा तुरन्त ही बोल पड़ी ।

'हाँ समझती होगी, अपने पीहर की ही बातें । यह न समझ बैठना । दिन में आसमान के तारे गिनवा दूंगा ।' क्रोध में भीमा बड़बड़ाया ।

पर वह कब मानने वाली थी : 'पीहर का पानी ही बताना होता तो भर-दुपहरी में डाभी की बेटी से मस्करी करने वाले को चीर के न रख देती । कम-बख्त घर तक न पहुँचा होता ।' चन्दा सिंहनी-सी तड़प कर बोली ।

'क्या किसी ने छेड़खानी की ।' शर्माता हुआ देवा पूछने लगा ।

श्वसुर की परेशानी को टालते हुए अपनी ही आन में चन्दा बोली : 'है ऐसा किसी माँ का जाया, जो चन्दा को छूकर सकुशल अपने घर पहुँच सके, पर अ.ज तो तुम्हारी आबरू की खातिर ही मैं परपुरुष की हँसी को खून के घूंट-सी पी गयी । मैंने यदि खुद ही उसको मजा चखाया होता तो तुम्हारी क्या मनोदशा हुई होती, इसे मैं क्या जानूँ ? तुम्हीं कल को कहते बहू बड़े नीच घर की है । जिसे कुछ पता ही नहीं है कि किसके साथ कैसा बर्तना चाहिये, क्या हम मर गये थे, जो तुझे उसको दण्ड देने की आवश्यकता पड़ी । फिर चन्दा ने भीमा की ओर कटाक्ष फेंकते हुए कहा : 'जब तक मालिक बैठा हो, स्त्री को फैसला करने का क्या अधिकार है ?'

देवा ने जिज्ञासा भाव से पूछा : 'क्यों बहू ! था कौन वह दुष्ट ?'

'जो हो सो जिसकी मौत आ रही होगी वह और कौन होता ?' भीमा ने कहा ।

चन्दा ने वाक्य को बढ़ाते कहा : 'मौत घूमती है या खुशी, यह तो राम ही जाने ?'

भीमा ने पुरुषोचित मर्यादा बताते हुए कहा : 'जब गीदड़ की मौत आती है तो वह गाँव की सीमा में आता है । है ही न मौत की बात, जो देवा की बहू से छेड़खानी की है ?'

'अच्छा छोड़ न इधर उधर की, बता है कौन जिसने तुझसे मजाक किया है ?' कंकू दो टूँक बात कहते कहते बोली।

'होता कौन वही पूँजा।'

'हैं ! कौन पूँजा ? वही बोमरोलियान ?

चन्दा ने विना कुछ बोले सिर हिलाते हुए स्वीकृति दी।

भीमा के मस्तिष्क में पूँजा का सारा चित्र उतर आया।

अरे पूँजा तो था मूल निवासी भोमरोत का, किन्तु माँ-बाप के मर जाने पर अपने मामा के घर हमारे गाँव में आ गया है। यहीं शैशव से किशोर और अब युवक बना है। छोटे बड़े भले बुरे सभी काम किये' सजा भुगती, दुनिया के सारे कुकर्म उसने भोग लिये, गाँव की किसी स्त्री को छेड़े विना वह नहीं मानता। चाहे घरों में कूमल (सेंध) लगानी हो, चाहे आग या लूटना सभी कुछ पूँजा कर रहा था, चारों ओर इसकी कुख्याति और भीति फैली हुई थी। लोग इसके कदमों में आने वाले सितमों को देखने के आदी हो गये थे। पहली स्त्री को छोड़ देने पर भी उसे जिसने अपने घरमें बिठाया था उसका छप्पर तक जला डाला था। दूसरी स्त्री तो एक बच्चे को लेकर जैसे तैसे अपने बाप के घर मुसीबतों में दिन गुजार रही है। और यह अब इसके घर में तीसरी भी आ गयी है। देव जाने कहाँ से किसकी उड़ा कर लाया है। यह बेचारी आने को तो आ गयी पर, अब बड़ी बुरी हालत में हैं। क्या सुन्दर और भरी देह की थी ? और आज क्या रह गया है ? सिवाय पञ्जर के। बोली, चाल-चलन से रूप रंग से तो किसी बड़े घर की बहू लगती है। हाँ आवेग में घर से भाग निकली है। और तो किसी को क्या पता लेकिन जब कोई उससे अधिक पूछता तो बेचारी दुखियारी आँसू बहा कर अपनी करनी पर दो बूँद पानी फेर देती थी। इससे लोगों को इस बेचारी के भूत के ऊपर वहम पर वहम बढ़ता गया।

और इस महायुद्ध की मँहगाई में चारों ओर होनें वाली चोरी, डाके, और हत्याओं में पूँजा का बराबर हाथ रहता था, इसे सब कोई मानता था।

पुलिस भी जैसे इससे मिली हो तभी तो जब कभी दो चार महीने में पुलिस का हवालदार आता तो पूँजा के घर में ही खाता पीता, थानेदार भी पूँजा के

ही घर से शराब, मुर्गी व अण्डे आदि कूड़ा कचरा मँगा कर खाता था। ऐसा था सरकारी लोगों के साथ पूँजा का रसूक।

और अभी कुछ दिन पूर्व ही तो पास के गाँव में चोरी हुई, इस गाँव के दो दो चार निर्दोष आदमी तो पकड़े गये पर चार छः बार का सजायाफ्ता पूँजा मूँछों पर ताव देता सफा बचा रहा। तब से तो लोग और भी दहशत खाने लगे कि पूँजा ने तो सरकारी कर्मचारियों को भी फोड़ लिया है।

पूँजा की बात सुनते ही देवा चुप हो गया। देवा बनिया थोड़े था, उसने भी अपनी भर जवानी में लोगों के देखते देखते अपने चाचा के हत्यारे का सिर एक ही झपट्टे में धड़ से जुदा कर दिया था। उसे वे दिन याद थे। जब कि होली धुलैडी के दिन सारा गाँव नाच, रंग, खाने-पीने में डूबा था और २५ वर्षों से बुझी हुई शत्रुता की आग पलक मारते भभक उठी। इस गाँव में वारेचा और गेहरा खानदानों में आठ पीढ़ियों से वैर चला आ रहा था। दोनों खानदान अवसर मिलते ही एक दूसरे का सिर उड़ा देते थे। पर, अबकी बार तो सारे गाँव वालों को विश्वास हो गया था कि २०,२५ वर्ष तो बीत गये हैं, आपस में खान, पान, बोल-चाल, आना-जाना सभी तो होने लगा है, इनलोगों की सैंकड़ों वर्षों की दुश्मनी सदा सदा के लिए शान्त हो गयी है। पर किसी को क्या पता था यह द्वेषानल राख में दबा पड़ा है। जेहरा खानदान ने होली के रङ्ग गुलाल का फायदा उठाया और देवा के चाचा को सदा के लिए धरती पर सुला दिया। देवा का बाप जीता था। उसने १५,२० वर्ष तपस्या की पर सब व्यर्थ। अन्त में वह मर तो गया पर बदला न ले सका।

एक दिन फिर शेषनाग ने करवट बदली, सारे गाँव के लोग नशे में चूर थे, देवा के पिता की साध पूरी होने चली। देवा ने तीक्ष्ण तरवार के वार से जेहरा खानदानी का मस्तक काट लिया, धड़ जमीन पर लेट गया। पाँच-छः आदमी शक सन्देह पर पकड़े भी गये पर कुछ सबूत न मिलने पर सब छूट गये। देवा भी उन छूटने वालों में था। आँखों के सामने वही समय उभर आया। पर वे भाव न आ सके। वही देवा आज आक्रमण के स्थान पर संरक्षण को मानने चला था।

मामले की गंभीरता को घटाने की गरज से देवा ने बहू से पूछा : 'क्यों बहू ! उसने क्या कहा था ? बता तो सही ।'

चन्दा ने मुँह बिचकाते और फेरते हुए कहा : 'क्या था ? मैंने जो कुछ सुनां हैं, उसे तुम भी सुनना चाहते हो। बहू की मस्करी को और बहू के ही मुख से ?'

'ऐसी बात तो रहने दो बहू रानी ! मुझे सुन कर क्या करना है ?'

कंकू ने बात पूरी होने पर सलाह देते हुए कहा : 'अरी बहू ! ये बातें तो मन में रखनी चाहिये। जब समय आया कि झट से बदला ले लेना चाहिए। तुमने तो बहू ! बात का बतंगड़ बना दिया है।'

चन्दा शायद बनी बात कह कर कुछ शान्त हो गयी थी या विचार मग्न !

भीमा भी इस समस्या का समाधान सोचता रहा पर कोई निष्कर्ष न निकाल सका।

जैसे जलती ज्वाला को राख से ढक दिया हो, ठीक इसी प्रकार यह घटना विना सुलझाये दब गयी।

लेकिन मालूम हो रहा था जैसे भीमा ने कोई फैसला कर लिया है। उसने सैनों से चन्दा की ओर देखा और इशारों में ही कहा : 'देख, जैसे मैं यह ज्वार की बालें काट रहा हूँ, ऐसे ही पूँजा का सिर धड़ से अलग न किया तो मैं भीमा काहे का !'

शाम अपनी स्याह चादर को फैला रही थी. चारों ओर पक्षियों का मधुर कलरव खेल रहा था, पर यहाँ प्रकृति की कोई मधुरिमा न आ सकी। घर जाने के समय तक किसी ने इस बात का जिक्र भी न किया। पर सभी के मनों में आग अन्दर ही अन्दर सुलग रही थी।

★

: ४ :

थानेदार आया

यह गाँव था तो छोटा सा। सरकारी पक्के मकानों को छोड़ कर यहाँ पर पक्के मकान दो तीन ही थे। जब सभी आस-पास के गाँवों में किसी सरकारी आदमी को आना जाना होता तो वह मुकाम इसी छोटे से गाँव में किया करता था। इस गाँव में सरकारीअफसरों के ठहरने की पूरी पूरी सुविधा थी। लेकिन गाँव वालों को सरकारी आदमियों के ठहरने से बड़ा कष्ट होता था। वे जिसे चाहते मनमाने ढंग पर पकड़ लेते, उससे बेगार लेते, रुपया पैसा ऐंठते। बेचारे गाँव के मुखिया की भी नाकों दम था, पर क्या कर सकता था ?

बड़ी कठिनाई यह थी कि आस-पास के रगड़े झगड़े भी इसी गाँव में सँपड़ते थे। एक दो बार इस गाँव के दो चार आदमियों के पास चोरी का माल मिल चुका था, अत: आस पास की बुराइयों में इस गाँव के लोगों का सम्मिलित होना मानी हुई सी बात हो गई थी।

आज जैसे ही स्कूलों का इन्सपेक्टर गाँव से दो चार फर्लाङ्ग दूर गया होगा वैसे ही छोटे थानेदार शंकर राव आ धमके वहाँ। सरकारी साधन सुख सुविधाएँ ठीक ठीक होने पर भी गाँव वालों को साहब के लिए अनेक चीजें जुटानी पड़ती थीं। इस ऊजड़ गाँव में सिवाय नेमीचन्द सेठ के और कौन था, जिसके सिर पर सारा साहबी खर्च का बोझा आता ? विस्तर खाट से लेकर मिर्च मसाले घी खटाई मिठाई सभी कुछ तो देना ही पड़ता था। ज्यादा नहीं तो सेठजी प्रति वर्ष इसी काम में सौ पचास का खर्चा तो कर ही डालते थे। इतना ही क्यों, दो चार पुलिस वाले तो सदैव सेठजी के मेहमान बने ही रहते थे। सप्ताह में दो बार आने वाला डाकिया भी इन्हीं सेठजी के घर भोजन किया करता था।

आज के दिन शंकरराव थानेदार का पदार्पण हो चुका था। मराठा होने के नाते उसे तो सभी चीजें ग्राह्य थीं। तिस पर भी पुलिस का थानेदार, भला वह किसी बात में कैसे पीछे रहता ? इन मौज शोखों के लिए थानेदार को नदी तट का एकान्त अच्छा होता था। ओरे धोरे के गाँवों की अपेक्षा इन्हें यह गाँव

ज्यादा पसन्द था, सीधा तो सेठ क घर से आही जाता था। और लोग भी थानेदार साहब के लिए पालतू मुर्गी और अण्डे आदि भेंट चढ़ा ही देते थे। छोटालाल था तो ब्राह्मण, किन्तु संग सोबत से उसे भी खाने पीने का चस्का पड़ चुका था. लेकिन इस थानदार के आने से तो यह ब्राह्मण देवता देशी और विलायती सब तरह के खान पान में बहुत चतुर हो गया था। यूरोपियनों और मुसलमानों के खान सामे भी नीचे हो गये थे, इस से खाने बनाने में।

रसोई घर में से धुआँ निकलता देख कर शंकरराव दरोगा ने अन्दर झाँकते हुए कहा : 'क्यों छोटे जमादार ! सब सामान आ गया न ?'

शंकरराव जब से सिपाहीगिरी में दाखिल हुआ तभी से हिंदी में बोलने का टूटा फूटा अभ्यास कर रहा था। वह समझता था कि हिंदी में बोलने से रोब दाब अधिक रहता है। तभी तो उसने कभी व्याकरण या भाषा विज्ञान को पास तक नही फटकने दिया। बहुधा लोग यह मानते हैं कि शनैः शनैः भाषा का परिमार्जन और संशोधन स्वयमेव हो जाता है. पर छोटे दारोगाजी के बारे में यह सिद्धान्त सर्वथा मिथ्या साबित हो चुका था। बेचारे दरोगाजी को पन्द्रह वर्षों में भी भाषा का मर्म तो रहा दूर, क, ख भी नहीं आया। यह बात नहीं थी कि ये जनाब हिंदी ही साहित्यिक बोलते हों परन्तु गुजरात में रहते हुए इन्हें गुजराती भी ली-दी सी आती है, और मराठी तो थी ही घर की मातृभाषा। इस प्रकार ये महाशय भाषा का मर्मज्ञमान बैठे थे स्वयं को। भले ही न भाषाविज्ञ उनकी मजाक उड़ाते हों, पर किसी की परवाह करता ही कौन था ?

पतीली में शाक छोंकते हुए छोटालाल ने कहा : 'हाँ साहब ! सब आ गया है, मगर पूँजा को बुलाने को भेजो, कहीं सुअर का बच्चा न मिला तो सब शाक गुड़ गोबर बन जायेगा।'

सामने ओट सी में बैठे हुए जमादार की ओर मुँह करके दरोगाजी बोले : 'अबे जमादार !'

'आया साहब !' बिदकते ढोर की तरह झट से उठता हुआ जमादार बोला।

'उस पूँजा को बुलाने के लिए किसी नौकर को भेजो।' साहब ने पलंग पर बैठते हुए कहा।

पूँजा अर्थात् साहब को शराब पिलाने वाला एजेन्ट। उसका महत्व समझता हुआ जमादार बोला : 'हुजूर किसी और को भेजने की जगह मैं स्वयं ही उसे बुलाये लाता हूँ।' और कन्धे पर लाठी रख कर वह वहाँ से चलता बना।

यद्यपि दरोगाजी खाली घूमने-फिरने के लिए ही आये थे, तो भी खाने-पीने की मजलिस तो बैठती ही। धूल में पड़ी घी की बूँद क्या अकेले उठती है? ब्राह्मण भोजन के बाद बिना दक्षिणा के मान जाते हैं क्या? ऐसे ही सरकारी कर्मचारी रिक्तहस्त बिना दान-दक्षिणा के कब टलते हैं? ये तो नौकर हैं जिन्हें रोज पूजो तो भी नही माने। देख लो न थोड़ी-सी तो इन लोगों की तनख्वाहें और खर्च हैं ठाटबाट के, सेठसाहुकारों-के-से। यह पैसा आता कहाँ से है? पलंग के दोनों छोरों पर दो तकिये पड़े थे। एक तकिये पर तो दरोगाजी सिर रखे हुए थे, दूसरे तकिये को दोनों टाँगों के बीच में सहला रहे थे। शनैः-शनैः जैसे मकड़ो शिकार को फाँसने से पूर्व शाँत-सी बैठी ताकती है।

भले ही खाने-पीने की कतई गुँजायश न हो तो भी अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए दरोगा ने मुखिया की अनुपस्थिति से लाभ उठाते हुए रणछोड़ को बुला पूछा : 'क्यों? गाँव में कैसा चलता है?'

'गाँव में सब ठीकठाक है साहब!' रणछोड़ धीरे से बोला।

दरोगा को हर किसी गाँव में जाकर झूठमूठ कुछ सामान्य प्रश्न पूछने का अभ्यास था ही। 'लग गया तो तीर, नहीं तो तुक्का ही सही' की बात इन्हे खूब अभ्यस्त थी। प्रायः यह अभ्यास कारगर होकर ही रहता था। आज चिराभ्यस्त प्रश्न को दुहराते हुए दारोगाजी बोले : 'वो मेला की क्या बात थी?'

'कौन मेला, साब?'

'वो, पिछले मुहल्ले में रहता है न! साहब ने जरा जोर से अँगुली से बताते हुए कहा। पर बेचारा रणछोड़ कुछ न समझा। क्योंकि मेला तो गाँव में चार-छः थे ही, और अँगुली की दिशा में भी दो-तीन मुहल्ले भी थे। भला बिना जड़ की बातें वह क्या शमझ पाता?

वह बोला : 'हुजूर! कोई बात नही है?'

'हाँ' निष्फल गये वाण को तरकश में रखता हुआ-सा और गुंजायश ढूँढ़ता-ढूँढ़ता थानेदार का नया प्रश्न, नया लहजा उभर आया, हुँकार भरते हुए दरोगा

ने दूसरी गोली छोड़ते हुए कहा : 'अरे ! उस भावो की बात तो मेरे कान में आयी ही थी ।'

मेला-में-से भावो की तरफ मुड़ते हुए दरोगा की बात को सुन कर रणछोड़ डरते-डरते बोला : 'कौन भावो ? हुजूर !'

'कैसे गधे-की-सी ऊलजलूल बातें करता है ? मैं दूर रहता हुआ सब जानता हूँ, पर तू गाँव में रहता हुआ भी कुछ भी नहीं जानता ?' दरोगा क्रुद्ध होता हुआ जोर से बोला ।

रणछोड़ तो दरोगा के नये प्रश्न को समझने की कोशिश कर रहा था कि झट से दूर बरामदे में बैठा हुक्का छोड़ कर साहब की शाबासी लेने की गरज से पास में आकर बेगारी जयसिंह धीरे से बोला : 'भावो गरबड की बात तो नहीं पूछ रहे हैं हुजूर ?'

'हाँ ! हाँ !' साहब शिकार की गन्ध सूँघ कर पलँग पर अधबैठा हुआ-सा बोला : 'मैं तो सीधी बात करता हूँ, लेकिन उल्लू जैसा कुछ समझता ही नहीं है ।' रणछोड़ को वहाँ से उठा कर जयसिंह को बिठाता हुआ दरोगा बोला ।

साहब को त्रिकालज्ञ समझ कर जयसिंह मुँह आयी कच्ची-पक्की बात तो कह गया, पर दूसरे ही क्षण सचझूठ के भय से सकुचा-सा कहने लगा : किन्तु साहब ! इस बात को तो दो महीने बीत गये हैं ।'

'मैं सब कुछ जानता हूँ ।' साहब ने मूँछों पर ताव देते हुए कहा : 'मेरी जान बाहर कुछ नहीं है । किन्तु गाँव में आया हूँ तो तुम लोगों से ही कुछ सुन लूँ, क्या मामला गड़बड़-घोटाला था, इसीलिए पूछ लूँ ?' साहब ने अपना दाव फेंकते हुए कहा ।

अब तो जयसिंह को लगा कि जैसे दरोगाजी सब कुछ तो जानते ही हैं, फिर 'दाई से पेट क्या छिपाना' मानकर सारी रामायण कह सुनाई कण्टस्थ ! मैं तो भावो से उसी दिन कह चुका हूं कि अरे भाई ! आधी तो बीत गई, आधी रह गई, क्यों मुँह काला करता है, थोड़े दिनों के लिए ? एक बरस में लड़का बड़ा हो जाएगा, उसी के हाथ पीले करवा देना । पर मानता कौन है साहब ! मगज हो, तब समझे न ! दिमाग में गोबर भरा है गोबर ! हुजूर, उसने मेरी एक न सनी ।'

बीच में ही हुँकारा भरता हुआ दरोगा बोला : 'हाँ हाँ, मूर्खों के सींग थोड़े होते हैं ?'

'हाँ साहब ! यही बात है। आप ठीक फरमाते हैं।' दारोगा को अपने पक्ष में ढलते देखकर जयसिंह पर और पानी चढ़ गया : 'तो साहब ! क्या कहूँ—?'

'नहीं, कह, कह, मेरे होते क्या डर है तुझे ?' जयसिंह को चकराता देखकर दरोगा की वाणी बदल गई।

'छोकरों के हाथ भी समय पर रंग ही जाएँगे। पर मैं कहाँ लोगों के द्वार खटखटाता फिरूँ ? बस वह कूद पड़ा, पर लड़की का बाप भी बड़ा गुरु घण्टाल निकला, ऐन मौक़े पर नट गया : 'मुझे लड़की का ब्याह नहीं करना।'

बेचारे भावों के पास दो बीघे तो मुश्किल से जमीन थी, उसे सेठ के पास रहन रखकर बड़ी मुसीबत से डेढ़ सौ रुपये ले पाया। बीस रुपयों की कसर थी तो मैं बीच में जामिन बन गया, और काम आगे बढ़ा। लेकिन जैसे ही ब्याहने गए तो उस पट्ठे ने तो हाथ भी कहाँ छूने दिया ! गरीब भावों की मुसीबत देखते ही बनती थी। वह माथे पर हाथ धरे अपनी कम्बख्ती याद कर रुआँसा हो गया। बड़ी कठिनाई से जैसे-तैसे भावो का मामला कुछ ले-दे कर तय किया। तलाक-शुदा बीवी घर में आई। पहले पति को भी ऐसे मौक़े पर खूब सूझी, पूरे सौ माँगने लगा; न देते तो और परेशानी होती। भावो गरीब कहीं का न रहता। बेचारे ने सौ के बदले साठ दे-दिवा कर फन्दा छुड़ाया। क्या करता साहब ! इसके सिवाय और कहाँ था कोई दूसरा चारा ?'

शिकार की गन्ध पास में आते ही चमककर दारोगा बोला : 'हैं ! कब की बात है ?'

'हुजूर ! यह तो बहुत पुरानी बात हो गई है। तब, उस समय यहाँ के दारोगा बड़े मियाँ थे।' जयसिंह ने विज्ञतासूचक स्वर में उत्तर दिया। इस थानेदार और बड़े मियाँ के बीच में तो तीन थानेदार और भी आ चुके थे। इसलिए बात की निःसारता को टटोलता हुआ थानेदार बोला : 'अच्छा ! रहने दे न वे सब बातें जल्दी से बता दे, क्या क्या हुआ था तब ?'

जयसिंह आगे बताता जा रहा था : 'क्यों साहब ! भला ब्याहशादी के खर्चे इस ढंग से पूरे होते हैं ? बेचारे भावो को जमीन रहन करने के बाद भी तो कहाँ

छुटकारा मिला ? उसे अपना छप्पर बेचकर ब्याह रचाने की कीमत चुकानी पड़ी है । देखिए न ! क्या बात बनी ?—चौबेजी गए तो थे छब्बे बनने, लेकिन दो गाँठ की गँवाकर दुब्बे ही रह गए ।'

शिकार की गन्ध बहुत नज़दीक आने पर जैसे शिकारी कुत्ता झपट्टा मारता है, वैसे ही थानेदार भी पूरा पूरा बैठ गया । दैनिक अनुभवों से लाभ लेता हुआ दरोगा पूछ बैठा : 'फिर भाग गयी होगी सुसरी ?'

'तो हुज़ूर ! और क्या होना था ?' जयसिंह बोला : 'यह तो अच्छा हुआ कि साली गाँव की थी, बाहर की होती तो राम रे राम ! किस के हाथ आने वाली थी ।'

साहब ने जानकारी का ढोंग रचते हुए पूछा : 'यह........यह........कौन था है ?'

'हाँ साहब ! यह तो मैं भूल ही गया था कि बेचारी स्त्री का क्या दोष था ? इसमे तो सारा हाथ था, उसके पूर्वपति—छीता घेला का !'

'तो वह पकड़ में कैसे आया ?' थानेदार ने रुआब से पूछा ।

'जी ! ज़ाति की बात थी । हुक्का-पानी बन्द होने का डर ही काफी था । थोड़ी सी डाँट-डपट से काम हो गया ।' बात को खत्म करता हुआ जयसिंह बोला ।

बात में से भी बात निकालने की इच्छा से दरोगा बोला : 'क्यों रे ! तुम लोगों ने बिना ही चेतावनी के उसे छोड़ दिया, या कुछ ले-दे कर ? आगे वह यही करे तो ?'

'कहीं ऐसा हो सकता है मालिक ! कल की तो बात है, बच्चू को बढ़िया पहलोन बछड़ा बेचकर अगले के रुपये दण्ड के साथ चुकाने ही पड़े । क्या हम मूर्ख हैं ? और भावो को भी पाँच रुपये दण्ड के भरने पड़े !' जयसिंह विजयस्वर में बोल रहा था ।

'स्त्री की स्त्री गयी और ऊपर से दण्ड भी ! वाह रे, खूब रहा इन्साफ तुम्हारा !' हैरानी प्रदर्शित करता हुआ दरोगा बोला ।

'नहीं क्यों साहब ! उसे भी तो शिक्षा मिलनी चाहिए कि जैसी-तैसी औरत को तो न बसा ले घर में ।' जयसिंह ने कारण बताते हुए बोला ।

'हैं ! यह दण्ड करनेवाला कौन था ?' मुँह बिचकाते हुए दरोगा बोला ।

'और होता ही कौन साहब ! वे ही तो हैं !'

'अरे ! उनका नाम भी तो कुछ होगा ?'

'जी, वे ही हैं हम लोगों के अन्नदाता बकोर भगत, देवजी मोटा और बाबू तलसिंह—ये लोग जो करें वह हम सब को मंजूर होता है।' जयसिंह ने स्पष्ट करते हुए कहा।

'अच्छा, इनमें मुखिया भी क्या शामिल है ?' दरोगा ने पैंतरा बदल कर पूछा।

'हैं तो सही साहब, पर...........' जयसिंह चुप हो गया कहते कहते।

'अरे, चुप क्यों हो गया रे ?'

'अजी सरकार, क्या कहूँ और ?........ सब को तो नहीं, पर भगत को यह बात अच्छी नहीं लगी।'

'तू तो मुझे जैसे पहेलियाँ बुझाने बैठा है ! साफ़-साफ़ कह न, माजरा क्या है ?' थानेदार ने झिड़कते हुए कहा।

'बात तो सच्ची सी है, मुझे किसका डर है ? भले काम तीनों करते हैं, लेकिन पाप तो अकेले भगत के ही सिर है। वे दो तो भोले-भाले सीधे-सादे हैं। जब आवश्यकता पड़ती है तो खाली भगत उन से हामी भरा लेता है और अपना उल्लू सीधा कर लेता है। सारे दिन और करता ही क्या है ?—मजे करता है, चारों खूँट घूमता है, मटरगस्त लगाता है, क्या मजाल जो किसी की लिपाई-पुताई में आ जाए ! हमारे बाप-दादे भी कमाते कमाते मर गये, पर क्या कर पाये बेचारे ? दो जून भी भर पेट हमें मिलना दुश्वार हो चला है। और ये महाशय पक्की हवेली में ठाट-बाट से रहते हैं। सैकड़ों-हज़ारों से खेलते हैं। कोई पूछने-जाँचने वाला भी तो नहीं है ! धर्मादा का पैसा भी हड़प कर जाते हैं। मुखी से यह नहीं सहा जाता है और हम-जैसों को तो यह बहुत बुरा लगता है।' जयसिंह एक ही साँस में कह गया सारा कच्चा चिट्ठा।

'तो यह सारा जुर्माना इसी ने लिया होगा न ?'

'अजी ऐसे तो जाने कितने ही दण्ड पचा बैठे हैं ये !'

'तो वे किसी काम में नहीं लगाए ?'

'भगवान् का नाम भजो न ! कुछ कह कर कौन बुराई मोल ले ?' मन की सारी गर्मी निकालता हुआ जयसिंह बोला ।

अब तो पूरा-पूरा काम बन गया है, यह मानकर थानेदार ने अपनी चतुराई प्रकट कर दी : 'अच्छा, तू अब जा अपना काम कर। बात तो यह मैं जानता था, पर तेरे मुख से भी सुनना चाहता था ।'

दरोगा ने जमादार से कहा कि शाम पड़ने पर इन सारे लोगों को मेरे पास बुला भेजना । अभी तो ये लोग खेतों पर होंगे, हाँ !'

★

: ५ :

दुर्दिन

बाप बेटे खेत में से जलती हुई आँखें लिये आगे आगे आ रहे थे, पीछे पीछे सास और बहू भी ढोरों को पानी पिला कर आ रही थीं बिना बोले चाले। चौकीदार भी झामट पड़ते ही लोगों की प्रतीक्षा में कौए की तरह ध्यान लगाए बैठा था। उन्हें आता देख कर चिल्ला कर बोला : 'देवाजी! मोटा साहब बुला रहे हैं, जरा यहाँ आना।'

दरोगा के बुलावे पर क्या वायदा? वहाँ तो जाने से ही छुटकारा है वायदे से नहीं। देवा ने दूर खड़े खड़े पूछा दरोगा से : 'घर होकर आऊँ तो—'

'अच्छा घर जाकर आओ, आराम से।' अपनी सत्ता के मद में खाट पर इधर उधर करवटें बदलता हुआ थानेदार बोला।

'सरकार! मैं अभी आया, घर से।' कह कर देवा जल्दी जल्दी घर की ओर चल पड़ा। पर भीमा मन ही मन कुढ़ रहा था। इसी कुढ़न में वह बड़-बड़ाने लगा : 'बड़े साहब के बच्चे की...' और शेष वाक्य उतावली में बोला। 'ऐसे तो कितने ही आकर पड़े रहते हैं, तो इनके लिए हम भूखे-प्यासे यों ही तरसते रहेंगे।'

संसार की ऊँच नीच से चिर परिचित देवा ने कहा : 'अरे! चुप क्यों नहीं हो जाता? अधिकारी है, बुलावे तो बेटा! जाना ही पड़ता है।'

उसी रिस में भर कर भीमा बोला : 'जाओ न! कौन तुम्हें ना कहता है। इसी दासता से तो ये लोग दिन-रात सिर पर चढ़ कर मनमाना नचाते हैं।'

'फिर वही बेवक़ूफ़ी!' बाप की बात सुन कर भीमा चुप हो गया।

देवा तो गाँव की पञ्चायतों में अपनी जवानी से ही भाग लेता आ रहा था। आज कोई नयी बात थोड़ी थी। यह शैशवकाल से ही बड़ा चौकन्ना था। क्या मजाल जो कोई ठग ले? देखो न! रामा और देवा, एक ही दुकानदार के यहाँ दूध देते थे, हलवाई था बड़ा चालाक, सेर आध सेर दूध ज़्यादा लेता था, और दाम कम देता था। देवा ने कई बार उससे कहा : 'पाना चाचा! यह बात

..क नहीं है तुम्हारी, दूध भी ज़्यादा ले लेते हो और पैसे देने के समय आने दो आने कम देते हो !'

'हाँ, हाँ ! लोटे दो लोटे पानी और डाल देता तो और दूध बढ़ जाता ।' पाना चाचा का यही निश्चित उत्तर था ।

'डालने वाले को माँ की सौगन्ध, जिसने एक बूँद भी पानी डाला हो ।' देवा का सीधा जवाब था ।

'मैं कौन सा स्वयम् आकर देखता हूँ । मुझे तो उस शीशी का नम्बर ही शुद्ध अशुद्ध दूध की कहानी बता देता है। इसका नम्बर सच्चा है, हम तुम नहीं ।' पाना चाचा शीशी के दूध को दूसरों के दूध में उँडेलता जवाब दे देता ।

'शीशी तो ठीक-ठीक नम्बर बताती है चाचा, क्यों झूठ बोलते हो ?'

'अच्छा, ले पैसे दो पैसे ज़्यादा ले ले बस न !' पाना चाचा अपनी बुद्धिमत्ता से देवा को टाल देता ।

बात तो सच्ची यह थी कि पाना चाचा था बड़ा चतुर, चालाक । एक दो आदमियों को कम ज़्यादा पैसा देकर अपने पक्ष में कर लेता था, और उनकी सहायता से औरों को खूब चूसता था। यह चतुराई तो चाचा पाना जब से इस गाँव में आये तभी से कर रहे थे ।

एक वर्ष तो देवा ने बकोर भगत और बेचर तलसिंह को साथ में मिला कर पाना चाचा से पूरा पूरा पैसा उछराया । बस उस दिन से तो इस देवा की गिनती बड़े चतुर आदमियों में होने लगी, और गांव की पञ्चायतों में इसे महत्व मिलने लग गया ।

अब धीरे धीरे पाना चाचा और उसके साथी संगातियों के मरने के बाद गाँव के सारे रगड़े झगड़े इन तीनों के माथे आ पड़े और ये हो गये गाँव के सर्वतन्त्र स्वतन्त्र सरपंच मुखिया । इस नाते देवा को भी खूब सफेद स्याह करने को मिल जाता था । पर एक दो बार देवा को आकस्मिक दैवी विपत्ति ने इस आपाधापी से बचा लिया । इसके मन में हुआ कि 'हो न हो ये विपदाएँ मेरे पापों के कारण ही तो नही हैं ।' तब से इसके मन में कुछ परिवर्तन आ गया और अपनी खेती बाड़ी में जुट गया । बकोर भगत की सारी बाजियाँ और हथकण्डे जानता तो था, पर बोलता कुछ न था, इसका विचार था कि 'जो करेगा वही भरेगा ।'

रहा दूसरा बेचर तलसिंह, वह बड़ा फक्कड़ था, जो मुँह में आया, बोल दिया। किसी की कोई शर्म हया नहीं करता था। पर इसे सत् असत् की पहचान कम थी, इन तीनों में पक्का घुटापिटा तो बकोर भगत था। गाँव की चोरी, आगजनी, मारा-पीटी, आदि सभी में तो इसका हाथ था। न भी हो तो भी इसको प्रत्येक घटना की जानकारी अवश्य होती थी। इस क्रिया के साथ ही वह भक्त मण्डली में भी लम्बा तिलक करके बैठने में सबके आगे रहता था।

पर 'सब दिन होत न एक समान' इस भगत के भी दिन लद रहे थे। युवकों की नयी टोली ने इसके विरुद्ध जिहाद छेड़ दिया था। मुखिया रणछोड़ इस नयी टोली का नेता था। भले ही नयी बहू स्वर्ग की अप्सरा क्यों न हो, तो भी उसे स्वच्छन्दता से चलने में रुकावटें ही आ जाती हैं, ठीक यही दशा इस नयी टोली की थी।

भगत सदैव मुखिया को पक्ष में करने के लिए कुछ न कुछ करता ही रहता था। इसी भावों के काण्ड में भी तो मुखिया को भगत ने दो रुपये देने चाहे थे, पर उसने नहीं लिये। पर भगत तो दाव-पेच का जानकार था ही, उसने सोचा कि 'आज नहीं तो कल लेगा ही, मुख में लगे लहू को कौन छोड़ता है ?'

रणछोड़ को नम्बरदार बने छः-आठ महीने मुश्किल से बीते होंगे। इसी अवधि में शंकरराव थानेदार तीसरी बार आया था। शंकरराव को भी 'मुखिया की यह आदत बुरी तो लगती थी, पर उसे सन्तोष था कि यह उसके किसी काम में बाधक नहीं था। उसे अपने काम से काम !'

हाँ, यहाँ पर एक मुसीबत अवश्य थी कि जैसे सरकारी अधिकारियों के चाटुकार खाने पीने वाले और गाँवों में मिले होते हैं, वैसे इस गाँव में कोई प्रभावशाली पुरुष न था। सभी लोग अपने अपने कामकाज में लगे थे। किसी को फ़ुर्सत ही कहाँ थी, कुछ करने धरने की। अफ़ीम खानी और अपने काम में जुट जाना। हाँ ग्राम सेठ और पूँजा को अवश्य बैठे बैठे खाने पीने को मिल जाता था। और ये ही अपना काम निकालते थे बस।

सायंकाल जब थानेदार ने तीनों को बुलाया तो देवा का मन ठीक ठाक रहा, पर बेचारे बेचर को न जाने क्या डर हो गया। वह देवा से मिलने के लिए दो

चार बार उसके घर पर दौड़ा दौड़ा आया था। अब अन्तिम बार देवा जैसे ही बोझ उतार कर पानी पीने बैठा कि बेचर आ धमका।

बोला देवा से : 'क्यों देवजी भाई ! चौकी के आगे होकर आये हो न ?'

'हाँ, क्या तुमको भी बुलाया है ?' पानी का घूँट पेट में उतारते हुए देवा ने उत्तर दिया।

'अरे भाई ! तीनों को बुलाया है। लेकिन भगतजी तो दोपहर के ही बाहर गये हैं, वे अभी आये कहाँ हैं ?'

'हैं, तीनों को बुलाया है तो है जरूर कुछ दाल में काला !'

'दैव ही जाने, क्या मामला है। मैं तो दो तीन बार तुम्हें देखने आ चुका।' बेचर इतना कहते ही नीचे बैठता ही था कि भीमा ने उसे हुक्का थमा दिया।

'अच्छा जो कुछ होगा देखा जायेगा।'

लेकिन बेचर के मन में तो भय छाया था। अपने मन की भीति निकालते बेचर ने कहा : 'है ज़रूर कोई विशेष बात, नहीं तो तीनों को साथ ही क्यों बुलाया जाता। मैं तो रणछोड़ के मुखिया बन जाने पर ही समझ रहा था कि अब ख़ैर नहीं है, गाँव में कुछ न कुछ होता ही रहेगा।'

'तो तुम घबराते क्यों हो ? हमने कुछ थोड़े किया है ?' देवा बोला।

दोनों की बातें हो ही रही थीं कि देवा की घरवाली आ पहुँची, पूछने लगी 'क्यों क्या बात है ?'

'थानेदार ने बुलाया है, बस यही।' बेचर ने कहा।

'इस मरे को कोई काम भी है ? जब देखो लोगों का आराम हराम कर रखा है।' कंकू मुँह बना कर बोली।

कंकू के वचनों से देवा चिड़ गया, वह बड़बड़ा कर बोला : 'इन लोगों को कोई धन्धा भी है ! झूठमूठ में दुनिया भर की पञ्चायतों में सिर खपाते हैं। ना कहते कहते बाल पक गये। क्या मजाल जो कहे का असर हो ले। भला तेरे बाप का क्या बिगड़ रहा है?'

आजीवन पति के सामने न बोलने वाली कंकू आज भी क्या बोलती ? मुँह

में बड़बड़ाती अन्दर चली गयी : 'किस मरे का आज तड़के तड़के मुँह देखा होगा ? सारे दिन यही चिन्ता और परेशानी रही ।'

अभी तक वे दोनों दरोगा के बुलावे को सोच समझ भी न पाये थे कि तभी जयसिंह चौकीदार आकर बोला : 'लो, बेचर भाई ! तुम तो यहाँ आकर बैठ गये, मैं तो तुम्हें खोजता फिर रहा हूँ। चलो न ! थोड़ी देर में लौट आना। वहाँ काम ही क्या है ? साहब हमारे प्राण खाने से तो रुके ?'

जब मुखिया रणछोड़ पहली बार आया था तो उससे भी प्रश्न पूछा गया था कि 'क्यों मुखियाजी ! क्या बात है जो साहब बुला रहे हैं ?'

बेचर ने पहले भगत से भी जिज्ञासा शान्त करनी चाही थी, पर उसको समाधान न मिला। फिर वही प्रश्न किया जयसिंह चौकीदार से: 'अरे भाई ! क्या बात है, जो साहब एक पै दूसरा बुलावा भेज रहा है ? है क्या बात ? कुछ तो अता-पता बता दे ?'

अपनी अज्ञानता बताता हुआ जयसिंह बोला: 'साहब क्या हमसे पूछ कर बुलाता है ?'

'अच्छा भाई ! अच्छा, चल हम आ रहे हैं।' देवा ने कहा।

बेचर : 'भगतजी आ गये क्या ?'

जयसिंह : 'रणछोड़ बुलाने तो गया है।'

दोनों जनों के कम्पाउण्ड में घुसते जयसिंह ने थानेदार से कहा: 'लीजिये साहब ! दोनों को ले आया हूँ।'

'अरे ! अभी तो तीसरा भी तो कोई रह गया है। कौन है वह ?' थानेदार बोला।

'हुजूर ! वही भगतजी, और कौन होता ?' जयसिंह ने प्रत्युत्तर दिया।

'उसके बिना तो सारा काम ही बेकार है। अच्छा, उसके आने तक इन्हें भी बैठा दे न। वहीं नीचे।' थानेदार ने अपनी अकड़ बताते हुए कहा।

थानेदार के दुर्व्यवहार से दोनों जनों को बड़ा दुःख पहुँचा, पर बेचारे क्या कर सकते थे ! भले ही उनकी कौम के लोग 'तू' कहने वाले की जीभ खींच लेते हों, पर अब तो पचासों वर्षों की दासता ने इन्हें मजबूर कर दिया था, गाली-गलौच, जूता खाने के लिए। थी तो यह बड़ी दुःखद बात, कहाँ तो विश्व के

सभ्य देश अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए सर्वस्व होम करने के लिए महायुद्ध लड़ रहे थे, वहाँ हमारे देश में लाखों, करोड़ों लोगों को हरदम अपमान की घूँटें पीनी पड़ती थीं।

इतने में इन दोनों के भाग्य से ही कहिये कि भगतजी भी आ गये।

नाटक की तीसरी घण्टी बजते ही अभिनय शुरू हो गया। मञ्च का पर्दा उठा। आराम से बेफिक्र बैठा दरोगा खड़ा होता हुआ बोला: 'ओ! ला, इन तीनों को मेरे पास।'

तीनों जने दरोगा के साथ ऊपर जा पहुँचे। थानेदार ने पहले तो सिगरेट सुलगायी और फिर टाँगें चौड़ी करके कुर्सी पर बैठ गया। वे तीनों नीचे ज़मीन पर ही बठ गये।

दरोगा ने मुँह से सिगरेट का धुँआ निकालते हुए कहा: 'क्यों! सारी गायक-बाड़ी तुम्हारे ही भाग में आ गयी है? सरकार गधी है, जिसने कोर्ट, कचहरियाँ बना रखी हैं।'

बकोर भगत ने धीरे-से प्रत्युत्तर दिया: 'हुज़ूर! हमने यह कब कहा है?'

'ऐसा नहीं कहा तो क्या? हुजूर के बच्चे।'

मुख से सिगरेट बाहर हटा कर दरोगा बोला: 'अच्छा, चुप रह न! मैं तेरी बदमाशियाँ, मक्कारियाँ जानता हूँ, मुझसे क्या छिपायेगा?' दरोगा ने बकोर भगत को पूरा वाक्य भी न बोलने दिया। फिर सिर उठा कर दरोगा ने ज़ोर से कहा, 'अरे! कौन है जमादार नीचे!'

'आया साहब! कहते ही जमादार को हुक्म मिला, 'जा, उस भावा गरबड़ और छीतर घेला को तो बुला ला।'

नाटक का पर्दा उठते ही जैसे सारा दृश्य दर्शकों की आँखों में समा जाता है ऐसे ही भगत के दिमाग में सारी घटना मूर्तिमन्त हो उठी, 'पर ऐसे झगड़े तो बहुत बार हो चुके हैं। इसमें किसी के बाप का क्या जाता है? दरोगा कौन होता है, इन बातों को पूछने और उखाड़ने वाला?' रह-रह कर तीनों के दिमाग में ये प्रश्न उठ रहे थे और समाधान माँग रहे थे। भले ही वे दोनों पूरी बातें न समझे हों, पर भगत तो सारी बात जान गया था।

थानेदार ने अपना रोब गालिब करते हुए बेचारे देहातियों को चक्कर कटाते

हुए झिड़क कर कहा : 'ज़रा ऐसी सरकारी चोरी करने पर ननिहाल में भेज दू तो पट्ठों को सारा दाल आटे का भाव मालूम पड़ जाय। पता नहीं, इन्हें अभी ! यह कहाँ की सज्जनता है कि जाति के रगड़ों-झगड़ों में पड़ कर तुम बेचारे गरीबों के भी रुपये-पैसे खा जाते हो ?'

'लेकिन........लेकिन साहब........!' भगत बोलना चाहता था, पर दरोगा ने डाँट बता कर उसकी एक न सुनी । 'मुझे तुम्हारी एक भी बात नहीं सुननी है। कोई किसी स्त्री को भगा ले जाता है, तो क्या वह शाकभाजी है ?' जब भगत की बोलती बन्द हो गयी तो दरोगा ने बाकी बचे दोनों की ओर देख कर कहा : 'बड़े चले मुखियागिरी करने ! गधे चराने तो आते नहीं, तुम्हारा बाप तो रुपये दबा कर बैठ गया और तुम चुपचाप बैठे देखा करते हो। फौजदारी गुनाह में आ गये तो मालूम हो जायेगा सब। क्या समझ लिया है तुमने ?'

'साहब ! मैंने कब लिये हैं ? वे तो धर्मादा के हैं।'

इतने में जमादार, दोनों भावा गरबड़ और छीता घेला को बुला कर ले आया। उनकी ओर अँगुली करके दरोगा ने पूछा : 'इनके शरीर पर तो चिथड़े नहीं हैं, ये बेचारे धर्मादा दे सकते हैं ? शर्म नहीं आती तुम्हें, गरीबों को सताते हुए ?' और छीता की ओर देख कर कहा : 'क्यों बे ! तूने पच्चीस रुपये कहाँ से लाकर दिये ?'

बड़ी मुश्किल से तो यह बात दब पायी थी । आज उसे दुबारा उठते देख कर अज्ञान-सा वह बोल उठा। 'किस चीज़ के साहब !'

भावा की ओर अंगुली उठा कर थानेदार बोला: 'इसकी सगी—वह तेरी माँ को भगा ले गया, वही बात तो है न ? याद आई न वह बात तुझे ?' ठेठ अश्लीलता भरे गन्दे शब्दों का खुल कर प्रयोग करते हुए दरोगा ने धमकी दी।

शायद छीता अपने गाँव के बड़े लोगों से डर रहा था, अतः दरोगा ने गाली देते हुए कहा : 'साला कहीं का, क्या देख रहा है उनकी ओर ? खायेंगे क्या तुझे वे ? तेरी माँ की........कह दे न जल्दी कि बछड़े बेच कर दिये थे।'

आखिरकार छीता ने सिर हिला कर अपनी मौन स्वीकृति दे दी । अब दरोगा ने भावा की ओर आँख उठा कर कहा : 'क्यों रे ! तेरी ऐसी-तैसी

लुच्चे कहीं के ! इसकी तो घरवाली की घरवाली गई और ऊपर से पाँच रुपये दण्ड के भी देने पड़े इसे ।' और भगत की ओर देखते हुए बोला : 'कहाँ से आया यह धर्मादा करने ? जिसके पास कुछ भी नहीं है, वही तुम्हें मिला लूटने-खसूटने के लिए ! वाह रे धर्मात्मा ! धन्य हो तुम्हें ! चोर, उचक्के, साले !'

दरोगा सब कुछ जानता है, मान कर भगत दबता हुआ बोला : 'साहब ! वे रुपये तो वैसे के वैसे पड़े हैं । कहीं खर्च थोड़े ही किये हैं । मेरे पास ही तो पड़े हैं ।'

'हाँ ! ऐसा क्यों नहीं बोलता कि वे तो मेरे ही पेट के धर्मादा में हजम हो गये । तुम लोगों को बिना जेल की हवा खिलाये काम नहीं चलेगा ।' दरोगा ने लाल लाल आँखें करते हुए कहा ।

अब दरोगा की मन्शा पूरी हो गयी । उसे चाहिये ही क्या था ? तीस रुपये तो धर्मादा के वसूल किये और ऊपर से डरा-धमका कर किसी ने एक दिया या तीन इसका क्या हिसाब, साहब को तो रुपयों से निस्बत थी । ऊपर से बेचारे छीता के ऊपर दस का दण्ड और आ पड़ा । इसी को कहते हैं जले पर नमक छिड़कना । थानेदारी के पेटेन्ट हथकण्डों से दो ही घण्टों में पचपन बन गये । ऊपर से शराब, माँस की जो बढ़िया दावत मिली, वह लाभ में रही ।

बेचारा देवा मन ही मन कुढ़ रहा था । अभी तो पूरे चौबीस घण्टे पूरे भी नहीं हुए, रात के दो पहर तो अभी शेष हैं । जाने आज किस कम्बख्त का मुँह देखा था । व्यर्थ में गाली की गाली और दण्ड भी ऊपर से देना पड़ा ।

★

: ६ :

पीहर चली गयी

रात का एक बजा था । अभी तक सरकारी चौकी और भजनमण्डली का कीर्तन-स्थल जागृत था, पर इस समय तो चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था। थानेदार अपने सिपाहियों के साथ शराब के नशे में धत्त पड़ा था । सारे दिन के चक्करों से थके हुए चौकीदार आधे सोते आधे जागते पड़े थे। अंगीठी में से थोड़ा धुआँ निकल कर अँधेरे में मिल रहा था। हवा का कहीं नाम न था। गलीकूचों के कुत्ते भी हवा की शान्ति के साथ ही गहरी छाने सो रहे थे।

हाँ, सारे गाँव में भीमा करवटें बदल रहा था, उसे चाहते हुए भी नींद न आयी । कहाँ तो खेत से लौटते सनय उसने पूँजा को पूरा पूरा पाठ पढ़ाने का निर्णय किया था, और कहाँ थानेदार के आ जाने से उसकी इच्छा अन्दर की अन्दर डूब गयी। उसने पूँजा की खबर तो ली थी, पर वह घर पर नहीं था। थानेदार की चाकरी में रुका था। बार बार उसको खोजने से तो तिल का ताड़ बनते क्या देर लगती है? वैरानल से भीमा का शरीर जल रहा था, पर प्रतिकूल समय को देखते हुए उसने आज की रात चुपचाप ही बिता देने की सोची। क्योंकि भीमा बिना बदला लिये कब चूकने वाला था?

घर में बहुत कमरे तो थे नहीं। अतः एक ही घर में एक ही खाट पर दोनों सोते थे। कहाँ तो रोज भीमा चन्दा को जगाता था, पर आज उसे देख कर हैरानी हुई कि, वह तो सोई नहीं है। हाँ आँखें जरूर मिची थीं पर वह चन्दा के जगते पर भी उससे बात नहीं कर सका। उस ने एक बार चाहा कि चन्दा को हिलाऊँ, पर उसका हाथ ऊपर उठा का उठा रह गया। न तो वह सो ही सकता था, नहीं चन्दा से बातें ही कर सकता था।

पड़ोस के कमरे में भीमा के माँ-बाप कंकू और देवा भी तो आज उनींदे पड़े थे। और रातें भी आयीं थीं और आराम से कट गयीं थीं। दोनों बूढ़े काम से थके थकाये आते थे और खा-पीकर सो जाते थे। एक ही करवट पड़े रात बीत जाती थी। पर आज आँखें तो मिची थीं, लेकिन उनमें नींद का कहीं नामो

निशान न था। क्योंकि आज का सारा दिन झगड़े फिसाद में ही बीता था, और इससे दोनों का मन पूरा पूरा उदास हो गया था। उदासी में भूख प्यास, नींद सभी उड़ जाते हैं।

किन्तु चन्दा निश्चिन्त थी, वह तो अपने भावी कर्त्तव्य को चुन चुकी थी। इसमें रत्ती भर भी शंका या सन्देह नहीं था। तो भी रोज़ की तरह सो न सकी थी। क्योंकि इसे अपने जीवनसंगी की मानमर्यादा का ध्यान शेष था। जब तक दोनों जने अपने हृदयों को परस्पर न मिला लें, तब तक एक-तरफ़ी फैसले से क्या होता जाता है? इसके जीवन की यही विशेषता थी कि वह धीरज कभी न छोड़ती।

दोनों एक ही सौड़ में तो थे, पर कोई किसी से बोलता चालता न था। इसी प्रकार और आधा घण्टा बीत गया। चन्दा को बेवशी न थी, बेवशी सिर पर थी तो केवल भीमा को। इसी समय मौन तोड़ती हुई चन्दा ने कन्धे को झकझोरते हुए कहा: 'भीमा! सो गया क्या?'

बात सुनते ही भीमा चट से उठ कर बैठ गया और बोला: 'चन्दा! आज तो नींद आने से रही।'

दोनों बूढ़ों के कान भी इस आवाज़ के साथ ही खड़े हो गये।

चन्दा बोली: 'मैं तो सोचती थी कि तू सो गया है, कैसे जगाऊँ? पर अरे तू तो जागता मिला।'

चन्दा की यह मीठी ठठोली भी तो भीमा के अशान्त मन को आरपार कर गयी। वह अपनी मनोदशा को छिपाता हुआ बोला: 'तू ने मुझे क्या समझा था? शायद तू तो मुझे गधा ही मानती है न?'

'यह तो तू ही जाने। मैंने कुछ थोड़े कहा है।'

'तो तेरे कहने का मतलब क्या था? नींद में खलल होगा इसका तो मतलब यही है न? तुझे ही आत्माभिमान है, मुझे क्यों होता?' भीमा की वाणी में अशान्ति का आभास मिल रहा था।

चन्दा ने इधर उधर की बातें छोड़कर सीधे सीधे भीमा से कहा: 'भीमा!

मुझे तो छलकपट की बातें आती नहीं हैं। मैंने तो तुझे अपनी बात कहने के लिए जगाया है।'

'क्या ?' भीमा ने पूछा।

'देखना, पीछे पछताना मत। ब्याह से पहले अपन अमराई में मिले थे याद है न ?'

'हाँ, हाँ, मुझे तो बराबर सारी बातें हूबहू याद हैं। तू कह तो सही क्या कह रही है ?' अपनी पीड़ा को दबाते हुए भीमा बोला।

'उस समय मैंने अन्तिम शर्त क्या रखी थी जानता है ?' चन्दा ने फिर परीक्षात्मक स्वर से कहा।

'बोल न ? क्या कहना चाहती है ?'

'तुझे याद है, ऐसा मुझे तो नही लगता।'

'क्यों ?'

'याद होता तुझे तो फिर मेरी बात को विना कहे ही तू समझ जाता न ?'

'अर्थात्'

'अर्थात् यही कि तूने तो शर्त नहीं पाली, मुझे तो पालनी पड़ेगी।'

'लेकिन मैंने क्या शर्त नहीं पाली ?'

'हाँ, यह तो मैं भूल ही गयी कहती कि तूने तो अपना स्वामित्व निभा ही दिया है।'

चन्दा का मतलब समझते हुए भीमा ने बीच में ही कहा : 'चन्दा, यह हँसी मजाक का समय नही है जो होना था हो गया, उस की याद दिला कर क्यों छेद रही है मुझे, रहने दे न ! इस बहादुरी को।'

'ले फिर तो मेरी बात पूरी पूरी सुन ले। भीमा, यदि उसी दिन तूने कह दिया होता कि जो होनेवाला होगा हो ही जायेगा तो मै सच कहती हूँ कि मैं साफ़ ना कह देती, 'भीमा ! मै तुझ से ब्याह नही करूँगी।' चन्दा मिट्टी की बनी नहीं है। चन्दा का स्वभाव है, रस्सी जल जाय पर हेंठ न जाये। तू तो कहता था कि 'चन्दा में बड़ाई नही हाँक रहा, एक बार तू मेरी बन जा, क्या मजाल फिर कोई तेरी तरफ अंगुली भी उठा ले ! उठानेवाले

की जान लेकर छोड़ूँ।' और वही भीमा कह रहा है कि 'जो होना था, हो गया' कहकर मेरा कलेजा चाककर रहा है।' चन्दाने अपने दिल की बात कह दी।

'फिर भी तो दिन निकलेगा; समय तो देखना ही पड़ता है न?'

'वेपारियों का सा नफ़ा नुकसान मैं नही जानती, यहाँ तो एक झटका और दो टुकड़े करना सीखा है। तू हिसाब करना जानता होगा, करते रहना। मैं सबेरा होने से पहिले चली जाऊँगी, समझ गया न!'

'हैं, कहाँ जायेगी?' सुनते ही भीमा की छातीपर साँप लोट गया। पर उसने अपने भाव प्रगट न होने दिये।

'तू, नही रखना चाहता तो दूसरी ठेकठैय्या तो देखनी पडेगी।'

'मैं नही रखना चाहता क्या कह रही है तू?'

'हाँ, और क्या? हमारे बीच में क्या शर्त हुई थी? मैं साँढ़ नाथने की बात कभी न कहूँ, डाभी की लड़की की जगह, वारेचा की बहू बनूँ, और तू मेरे अपमान का बदला प्राणो को हथेली प॰ रखकर लेगा।' चन्दाने शर्तनामा खोल दिया।

'हाँ, बात तो यही थी लेकिन जल्दी अर्थात् मौका आवे तब न?

लेकिन तब तक मैं नीचा मुँह किये नहीं बैठ सकती?' चन्दा बोली।

'इसलिए तू जायेगी न?' भीमाने जोर से कहा।

'चली तो जाऊँगी ही, पर जाने जाने में फरक होता है।' चन्दाने कहा।

'हाँ यह तो जानता ही हूँ, कोई तो पति का नाम बढ़ाने जाती है तो कोई बदनामी करने।'

'पर मेरा मतलब यह थोड़ है, मै तो कुछ और कह रही थी, तू तो सुने तब ना?' चन्दाने चिड़कर कहा।

'अच्छा, कह तेरा क्या भाव था?' भीमा बोली।

गला खँखारते चन्दा बोली: 'ले सुन ले मैने ब्याह करते समय कहा था न! भले ही तू मुझे रोटी न दे, कपड़ा न दे, घरवालों की गाली, मारेगे तो मै सब सह सकती हूँ, लेकिन तेरा शराब पीना, व्यभिचारी होना, अपशब्द बोलना मुझे बिल्कुल पसन्द नही है। जानता है पूँजाने क्या कहा,

मेरा राम ही जानता है, पर तू तो मुझे मार कर ही बैठ गया। यह मानापमान के बारे में बनियों की सौदेबाज़ी मुझे कतई पसन्द नहीं है। मैं औरों की तरह नही हूँ। जो अपमान की घूँट पीकर चुपचाप बैठ जाऊँ। मेरा निर्णय तो जो होना था हो गया है। जान जाये तो निर्णय नही बदला सकता। जाने जाने में फेर होता है, आज जैसे मैं अपनी बात से आप ही जा रही हूँ ऐसे ही अपने आप आ जाऊँगी। समय आया तो भरोसा रखना कि यदि कभी तेरी चन्दा के हाथों में भीमा को छोड़कर और किसी की चूड़ियाँ नहीं होंगी ?'

उधर पड़ोस के कमरे में कंकू दम के मारे परेशान थी, पर रंग में भंग पड़ जाने के डर से वह खाँसी नहीं आने देती थी, पर जब न रहा गया तो वह खाँसी।

भामा ने हाथ से छू कर चन्दा को बताया कि 'पगली! कुछ तो विचार कर माँ-बाप के सामने मेरी फजीहत क्यों करती है?'

लेकिन चन्दा तो अपनी ही धुन में थी। उसने भीमा की बात सुनी अनसुनी करती हुई बोली: 'देख भीमा! मै तुझे बदला लेने के लिए नहीं कहती तुझे गर्व हो तो कुछ भी करना। ठीक तो है पुरुषों को। स्त्रियों की उन्हें कब कमी है?'

भीमाने धीरे से कहा : 'चन्दा कहाँ गयी वह तेरी आन जिसमें तूने मेरी गालियाँ भी सहने की शर्त रखी थी। आज तो तू मेरी छोटीसी बात भी मानने को तैय्यार नही है।' भीमाने अपनी सारी बातें चन्दा को समझायीं, पर वह टस से मस न हुई, अपनी ही जिद पकड़ी रही, और कहने लगी: 'देख भीमा! जब तक वैर का बदला ले लेगा न, मैं स्वयं दौड़ी आऊँगी, मुझे बुलाने की भी जरूरत नही है।' चन्दाने अपनी अन्तिम बात कह दी।

अन्दर दूसरे कमरे में दम की मारी बुढ़िया माँ और अपने समय का शेर बाप, चन्दा की बातें सुनकर अकुला गये। कंकू को तो चन्दा की बातें मारे जा रही थीं, पर बार बार देवा उस का हाथ दबाकर ना कहता जा रहा था। पर सहन-शक्ति की सीमातिक्रमण से अबकी बार देवा खुद ही बौखला गया।

उस के ओठ खुले, लेकिन अगले ही क्षण भीमा को आगे कुछ कहते सुनकर चुप हो गया।

'चन्दा! तुझ में जोश है तो इस का भाव यह मत लगा लेना कि मुझमें कम होगा। पर आदमी को आगे पीछे का ध्यान करना पड़ता है। तू नहीं जानती कि बाप को अभी तो कुछ देर पहल चौकी में बुलाया गया था, वहाँ क्या पता क्यों बुलाया गया होगा? इतने में मैं भी कुछ कर बैठूं तो मैं तो मैं, बूढ़े बाप को भी बड़ी बुरी बात का सामना करना पड़ता, पूंजा तो थानेदार का पूरा पिट्ठू है। शायद तुझे पता नही है।'

तो भी स्वयं अपने विचारों में दृढ़ चंदा के ऊपर भीमा की बातों का कोई प्रभाव न पड़ा। वह तपाक से बोली: 'अच्छा भीमा! अपना हिसाब अपने पास रख।'

'तू फिर जायेगी ही न?'

चंदा ने पूर्व की ओर अँगुली उठाकर पश्चिम की ओर की और स्पष्ट करती हुई बोली: 'सूरज पूर्व से पश्चिम भले ही उगे पर मैं तो अपने निश्चय से नहीं टलूंगी।'

खिसियाता भीमा कहने लगा: 'चंदा! तूने मेरा विचार नहीं किया; लोग क्या कहेंगे! और माँ-बाप के कमरे की ओर अँगुली उठाकर धीरे से बोला, 'माँ-बाप क्या मानेंगे? मुझे नालायक सिद्ध करने में तुझे क्या मिलेगा? कुछ तो सोच!'

लेकिन भीमा की सारी बातें चंदा के पीहर जाने की इच्छा को न रोक सकी। हारकर भीमा ने ही दूसरा रास्ता निकालकर कहा: 'चन्दा! तू भले ही पीहर जा, पर एक बात मेरी भी तो मान ले। बिलकुल सबेरे जाने से क्या होगा? सिवाय बदनामी के। ऐसा कर, यहाँ से खा-पीकर बाँस-चढ़े-सूरज चली जाना। मैं भी तेरे साथ चलूं। इससे किसी को शक भी नहीं होगा और तेरी टेक भी निभ जाएगी।'

'तो तू मुझे छोड़ने चलेगा?'

'मर मेरे जाये! नालायक कहीं का, आखिर किसी भी बात की सीमा होती है। यह भी क्या, जो बीबी कहे वही करना। अपनी नाक कटवाते लज्जा नहीं

आती, बेशर्म ! मेरे खून को भी लजा दिया ।' देवा ने यौवन के-से उन्माद भरे कठोर शब्दों में कहा ।

बात पूरी न हो पाई थी कि बुढ़िया भी बड़बड़ाई: 'हाँ, जा जा, चाटता क्यों नहीं लुगाई के तलवे ? खानदान को दाग लगाते शर्म नहीं खाता ! ऐसी भी क्या मुसीबत आ पड़ी ? अरे ! स्त्री ज्यादा चीं-चपड़ करे तो दो धौल जमा दे । इतने पर भी इसे अपनी ताकत का अभिमान हो कि मैंने साँड़ को नाथ दिया था तो मर्द की क्या बिसात ? मुँह लटकाये क्या खड़ा है, क्या तेरा कोई मर गया है ? दिखा क्यों नहीं देता मर्दों के दो हाथ ? दो टुकड़े कर दे न ! नाक-कान काटकर घर से बाहर करके झगड़ा समाप्त कर दे ! बनती है बड़े शेर-बबर की बच्ची ! मैं तो पहले ही कहती थी कि जो स्त्री साँड़ को भी नाथ सकती है, उसको घरवाली बनाना कितना बड़ा जोखम है । ले, चख ले अपने किये कर्मों के कड़ुवे फल को !'

देवा और कंकू की जोशीली बातें थोड़ी देर तक घर में गूँजती रहीं । पर अब सब शांत थे । मौन को भंग करती हुई चन्दा बोली: 'मैं कब ना करती हूँ, कर दो न मेरे शरीर के दो टुकड़े, काटो न नाक कान ! बस इसी में तो मर्दानगी है ! मुझे खूब पता है—जो मर्द सब से दबता है, वही घरवाली के लिए शेर बन कर फाड़ खाने को आ जाता है ।'

और थोड़ी देर चुप रहने के बाद वह फिर बोली: 'मैं तुम्हारे साथ तो आई नहीं हूँ, हम दोनों ने अपनी इच्छा से ब्याह किया है, और अपने-आप अलग हो रहे हैं । मन की मन में मत रखना, अभी तो तुम्हारे ही घर में हूँ, जो चाहो कर लो ।' सब चुप थे ।

एक पहर दिन चड़े चन्दा अपने पीहर चली गयी ।

★

: ७ :

साँढ नाथा

चन्दा रायजी की सारी सन्तानों में छोटी थी। इसमें अपने बाप की जवानी की सारी मस्ती उतर आयी थी। शैशव की क्रीडायें यौवन छा जाने पर भी धीमी नहीं हुई। उल्टी भिन्न-भिन्न कोंपलों से सजती गयी। इसकी नोकीली, कटीली आँखें, चढ़ा हुआ गुलाबी चेहरा, अभिमान से भूली हुई नाक, तेजी में पिसते हुए ओंठ, अकड़ाहट में ऊँची उठी गर्दन, ऊँचे उठे हुए कन्धे, कपड़ों में कसा हुआ यौवन, फलाँग भर कर चलती मदमस्ती चाल में 'छटाँक छटाँक' होता हुआ उसका घाघरा, और इन सबसे अधिक तो लाल रंग की ओढ़नी मे उसका गेहुँआ रंग इतना फबता था कि राह चलते लोग भी ठिठक जाते थे।

चन्दा की रूपमाधुरी को देख कर तो ब्याहने के लिए जाति के सभी तरुणों के मुँह में पानी छूटता था, पर एक बात ऐसी हो गयी थी कि कोई भी उससे ब्याह करने के लिए तैय्यार न था।

बात यों हुई कि एक मदमाता विजार न जाने कहाँ से घूमता-घामता चन्दा के गाँव में आ पहुँचा। बिजार क्या था, पूरा विशालकाय दानव था। उसे देख कर गाँव के ढोर सिमानों से जान बचा कर गाँव में भाग आते थे। लोगों को भी बड़ी परेशानी थी। साँढ देखते लोग इधर-उधर दौड़ते फिरते थे। लोगों की जान आफत में थी, पर क्या मजाल जो कोई उसका उपाय ढूँढ़ सके।

इस परेशानी से बचने के लिए गाँव वालों ने एक सभा बुला कर निर्णय किया कि यदि इस साँढ के पैरों में लकड़ी बाँध दी जाये तो फिर हम हैं और यह है।

दूसरा बोला : 'तब तो बकरी बन जायेगा।'

तीसरा बोला : 'अभी तो तीर भी नहीं लगाते, बाद में तो जो चाहेगा वही मारेगा।'

कोने में बैठा हुआ एक आदमी तो मस्ती में बहक कर बोला : ओ हो, तब बड़ा त्यौहार हो जायेगा।'

इसकी बात को अनुमोदन देने की इच्छा से दूसरा आदमी बोला: 'फिर हम इसे छोड़ थोड़े देंगे ?'

जब सब कह कर चुप हो गये तो एक चतुर आदमी बोला: 'अच्छा भाइयो ! यह तो बताओ उसके पैरों में लकड़ी कौन बाँधेगा ?'

यह सुन कर सब एक-दूसरे का मुँह ताकने लगे।

उसी समय दूर खड़ी किशोरी चन्दा भी उन लोगों की बातें सुन रही थी। वह अपने आप पर अभिमान करती हुई ताने सुनाती हुई बोली : 'जब मैं पढ़ती थी तो मैंने एक कहानी सुनी थी। चूहे बिल्ली के मारे बड़े परेशान थे। जब उनका कोई बस न चला और ये अपने जातीय नाश से बेचैन हो गये तो उनमें से एक बूढ़े चूहे को एक उपाय सूझा। उसने सारे चूहों का एक सम्मेलन बुलाया। जातीय रक्षण की भावना से सभी आबाल-वृद्ध चूहे इकट्ठे हो गये। सभापति के मञ्च पर वही बूढ़ा चूहा आसीन था। सर्वसम्मति से प्रस्ताव स्वीकृत हुआ : 'आज की यह सभा सर्वसम्मति से स्वीकृत करती है कि यदि बिल्ली के गले में घण्टी बाँध दी जाय तो हमें बिल्ली के आने की खबर आसानी से हो जायेगी और हम सब उसके आक्रमण से सचेत हो जायेंगे।' तालियों की गड़गड़ाहट के साथ प्रस्ताव स्वीकृत हो गया। लेकिन अरे ! यह क्या ? बूढ़ा चूहा सभापति पद से कहने लगा : 'भाइयो ! किसी ने पूछ पकड़ने की बात कही, किसी ने टाँगें, किसी ने कान, लेकिन म्याँऊँ के ठौर पकड़ने की बात किसी ने भी नहीं कही। अच्छा बताओ ? कौन है वीर जो बिल्ली के गले में घण्टी बाँध सकेगा ?' सारी सभा में सुई डालो तो आवाज आ जाये, ऐसी निस्तब्धता छा गयी, और स्वीकृत प्रस्ताव रद्दी की टोकरी में डाल दिया गया। ठीक यही बात यहाँ देख रही हूँ मैं। वे पूँछ वाले चूहे थे तो तुम लोग बिना पूँछ के।' कह कर चन्दा हँस पड़ी।

'जिसे मरना हो, वह जाये।' एक आदमी ने शर्माते हुए कहा।

'हाँ जी ! क्या भरोसा सींगवाले जानवर का ?' दूसरे ने अनुमोदन किया।

चंदाने दोनों की बातें सुनकर कहा: 'मुझे तो दया आती है तुम पुरुषों पर, नहीं तो मैं तो अभी नाथ दूँ उसे ?'

'हैं....! हमारे ऊपर दया ?' सब एक स्वर में बोले।

चन्दा बोली: 'तुम्हारे पर तो क्या, बल्कि तुम्हारी मूँछों पर !' मूँछों की ओर अँगुली उठाती हुई चन्दा आगे बोली: 'हाँ, यदि तुम लोग मूँछ मुँडाने की शर्त स्वीकार कर लो तो मैं साँड को नाथ दूँ।'

सब लोग चन्दा की बात सुनकर कुछ समय तो चुप रहे, फिर एक साथ बोले: 'हाँ हाँ ! हमें स्वीकार है चन्दा तेरी शर्त !'

'स्वीकार है ?—स्वीकार है न ?' प्रश्न को दुहराते हुए चन्दाने कहा।

'स्वीकार, स्वीकार !' शतकण्ठों से निकल पड़ा।

'अच्छा तो, कल सूर्योदय के समय आ जाना, जहाँ पर साड़ रहे।' ऐसा कहकर चन्दा अपनी जवानी की मस्ती में पानी की बाढ़ की तरह अपने पीछे पदचिह्न रूपी भीनास छोड़कर वहाँ से चली गई।

रायजी ने अपनी बेटी की प्रतिज्ञा सुनी तो वह अपना सिर पीटने लगा। उसने बहुत समझाना चाहा, किन्तु प्रण की पक्की टस से मस न हुई।

चन्दा ने कहा: 'बाबा ! मैं मर भी गई तो भी तुम्हारा खान्दान खतम थोड़े होगा।' यह था चन्दा का अतिम वचन।

भगवान् अंशुमाली अपनी लाल किरणों से सारी धरती को लाल लाल बना भी न पाये थे कि नया लँहगा और आँगी पहन कर हाथ में मजबूत-सी रस्सी लेकर चन्दा अपनी बात की साधना के लिए चल दी। और लोगों की बातें तो दूर रही सूर्यदेव भी उसकी प्रतिज्ञा पूर्ति देखने के लिए ऊँचा-ऊँचा उचकते जा रहे थे। सारा गाँव इस अभूतपूर्व दृश्य को देखने के लिए उमड़ पड़ा था। रयजी भी बेटी की रक्षा के लिए हाथ में भाला लिए निकल पड़ा।

साँड भी सारी रात हरे-भरे खेतों को चौपट करके इस समय रेलवे की पटरी के किनरे लम्बी टाँग करके पड़ा था। वह तो अजेय होने से अभिमान में था और चन्दा भी अपनी मस्ती भरी जवानी के अभिमान में थी। चन्दा ने पड़े हुए साँड को दूर से देखा लेकिन उसकी गति में कोई अन्तर न पड़ा। अनेक लोग चन्दा के अभिमान को बुरा जानते हुए भी भाले बर्छे से लैस थे, चन्दा को बचाने के लिए। चन्दा ने भी अपनी कमर में तेज छुरा खोंस रखा था, और हाथ में मोटी रस्सी को बेंत की तरह घुमाती घुमाती वह साँड के निकट होती जा रही थी।

वह अलमस्त वृषभराज भी तो अपने मदभरे नयनों से नव-यौवना चन्दा की अलस-गति को देख रहा था, पड़े पड़े। चन्दा ने साँड की आँखों में आँखें डालकर जन्तर मन्तर रचा। प्रतिदिन की भाँति आज भी वह पड़े पड़े गर्दन उठाकर चन्दा को देख रहा था। शायद उसे भी चन्दा को जी-भर देखने की इच्छा हुई होगी, या वह उसे अबला समझा होगा !

साँड वैसे ही चन्दा की ओर देख रहा था, वह न हिलता था न डुलता था। चन्दा उससे दस-बीस कदम दूर थी कि वह झट से रुक गयी। जैसे किसी भय के समय मोटर ब्रेक लगाने से रुक जाती है। लोगों में फुसफुसाहट जाग उठी: 'हैं ? डर गयी है बेचारी !'

'वह तो मुँह-फट पहले से ही है, जहाँ तक हम लोगों की पहुँच थी वहाँ तक तो नाचती कूदती चली गयी।'

'अजी ! इस महान् दानव के सामने भीमसेनों के होश काफूर हो जाते हैं, तो इसकी क्या बिसात ?' लोग कह रहे थे आपस में।

किन्तु रयजी की आँखें, तो अर्जुन के मत्स्यलक्ष्य की आँखों के समान, सिवाय चन्दा और साँड के और कुछ नहीं देख रही थीं।

चन्दा तो वैसी की वैसी ही खड़ी रही। वह तो साँड की आँखों में अपनी निमिष दृष्टि डाल कर उसकी शक्ति खींचे जा रही थी। और साँड भी चन्दा के सौन्दर्य की अमित अभिलाषा आँखों से आँखें गड़ा कर पूर्ण कर रहा था।

अब चन्दा को अपनी विजय पर भरोसा था। उसे लगा कि साँड निरुपाय हो गया है, वह कुछ नहीं करेगा। बेचारा साँड तो अपना सर्वस्व न्यौछावर कर ही चुका था, उसकी आँखें तो चन्दा से दया की भीख माँग रही थीं। एक....दो और तीन कहते कहते वह साँड के निकट जा पहुँची। उसने मन्त्र-मुग्ध साँड के गले पर झुक कर अपना देव-दुर्लभ सुकोमल हाथ फेरना शुरू कर दिया।

'यह कूदकर उठा....बस हुआ काम तमाम इस गर्वी का।' यह विचार करने वालों की आँखें फटी की फटी रह गई। अनेक को तो इस घटना पर विश्वास ही न आया, अतः उन्होंने अपनी आँखों के ऊपर संदेह निवारण के लिए हाथ फेरे, लेकिन फिर भी वही दृश्य, चन्दा सहला रही है साँड को।

अब दूसरा दृश्य आया। चन्दा जैसे खड़ी खड़ी थक गई हो बैठ गई, नीचे साँड के सामने। वह तो घरेलू पशु के समान कुछ न बोला, सिवाय प्रेम की निगाहों के। चन्दा शनैः शनैः साँड के सिर पर गले में प्रेममय हाथों का संस्पर्श करने लगी। साँड तो जीवन में प्रथमबार किसी के प्रेमी-करों का सुखद अनुभव कर रहा था। उसने अपनी थूँथ जमीन पर टेक दी और स्वर्गीय आनन्द का भान करके सो गया। चन्दा का मन असीम थाटें मार रहा था, उसने क्रमशः हाथ फेरते फेरते चारों पैर ऊँचे उठाकर भी देख लिये। उसे साँड की स्थिति पर दया आयी। लेकिन यह दया; बादलों में चमकने वाली बिजली की तरह थी। उसका मुख खुल गया : 'हैं ! यह इतना सीधा है ?'

चन्दा ने धीरे धीरे उसके दोनों पैर अस्कील या अगाड़ी पिछाड़ी लगाकर बाँध दिये। चन्दा अपना काम पूरा कर चुकी थी। उसके मुख पर विजय का हास्य लहरा रहा था।

सहलाने की बात बन्द होते ही वृषभराज़ चौंक पड़ा। चन्दा तब तक खड़ी हो गयी थी, और चलने की स्थिति में दाहिना पैर आगे और बाँया पैर पीछे थोड़ा सा उठाये उसे देख रही थी। मानो किसी तपस्वी का व्रत-भंग करने देव-राज की स्वर्ग से भेजी अप्सरा अपना काम पूरा करके लौट रही हो। वह धीरे से आगे बढ़ी।

साँड की आँखें तो चन्दा पर थीं। उसके दूर होते ही वह गर्दन उठा कर देखने लगा, चन्दा तो आगे बढ़ चुकी थी, अब साँड ने उठने की सोची, लेकिन उसकी उठने की शक्ति क्षीण हो चुकी थी। वह पिञ्जर-ग्रस्त सिंह के समान गर्जा, पर सब व्यर्थ था। वह दौड़ने के लिए जैसे तैसे बैठा तो हो गया, परन्तु दौड़ न सका। उसने अपनी बेवशी पर फिर गर्जना की। चन्दा की जीत की आँखें साँड से फिर मिलीं। साँड अपनी मूर्खता पर पछता रहा था, शर्म से उसकी गरदन फिर नीचे झुक गयी थीं।

चन्दा अपार मानव-मेदिनी के निकट आ गयी। उसके मुख से स्वभावा-नुसार गर्वोक्ति फूटी : 'कोई इसको न मारे।' सब सुन कर मौन हो रहे।

रयजी के आनन्द का पारावार उत्ताल तरंगों में उमड़ रहा था, वह अपनी

पुत्री की वीरता पर मुग्ध था, उसके बोझीले होठों ने गुनगुनाया : 'बेटी ! आज तू ने पुरुषों को क्या मुच्छड़ शेरों को भी मात दे दी।'

'नहीं पिताजी ! पुरुष कभी किसी से पीछे रहा है ? ये सब, कौन कहता है कि पुरुष हैं, मूँछें हो जाने का पुरुषत्व से क्या संबंध है ?' चन्दा की घृणा प्रेरित वाणी सबके मनों को छेदती हुई अनन्त में समा गयी।

यह क्रूर कटाक्ष चन्दा का आदि और अन्त हो गया। सारे गाँव के जन-जन की वाणी में चन्दा की वीरता की कहानी अजर-अमर बन गयी, विशेषतः इस की विरादरी में तो यह घटना रामायण महाभारत की कथाओं से बढ़ चढ़ गया।

: ८ :

नूतन समस्या

इस घटना से नवीन समस्या खड़ी हो गयी। चन्दा की प्रथम सगाई, जब यह दो वर्ष की थी तभी हो गयी थी। किन्तु वह लड़का एक बार बाहर जहाँ यात्रा में गया हुआ था, वहीं उसकी मृत्यु हो गयी, इस समय चन्दा की उमर ८-९ वर्ष की हो गयी थी। रयजी का घर अपनी जाति में खाता-पीता था, लड़की को भले गले की फाँसी माननेवाले मानते हों, तो भी योंही तो किसी को नहीं ब्याह दी जाती। रयजी के समान तो बिरादरी भर में दो चार ही घर थे, पर दो वर्ष की सख्त मेहनत करने पर भी चन्दा को कोई सुयोग्य घर न मिला। चन्दा बचपन से ही हट्टी-कट्टी थी, अतः ब्याह के समय लड़के की शारीरिक दशा और घर की इज्जत आबरु देखना पड़ता था। खैर, तीसरे वर्ष बड़ी मुसीबत से एक खाते पीते घर में चन्दा की सगाई हो गयी। पर घर ठीक होने पर भी वर तो गुड्डा था, केवल आठ वर्ष का। चन्दा के भावी वर का नाम मनोहर और श्वसुर का नाम था वीरजी खाँटवाला। इस सम्बन्ध से रयजी को भी सन्तोष न था, तो भी वैद्यक का सहारा लेकर वे सब चुप हो रहे, औषधियों से मरियल मनोहर की काया बलिष्ठ हो जायेगी, क्या सोचने की बात है ?

सगाई हुए दो वर्ष बीत गए थे, रयजी ने धीरता से इन दो वर्षों तक मनोहर के शरीर को देखा भाला, लेकिन वह तो बनने के स्थान पर बिगड़ता जा रहा था। चन्दा के सामने वह गुड्डा भर था।

रयजी बार बार सोचता जाता था कि आगामी वर्ष शारदा विवाह विधान की सीमा समाप्त हो जायेगी और चन्दा भी चौदह वर्ष पूरा कर लेगी, तब तक तो विवाह हो ही जाना चाहिये, इस लड़के के साथ तो चन्दा ब्याह कर के क्या करेगी ? पर जैसे ही वह आगे सोचता, उसके सामने केवल निराशा के और कुछ न था। तब वह मन मार कर स्वान्तः सुखाय सोच लेता : 'क्या जल्दी है अभी ? कौन-सी खाने पीने की कमी है ? एक दो वर्ष और सही, इतने में कोई न कोई तो मिलेगा ही।'

उधर मनोहर की दशा और भी बिगड़ गयी। मलेरिया का मौसम आ गया था, चारों ओर बीमारी का बड़ा जोर था। बेचारा मनोहर भी इसी बीमारी में फँस गया। पहले तो आशा ही न थी बचने की, प्रभु की दया से बचा भी तो रहा सहा हड्डी मांस ही गायब हो गया। बेचारा रयजी करता ही क्या ? उसने कहा : 'अगले वर्ष देखा जायेगा ब्याह।'

यह दशा केवल रयजी की हो, यह बात न थी। स्त्रियाँ भी आपस में बातें करतीं : 'चन्दा जितनी बलिष्ठ सुडौल सुन्दरी है, इतना ही क्या इससे आधा भी होता तो ठीक होता, किन्तु विधना भी कैसा है वही जाने ?'

सगाई के साल की बात थी। रामनवमी के मेले में चन्दा ने बड़े यत्न से मनोहर को देखा था। अभी तक चार पाँच वर्ष बीतने पर भी नाक की रेंट से लिपापुता उसका मुख चन्दा के दिमाग में ज्यों का त्यों चित्रलिखित सा खिंचा था। किन्तु चार-पाँच वर्ष बीत जाने पर चन्दा मनोहर के बारे में बड़ी सुखद धारणा सँजोये बैठी थी। उसका मनोहर खेतों पर गोफन लिए पशु-पक्षियों को भगाता होगा, खेतों में गाड़ी घुमाता होगा, 'छोटी नाड़ और मोटा फेंटा' के अनुसार मुँड़ासा बाँधता होगा बड़ा ढाडा। मिर्जई की बड़ी जेब में पैनी छुरी रखता होगा। छः-सात हाथ की लाठी कन्धे पर धरे धमधमाता चलता होगा। ये स्वप्न चन्दा के मस्तिष्क में चक्कर काटा करते थे। इसी बीच उसकी बीमारी की खबर ने चन्दा के स्वप्नों को झकझोर दिया। उसके बच जाने पर भी चन्दा के लिए वह बोझा ही था, 'हाँ भले ही चन्दा उसे गोदी में लिए घूमा करे।' स्त्रियाँ चन्दा की मजाक उड़ाया करतीं।

चन्दा भी अपने जीवन-साथी को देखना चाहती थी। इस बार रामदेव पीर के मेले में तो वह जरूर ही जाकर उसे देखेगी, चन्दा ने अपना निश्चय कर लिया था।

मेला लगने में अभी पन्द्रह दिन शेष थे। चन्दा के साँड नाथने की घटना हो गयी। मनोहर के बाप ने जब यह बात सुनी तो बेचारे की सारी रात आंखों में ही कट गयी। साँड को नाथने वाली चन्दा के सामने तो उसका मनोहर दूध पीता बालक है। मेरे जीवन काल में तो भले ही साँड क्या बाघ को नाथने वाली हो,

निर्वाह हो जायेगा, किन्तु मेरे बाद में..........., इस कल्पना से ही उसका मन बैठ गया।

परन्तु वीरजी इस बात के लिए कतई तैय्यार न था कि वह स्वयं जाकर चन्दा के बाप रयजी से इस ब्याह की ना कर दे। यह तो अपना अपमान है, लेकिन यदि रयजी खुद ही इस सम्बन्ध को तोड़ना चाहे तो उसे कोई आपत्ति न होगी।

इसलिए वीरजी ने चतुराई से समधी का मन जान लेना उचित समझा। और ये 'जैसा होगा, देखा जायेगा' की बात तो थी ही।

शनै: शनै: मनोहर स्वस्थ होता चला। अब वह सिर पर पगड़ी बाँध कर खेतों में भी रखवाली आदि कर रहा था। बड़ी बीमारी से बच जाने पर वीरजी ने रामदेव पीर की मनौती मना रखी थी। उसी की कृपा से तो बचा था मनोहर। अत: रामदेव पीर की यात्रा में जाना तो आवश्यक था। घर में इसी की तैय्यारी चल रही थी।

आसपास के गाँवों में, विशेषत: पाटण वाड़िया कौम में तो साँड नाथने की घटना गजरा मास और सदेवन्त साँवलिया के समान रसिक हो गयी थी। साँड नाथने वाली लड़की का वर चूहे जैसा इत्यादि बातें सब में नाच रही थीं।

एक पक्ष कहता था : 'अरे! यह जोड़ा क्या चलेगा? माँ-बाप ब्याह भी देंगे तो घर तो बनने से रहा। मेरी सुसरी साँड नाथने वाली दबंग का निर्वाह मनोहरिया से हो सकेगा?

दूसरा पक्ष कहता था : 'नहीं भाई! तुम भूल रहे हो। यहीं तो चन्दा का मजा है। तभी तो मनमानी करती रहेगी, कमजोर पति को इशारे पर नचायेगी।'

इन्हीं बातों में पन्द्रह दिन बीत गये, रामदेव पीर का मेला आ पहुँचा। प्रति वर्ष तो अनेक भावनाओं से भरी रहती थी यात्रियों की मनोभूमि। कोई सैर-सपाटे के लिए आता, कोई आस्तिकता-वश आता, कोई सगे-सम्बन्धियों से मिलने आता, कुछ मेले का का भराव देखते और अनेक रंगबिरंगी पोशाकें पहने अपने दिल की घुण्डी खोलने आते थे। किन्तु इस वर्ष तो अधिकांश की भावनाओं में एकता थी, समता थी, प्रत्येक स्त्री-पुरुष, बाल-वृद्ध सोच कर आया था कि देखेंगे साली को, कैसी है वह साँड को नाथने वाली? कुछ सोचते थे वह हाथ में आ जाय

तो.........., कुछ का सोच-विचार था कि कौन है जो उसे ब्याहेगा ? और स्त्रियाँ कहती थीं : 'उस सिहनी को जरूर देखना चाहिये, जिसने मर्दो की मूछों पर सब के सामने थूक दिया है ।' युवकों के और वृद्धों के भावों में काफी परिवर्तन था, युवक अपनी हौंस मिटाना चाहते थे तो वृद्ध अपने गत जीवन की याद करना चाहते थे। इन्हें तो जो हुआ सो हुआ ही था । परन्तु दुकानदारों, भिखारियों, साधु-महात्माओं और पण्डे-पुजारियों में चन्दा की चर्चा धड़ल्ले से हो रही थी। मजे की बात तो यह भी हुई कि परिचित और अपरिचित सभी उसके दर्शनों के लिए समुत्सुक थे, आतुर थे ।

चन्दा के दर्शन स्पर्शन की प्रबलतम अभिलाषा सँजोये भीमा भी कई दिनों से मेला जाने की तैय्यारी में था । प्रति वर्ष तो भीमा दिन के दिन तक तैय्यार न हो पाता था, किन्तु इस वर्ष तो वह गाँव के सेठ नेमीचन्द की दुकान से एक दिन पहले एक आने का साबुन लाया और नदी पर जाकर सारे कपड़ों को धो लाया, स्वयं भी बहुत दिनों के बाद मल-मल कर न्हाता आया था। कल ही तो मण्डी में गाड़ी भर कर गया था तो गाड़ी एक ओर खड़ी कर के उसने सलून में बढ़िया बाल कटवाये थे। इस शौक के लिए भीमा को बड़ा समय यों ही बिताना पड़ा था। बिना कुर्सी पर बैठे वन नम्बर के बाल कहाँ कट सकते थे ? इस विचार से भीमा जब 'सलून' में गया तो वहाँ दोनों कुर्सियाँ भरी थीं, तभी एक तिपाई पर बैठे नाई ने बड़े सम्मान से कहा : 'क्यों ठाकुर साहब ! बैठिये न ? कहाँ चल दिये गुस्से होकर ?' 'नहीं, नहीं ! गुस्सा काहे का, मैं जरा अभी थोड़ा सा काम कर आऊँ ।' कह कर कुर्सी खाली होने तक उसे इधर उधर के चक्कर व्यर्थ खाने पड़े थे। कुर्सी खाली होते ही भीमा 'सलून' में आ धमका। उसे शहर वालों की बदमाशी याद आ रही थी। वह बोल रहा था : 'हैं पूरे पक्के लुच्चे ! लेंगे तो मुझसे भी वही दो आने, किन्तु बिठा रहे थे उस तिपाई पर । मैं कभी से इन सारे शहरियों की मक्कारी जानता हूँ, कौन आवे इनके शिकञ्जे में ?' इस प्रकार बड़बड़ाता वह कुर्सी पर बैठ गया। तभी उसकी नजर तिपाई पर बैठे सब से बड़े नाई के ऊपर पड़ी, मानो भीमा आँखों आँखों कह रहा था : 'मैं तुम्हारी नस नस से परिचित हूँ ।' इतने में कैंची ने उसके बाल पकड़े, झट से उसके मुँह से निकल पड़ा : ' 'अरे नाई ठाकुर ! जरा क्षमा करना कसूर।

'नहीं ठाकुर साहब ! इसमें कहने की क्या आवश्यकता है ?' तिपाई पर बैठे नाई ने भीमा को देख कर कहा । इस बात का बुरा तो लगा भीमा को लेकिन वह चुप ही रहा । भीमा के सामने बड़ा शीशा टँगा था, उसमें भीमा अपना प्रतिबिम्ब विविध मनोरथों के साथ देख रहा था । यह उसका 'सलून' में बाल बनवाने का पहला अवसर था । नहीं तो जब कभी उसे शहर में आना पड़ता था, वह ज्यादा से ज्यादा पान वालों की दुकान पर टँगे शीशे में अपनी मुख छवि निरख लेता था और आज का 'सलून' तो उसके लिए वरदान निकला । गाँव का नाई तो खूंडे उस्तरे से ऐसा मूंडता था कि बिना साबुन के भी माँ याद आ जाती है। रो रो कर हजामत बनानी पड़ती है । लेकिन यहाँ का ठाठ ही न्यारा है । दाढ़ी पर पहले साबुन के साथ ब्रुश मलते हैं खूब, फिर बालों के नरम हो जाने पर तेज उस्तरे से हौले हौले हलके हाथों से हजामत बनाते हैं । इन्हीं विचारों में भीमा पड़ा था कि हजाम ने दाढ़ी मूंड़ दी और सिर के बाल भी छोटे कर दिये । अब हजाम ने सिर में फुव्वारे से पानी डाला, ब्रुश और टुवाल से इधर उधर बिखरे बाल झाड़े, अन्त में सुगन्धित तेल लगाया । भीमा को कल के मेले की याद थी, वह बोला : 'भैय्या नाई ! जरा अतर-तेल ज्यादा डाल देना ।' उसकी मर्जी से नाई ने दो तीन बूंद और डाल दिया । भीमा ने सोचा इतना महामूल्य अतर यों ही पुंछ गया तो कैसे काम चलेगा ? उसने उस दिन साफा नही बाँधा ।

यह पूर्व सज्जा थी भीमा की, मेले में जाने की । नया नकोर धुला हुआ कत्थई रंग की किनारी वाला अलग अलग पीताम्बरी धोती घुटने तक गोलाकार हरे रंग में रंगा हुआ कुर्ता, ऊपर से काला देशी ढंग का शिकारी जेबों वाला कोट, और सिर पर एक ओर को झुका हुका टेढ़ा मुंडासा; जिसके ऊपर बिलाँद भर ऊँची कलँगी थी और जिसका दूसरा छोर पीछे कमर तक लटका हुआ था, पैरों में भावजी मोची का बनाया हुआ चर्रमर्र करता हुआ तस्मे वाला बूट था, कन्धे पर लम्बी मोटी लाठी, और कान में सुगन्धित फोवा डाल कर भीमा चले मेले में। इसके साथी इसका रंगढंग देख कर मुँह ही मुँह मुस्करा रहे थे ।

'भीमा ! कुछ दाल में काला लगता है, कह तो यार ! क्या बात है आज ? इतने सजधज के चले ?' एक दोस्त ने पूछा ।

'सच्ची बात तो मैं बताऊँ, चन्दा तेरे ही दाव में आयेगी ।' दूसरा साथी कह रहा था ।

'हाँ वह तो ले ही ली समझो न ! देखते नहीं हो कम कसर के लिए जेब में छुरा भी तो रख छोड़ा है ?' तीसरे ने मुस्कराते हुए कहा ।

इन बातों ने भीमा के मन को खूब गुदगुदाया, किन्तु उसने मनोभावों को छिपा कर कहा : जो दिल में होता है वह मुँह में आ हो जाता है । तभी तो कहते हो मुझे ।'

एक भड़भड़िया तो यहाँ तक बोल उठा: 'हाँ भीमा ? हमारे मनमें तो बहुत कुछ है--है तेरे हाथ की बात !'

दूसरा : 'इसके हाथ में हो तो, यह तुम तक आनेही क्यों देगा भाई ?'

तीसरा : 'देख चिमन ! भावना से ही कोई मिलजावे तो रयजी इतनी मुसीबत उठाकर मनोहरिया कोही ढूँढ़ता ?, चिमन ! तुम कुछ भी कहो यार ! जिसके संस्कार होंगे वही चन्दा को पासकेगा, हम तुम भले ही खयाली फुलाव पकावें, पहला : 'संस्कार उस्कार की बातें तो व्यर्थ हैं—तुझमें शक्ति हो तो मेले में से ही पार न कर दे ?'

चिमन : 'अरे रामा ! इन बातों में क्या धरा है ? वहाँ तो बड़ी बड़ी मूँछों वाले आयेंगे । वह पहले जमाने कीसी बात थोड़े है जो उसको हर लिया जाय ? हाँ कर्म की बात तो ठीक है ।'

रामा : 'खाक कर्म की बात है, मुझे तो धर्मसाला अन्धा दीखता है, तभी तो चन्दा मनोहरिया के पल्ले धकेली जा रही है ।'

चिमन : 'यह तो खोदा पहाड़ निकला चूहा'

भीमा का चन्दा से कार्य सम्बन्ध न था, जान पहचान न थी तो भी उसको ये बातें खटक रही थीं । अनजाने उसके मुँख में से निकल पड़ा, जाने मिठाई की जगह कड़आ खीरा मुँह में चला गया हो : 'क्यों व्यर्थ की बातें करके पाप की गठरी सिरपर थोप रहे हो । उसे लेने जारहे हैं या मेला देखने ?,

सब चुपचाप हो गये । अन्दर सबके मन में भले बात एक वही थी, केवल चन्दा की, मगर किसी ने भीमा को टका सा जबाब न दिया ।

भीमा की तैयारियाँ अपने हिसाब से तो बढ़ चढ़ कर थीं, किन्तु मेले में आते ही उसका मुँह फीका हो गया। उसे लगा कि यहाँ पर तो एक से एक बढ़कर बने ठने लोग आए हुए हैं। आज का मेला तो समझदार यात्री की दृष्टि में एक प्राचीन काल का स्वयंवर था राजे महाराजे अपने विचारों से पूर्ण सुसज्जित शृँगारित होकर स्वयंवर स्थल में आते थे, किन्तु वहाँ पर अन्य राजा महाराजाओं के रूपरंग देखकर उन्हें स्वयंवर पर अविश्वास हो जाता था। यही हालत थी बेचारे भीमा की। वहाँ तो डेढ़ हाथ की ऊंची कलगी और कजरारे मतवाले नैना वालों की बाढ़ आयी थी।

जिस ओर चन्दा जाती उसी ओर अपार भीड़ मुड़जाती थी। इस वर्ष और वर्षों की अपेक्षा भीड़ भाड़ ड्योढी तो थी, परन्तु दुकानदारों और चक्कर फेरोंवालों की कमाई का नाम न था। तंग आकर चक्करवाले ने एक पैसे में बीस फेरे की जगह तीस की आवाज लगाई तो एक युवक मस्खरे से न रहा गया वह बोल उठा : 'ओ पगले ! कौन बेवकूफ होगा जो तेरे पास पैसे देकर आयेगा, आज तो चन्दा ने सबको विना पैसे के ही फिरा रखा है !'

जैसे लीडर लोग अपने असंख्य दर्शनार्थियों को दर्शन देते समय साभिमान मुस्कराते हैं, उसी प्रकार चन्दा भी अपनी सखी-सहेलियों के साथ सबकी ओर मीठी मुस्कराती, दिल चुराती नजर फेरती समाधि की ओर चलपड़ी।

सारा रेला चन्दा को देखने उमड़ रहा था, और यह रूपसी बलिष्ठ युवती किसी ओर को देखने मचल रही थी, वह था उसका जीवन धन मनोहरिया, जो इस समय अपनी माँकी गोदी में पलौथी मारे बैठा था। हिन्दुओं को अपना शिष्य बनाने की क्षमतावाला इस दरगाह का पीर कैसे हिन्दू की भावना को ठेस पहुँचा सकता था ? नारियल का नैवेद्य चढ़ाकर सबके सामने बकरे का वलिदान न करके उसके खून की एकही बूँद फकीर ने समाधि पर चढ़ाई, यह विघ्नवाधा नाशक विधि तो पूरी होगयी थी, अब मनोहर समाधि की प्रदक्षिणा करने खड़ा हो गया।

चन्दा ने निर्निमेष आँखों से मनोहर को खूब देखभाल लिया। मनोहर तो मुश्किल से उसके कन्धे तक पहुँचता। उसका शरीर तो डेढ़ हड्डी का धाँचा मात्र था। मनोहर की दो आँखों में जब चन्दा की मूर्ति छायी तो वह अकल्पनीय

कम्पन से झनझना उठा। चन्दा ने मनोहर को छोड़ कर सामने आँखें फेरीं तो भीमा अपने साजों के साथ उसको अपनाने की आशा बता रहा था, आँखों ही आँखों से। चन्दा की आँखों में सिवाय भीमा के और कोई न ठहरा। बड़ी मुश्किल से दोनों ने एक दूसरे की आँखों में आँखे पिरोयी थी कि तभी तो सारे मतवाले भौरे 'मुझे देखो, मुझे देखो' की कामना मे जुट गये। चन्दा ने फिर से भीमा की ओर देखना चाहा किन्तु भीमा के आगे बड़ी भीड़ ने दोनों को फिर मिलने न दिया। अपनी मनौती से निबट कर पीरजी ने जैसे ही चन्दा को देखना चाहा कि वह तो वहाँ से चलती बनी। उसके चलते ही कुछ लोगों ने कहा : 'अरे ! यही है मनोहरिया की चन्दा।' यह आवाज़ सुनते ही सिहनी सी चन्दा ने पीछे मुड़ कर देखा था कि वे युवक आगे कुछ भी न बोल सके डर के मारे।

दूसरे लोग भले ही कुछ कहें किन्तु चन्दा तो इस मेले में केवल मनोहर को ही देखने आयी थी, उसे कोई दूसरा आदमी पसन्द नहीं करना था। हाँ नवयुवक भले ही मन के लड्डू फोड़ कर कह रहे हों : 'हमें देख रही थी वह, हमें देख रही वह।' लेकिन किसी को उस भगवान् की कारीगरी पर भरोसा ही कहाँ था ? आँखें तो भगवान् ने देखने के लिए ही तो दी हैं। वे किसी न किसी को तो देखेंगी ही। हाँ यदि किसी को खास दृष्टि से पीने की कोशिश की थी चन्दा ने तो वह भीमा ही था।, परन्तु भीमा को विश्वास न था कि चन्दा उसी को अन्तस्तल में सँजो रही थी। भीमा भी समझता था कि जाति-पाँति के नियमानुसार चन्दा उसकी हो भी तो नहीं सकती। तो भी मन ही तो है, भीमा ने दो-तीन बार चन्दा से आँखमिचौनी का यत्न किया किन्तु सब निष्फल रहा। क्योंकि चन्दा तो मनोहर को देख कर तुरन्त ही मेला से घर चली गयी थी।

चन्दा का ब्याह मनोहरिया के साथ होगा या नहीं। इसमें भले ही भीमा को सन्देह रहा हो किन्तु औरों ने तो निश्चय कर के कहा था : 'मनोहरिया का कहाँ मुह है जो वह युवती सुन्दरी चन्दा के साथ ब्याह कर सके।'

★

: ६ :

गाँव की मन्थरा

मनोहरिया के मन की बात का हमें क्या पता ? हाँ घर लौटते समय पीर के पैरों में पड़ती चन्दा को यदि लोगों ने घेरा न होता तो, वह पीर का प्रसाद लेकर गयी होती । उस हुल्लड़ के समय मनोहरिया की नजर धरती को धमधमाती यौवनभरी मस्ती से चलती, मृगनयनों में काजल लगायी आँखों से तेज बिखेरती तरुणी पर पड़ी । बेचारे का मन अभी किशोर भी न हुआ था, फिर उसे यौवन के मदमाते स्वप्न कैसे दीखते ?

वीरजी ने इसी हुल्लड़ में चन्दा को घूर घूर कर देखा । पहले की चन्दा और आज की चन्दा में जमीन आसमान का अन्तर था । अब चन्दा को देख लेने के बाद वीरजी ने अपने बेटे मनोहर की ओर देखा । कहाँ तो वह साँडनी और कहाँ बेचारा मुट्ठीभर का छोकरा ? उसके दिल में बेटे के प्रति ममता जागी । मगर यह क्या हो गया है ? लोगों की बातें सुन कर मनोहरिया का दम सूख गया है । मुँह का रंग भी बदल गया है । बड़ी मुसीबत है । मनोहरिया के कानों में हुड़दंगों का शब्द गूंज रहा था : 'यही है न चन्दा........मनोहरिया तो इसे देख कर ही मर जायेगा ।' वीरजी ने बेटे को धैर्य बंधाने की गर्ज से कहा : 'मुन्ने ! क्यों डर रहा है, देखो न सामने पीर को । सारे भय दूर हो जायेंगे पल भर में ।'

फकीर आग में लोबान डाल रहा था, मनोहरिया की निगाह फकीर और समाधि के ऊपर थी, तभी उसके कानों के पर्दे फाड़ने वाली ध्वनि आयी : 'राम रे राम ! यह.....यह......च.....न्दा.....मनोहरिया को डकार जायेगी ।' सुनते ही दुर्बल मनोहरिया के मुख से मारे भय के निकल पड़ा : 'बाप रे बाप ! मैं मरा, मैं मरा :'

'क्या हो गया बेटा ?' माँ ने दुलार भरा हाथ फेर कर पूछा ।

'डरना मत लड़के ! रामदेव पीर सब दुःख काट देगा । धूप का हाथ मनोहरिया के सिर माथे और गालों पर फेरता हुआ फकीर बोला ।

वीरजी ने मनोहर के दिल की बात समझ कर कहा : 'डरने की क्या बात है बेटा ! मैं ऐसा नहीं करूँगा ।'

किन्तु सच्चा कारण तो सिवाय मनोहर के और किसी को ज्ञात न हुआ। वीरजी तो चन्दा को देख कर ही यह समझ बैठा था कि चन्दा को देख कर मनोहर डर गया है। और यही विचार उसके मन में अशान्ति उपजा रहे थे। पर यह कारण कहाँ था मनोहरिया के डरने का ?

फकीर को इन बातों का पता ही न था, वह बोला : 'बेटे ! पीर के सामने कोई बात छिपाना गुना है, बोलो क्या बात है ?' हाँ फकीर तो सभी को बेटा ही कहा करता था।

वीरजी ने चारों ओर निगाह दौड़ाई, अभी तक वहाँ लोग जमा थे। अत: छिपाने की अभिलाषा से वीरजी बोला : 'नही बाबा ! बात क्या होती ? अपनी दुनियादारी का मामला है।'

'हाँ दुनिया के इन्हीं झगड़ों को मिटाने के लिए हम यहाँ बैठे हैं। बोलो देव के दरबार में देर मत करो झट से बात निबट जायेगी।' फकीर ने अपनी चालाकी के गुर फेंकते हुए कहा।

हरखा बेचारी को कुछ पता न था, वह पति वीरजी की ओर ताक कर बोली : 'क्यों ! क्या बातें हैं दुनियादारी की ?'

'नहीं बातें क्या होतीं ? यही कि मनोहर की ब.... किन्तु अब उसे 'बहू' कैसे कहे ? ऐसा विचार आते ही वीरजी 'बहू' का 'हू' खाते हुए बोला : 'चन्दा की बात है।'

हरखा इस मुसीबत का समाधान क्या करती ? उसे तो झुँझलाहट आ गयी। वह तिनक कर बोली : 'अपना काम करो न ! क्या व्यर्थ का विवाद खड़ा कर दिया ? मरने भी दो उसे !'

परन्तु हरखा को क्या पता था कि वीरजी का इस बात में कोई हाथ नहीं है, वीरजी को हरखा की बात सुन क्रोध चढ़ गया। वह आँखें तरेर कर बोला : 'जब तुझे पूरी बात का पता नहीं तो तू बीच में क्यों झूठमूठ आ जाती है ? मैंने तो उसे देख लिया था, पर मैं क्या बोलता ? अलबत्ता मनोहर की चिल्लाहट से मुझे कुछ कहना पड़ा।'

और जाने क्यों आज इतनी डाँट सुन कर हरखा अनसुनी हो गयी ? उसे

अपनी बात पर कुछ पछतावा हुआ, तभी तो वह बोली: 'हाँ जी ! सुना तो मैंने भी था कि चन्दा यहाँ आयी है, किन्तु मैं उसे देख न पायी। तुमने कहाँ देख लिया उसे ?'

'मैं तेरे सामने यहीं का यहीं तो रहा हूँ। वह तेरे ही सामने तो खड़ी थी, थोड़ी देर पहले। हजारों आदमी भी तो उसके पीछे फिर रहे थे; भली आदमन ने देखा भी नहीं।'

'मैं कौन-सी तुम्हारी तरह हूँ ? मैं तो मनौती माँगने आयी हूं, मुझे क्या किसी का लेना देना ?'

'अच्छा रहने दो, कौन है ऐसा जो मनौती माँगने आवे और कहीं देखे भाले भी नहीं।'

'जी हाँ, मेरी ही गलती है, माफ करो न ! बैठ कर पीर की प्रार्थना करो, मेरा तो यही सब कुछ..........।'

दोनों की वितण्डा आगे बढ़ती देख कर फकीर बीच में आ कूदा। दोनों शान्त होकर उसकी बातें सुनने लगे। फकीर कहने लगा : 'इसमें लड़के को डरने वरने की कोई बात नहीं है, उम्र से क्या डरना। चार-छः साल का अन्तर कोई बड़ा नहीं है। बस हमारा एक ताबीज ले जा कर बाँध देना उसको बिल्कुल बकरी बना देगा। हमारे में एक बड़ा औलिया सन्त हो गया है। उसकी औरत तो उससे सत्रह साल बड़ी थी, यह तो चार छः ही साल है बड़ी।'

फकीर की बातें हरखा को लग रही थीं, तभी वीरजी ने कहा : 'परन्तु हरखा ! ऐसी कौन सी गले आ गयी है, मना ही क्यों न कर दें। न होगा बाँस, न बजेगी बाँसुरी।'

'ऐसा हो जाये तो रामदेव पीर के पैरों आकर पड़ूँगी, देख लेना बाबा !'

'हाँ लड़की ! घबराना मत ! रामदेव पीर इन्हीं बातों के लिए तो यहाँ बैठे हैं।'

वहाँ से वे तीनों घर आये। घर आ कर खा पी कर तीनों आराम करने लगे। लेकिन मनोहरिया का बुरा हाल था, उसे ज्ञात था कि 'यह ब्याह की कौन-सी नयी बात है ? आज तक माँ ने बाप की कोई बात मानी तो नहीं है'

८ इसी को कैसे मान लेगी ?' इन भावों ने उसे चिथड़े चिथड़े बना दिया। बेचारे के आँखों के सामने चन्दा का भारी भरकम शरीर, चमकती आँखें और कानों में धमधमाती धरती, लोगों की तीखी बोली : 'मनोहर को तो यह डायन सी खा जा जायेगी।' गूँज रही थी। उसने जैसे ही चन्दा को अपने विचारों से हटाने का यत्न किया, वह तो वैसे ही उस पर आरूढ़ हो गयी। बेचारा मनोहर सारी रात करवटें बदलता रहा। उसका शरीर, मन और मस्तिष्क बोझीला बन गया। प्रातःकालीन मनोहर वायु के झोकों ने सब को तो नवजीवन दिया, पर मनोहरिया को दिया तेज बुखार।

हरखा ने सोचा. 'बच्चा थक गया है, थोड़ी देर में उठा दूँगी।' बाद में उसने घर के काम काज से निबट कर मनोहर को उठाने के लिए हाथ बढ़ाया ही था कि उसके तत्ते शरीर ने हरखा को चौंका दिया। उसके मन में आयी : 'ओ हो ! कल मेरे लाल को नजर लग गयी है।' उसे झट रेलगाड़ी में बैठे संकट ग्रस्त यात्री के लिए जंजीर के समान फकीर का दिया डोरा याद आ गया। उसने तेल की धूनी देकर डोरा मनोहरिया के सीधे हाथ में बाँध दिया।

'बेटा मनोहर ! बोल तो सही ?'

बेटा शब्द सुनते ही मनोहरिया की आँखों से डब डब आँसू लुढ़क पड़े।

'रोना मत, मेरे लाल ! देख यह डोरा बाँध दिया है, जो कुछ भी होगा, सब रफूचक्कर हो जायेगा। अभी ज्वर भी उतरा जाता है। अच्छा बोल, मैं अपने लाल बेटे के लिए क्या राँधूँ ?'

'आँटा गूँद कर सेक दूँ ? थोड़ी रबड़ी पियेगा ? नही नहीं थोड़ा-सा टेबरा'

थोड़ी-सी कणक खदबदा दूँ ? सेके हुए महुआ खायेगा ? थोड़ी-सी खीलें खायेगा...' मनोहर तो प्रत्येक बात की ना कहता रहा और हरखा आगे आगे बोलती रही। 'मिर्च वाला गर्म काढ़ा पियेगा ?'

अन्त में मनोहरिया राजी हो गया : 'मैं काढ़ा पी लूँगा दूध का।' सारा दिन मनोहर ने सिवाय काढ़े के और कुछ न पिया। साँझ होते होते तो मनोहर का बुखार उतर गया।

अगले ही दिन हरखा के कानों में उड़ती खबर आयी : 'तुम्हारे मनोहर के साथ चन्दा ने ब्याह करने की बिल्कुल ना कर दी है।'

वह समाचार मनोहर ने बड़ी शान्ति से सुना। उसे लगा कि उसकी छाती से सवा मन का भार उतर गया है। इसी खुशी में उसे न तो ताप ही आया नही किसी बात की चिन्ता। वह तो मजे से साथियों के साथ खेलने भी चला गया।

दोपहर के समय वीरजी खेत से चारा का बोझ रख कर जैसे ही घरमें घुसा कि उसने भी यह बात सुन ली। घास के बोझे के साथ ही यही भारी बोझा भी उसे दबा रहा था। किन्तु घास के बोझ को जमीन पर पटकते ही वह बोझा भी समाप्त हो गया। अब तो उसकी साँस में साँस आयी। वह बोल ही पड़ा: 'अच्छा हुआ, नहीं तो वहाँ जाकर ना करना होता।'

हरखा से प्रातः बात कहने वाली शनी, वीरजी को खेत से घर आते देखकर आगे आगे हो ली थी, समाचार सुनाने के लिए। शनी गाँव में बड़ी समझदार स्त्री गिनी जाती थी। यह अपने पीहर में ही रहती थी, इसी गाँव की लड़की थी, दूसरे गाँव में ब्याही थी। किन्तु थी बड़ी तेज तर्रार, क्या मजाल किसी की सुन ले। ब्याह होने पर सास श्वसुर के साथ न निभी। दो तीन बार ससुराल गयी भी तो निर्वाह न हुआ। आखिर यह अपने पीहर आ गयी। यहाँ तो पूर्ण स्वतन्त्रता थी ही। दो तीन वर्ष यों ही बीत गये, तब कहीं इसके झगड़े का अन्त आया। समझौते के अनुसार शनी का पति इसी के गाँव में आकर बस गया था। शनी ने मेहनत करने में कोई कोर कसर न रखी। अपने बाहुबल से इसने एक कच्चा मकान, दो भैंसें और दो बैल बसाये थे। और इसी पुरुषार्थ के प्रताप से इसने दो लड़कियाँ तथा एक लड़का बिवाहे थे। इस कामकाज के तीसरे वर्ष तो यह विधवा हो गयी थी, अपने पति की तेरहवीं भी इतनी शान से की थी कि देखने वाले हैरान थे। आज भी इसे पाँच-पच्चीस की आवश्यकता पड़े तो कोई ना नहीं करता, खुशी से लोग दे देते हैं।

साथ ही यह बुद्धि में काफी बढ़ी-चढ़ी थी। एक बार बाहर से एक घी का व्यापारी इतने दूर गाँव में सस्ते भाव से घी खरीदने आया। इसने झट से सारे गाँव में रौला मचा दिया: 'जरूर शहरों में घी का भाव बढ़ गया है, तभी तो यह बनिया इतनी दूर चल कर घी खरीदने आया है। पहले तो हमने इसे देखा भी नहीं था ओरे-धोरे।' घी से लेकर मिर्चों तक के भाव गाँव वाले इसी से ठहरवाते थे।

व्यवहार में भी इसकी सानी का कोई न था सारे गाँव में । छोटी-छोटी लेन-देन की बातों से लेकर शादी-ब्याह तक भी सारी रीति-नीति इसके मुखाग्र थी ।

वाणी के साथ ही हाथ की भी होशियारी थी । जिन बच्चों के जनने-जनवाने में डाक्टरों को नानी याद आ जाती थी, ऐसे केसों को भी बड़ी सफाई से निबटा देती थी । व्यक्तिगत बातों में भी सबसे आगे थी । गाँव के सेठ चुन्नीलाल की विधवा लड़की को चार-पाँच मास चढ़ गये थे, इसे दूर से ही सुराग लग गया और इसने सारे गाँव में भण्डाफोड़ कर दिया ।

ऐसी चतुर स्त्री के कहे को कौन है जो एक कान से सुन कर दूसरे से निकाल दे ? इसने तो चौखट में पैर धरते ही पूछा : 'क्यों वीरजी ! सुन लिया न ?'

बीच में ही हरखा बोल उठी : 'क्यों बहन ! उस साँडनी को लाकर कौन-सुख मिलना था ?'

शनी पहले प्रातः जब आयी तो इसने विशेष चर्चा नहीं की थी, किन्तु वीरजी के सामने तो इसने मन्थरा का पूरा रूप सँभाल लिया । वह बड़ी चतुराई से वीरजी की जगह हरखा की ओर देख कर बोली : 'हरखा बहन ! मैं क्या यह नहीं समझती ? उस मोटे भैंसे को लाकर तो और भी मुसीबतें बढ़ जातीं, किन्तु........' कह कर शनी प्रतिक्रिया देखने लगी । अतः झट से हरखा बोली : 'क्यों बहन ! कहो न ? चुप क्यों बैठ गयीं ?'

बन्दूक में बारूद भरने के बाद ठूँसने की तरह शनी ने नया पैंतरा बदला : 'देखो बहन ! हमें तो किसी की बुराई में भला लगता ही नही है ।' हरखा की सम्मति स्वीकृति से पूर्व ही शनी वीरजी से कहने लगी : 'क्यों वीरजी भैय्या ! तुम्हें तो सब कुछ मालूम ही है, मैं कब किसी के बुरे में रहती हूँ ?'

वीरजी : 'नहीं, नहीं, किसने कहा बहन ?'

शनी : 'यह तो मेरा स्वभाव ही ऐसा पड़ गया है कि बिना बोले रहा नही जाता । जो तुम दोनों ही तैय्यार हो तो मुझे क्या पड़ी ?'

हरखा : 'नहीं बहन ! तुम जैसी बुद्धिमती स्त्री किसी को लाभ की बात न बताए तो और कौन है जो बताएगा ?'

शनी ने पुरानी बात को उखाड़ते हुए कहा : क्यों वीरजी भैय्या ! याद तो

होगा ही तुम्हें ? जब रयजी सगाई करने आया था तो तुमने बुझे दिल से ही तो रिश्ता मान लिया था मन तो तुम्हें नाहीं कर रहा था। झूठ हो तो सौ जूते... ।'

वीरजी कुछ कहना चाहता था कि हरखा झट से कूद पड़ी, और बोली : 'नहीं जी ! बेचारे रयजी ने तो साधारण रूप में बात ही चला दी थी । इस बात का सारा दोष तो मेरे माथे है । मैंने ही सोचा कि क्या होता है दो-चार सालों की छोटाई-बड़ाई से ? खाने-पीने से यह त्रुटि दूर हो जायेगी । दोनों घर ठीक-ठीक थे और दोनों का आदर मान एक सा ही था बहन ! रयजी तो कह रहा था, कि हमारी चन्दा बड़ी है, काफी सशक्त है।'

शनी : 'हाँ बहन ! मेरा भाव तो यह है कि तुम लोगों ने सोचा था कि बेचारे रयजी का मान न घटने पावे । यदि तुम्हारे द्वारे आकर उसका मान न रहता तो ? अर्थात् वही तो तुम्हारी शरण में पहले आया था, तुम थोड़े गये थे उसके पास ।'

वीरजी ने सिर हिलाते हुए उसकी बात का अनुमोदन किया।

शनी : 'मैं तो कह रही हूँ कि तुम्हारे मनोहर को लड़कियों का घाटा था क्या ? तुमने तो उसकी इज्जत के लिए हाँ की थी और उसने कुछ भी न सोचा ना कहलाते समय ।'

वीरजी : 'मैं तो स्वयं ही ना कहने जा रहा था शनी........।'

बात काट कर शनी : 'वीरजी ! क्या हुआ तो ? तुम ना करते तो कुछ ऊँची नीची न थी, लेकिन........

हरखा का मुँह खुलने की तैय्यारी में था कि वीरजी बोला : 'मैंने तो परसों मेले में उसके डीलडौल को देख कर ही........

शनी : 'यह तो समझी, पर भैय्या ! नादानी की बातें कैसे करने लगे हो ? इसमें सारी इज्जत खाक में........

हरखा से न रहा गया, वह बोली : 'हाँ शनी ! यह बात तो तूने खूब सुझायी । वह कौन होता है ना करने वाला ? क्या हमारी कुछ...........'

शनी : 'यह बात नाक कटने के समान है । मर्दों के सिर कटने से नाम होता है, लेकिन नाक से...........।

हरखा : 'हाँ यह तो ठीक है मगर मैं क्या करूँ ? इन्हें तो शुरू से ही बुद्धि नहीं है, ये तो निरे सीधेसाधे हैं । नहीं तो नाक काटने वाले का सिर ही उड़ा दिया जाय ।' हरखा शनी की बातों में आ चुकी थी ।

शनी : 'गजब की बात तो यह हुई कि रयजी ने भी ना कही होती तो कुछ सोचा-विचारा जाता, किन्तु ना तो कही है उस मुँहलगी साँडनी ने । हरखा बहन ? तुझे क्या मालूम ? उसने तो सबके सामने हाथ झाड़ कर, शरीर मटका कर कहा : 'मैं तो मनोहरिया से ब्याह त्रिकाल में भी नहीं करूँगी ।' ऐसी बातें तो मैंने अपनी जात-बिरादरी में कभी सुनी नहीं हैं, यह तो तुम्हीं हो जो सुनकर चुप हो गये नहीं तो...........।'

शनी तेजी से मंजिल तय करती जा रही थी । उसने पति-पत्नी के विचारों की चिन्ता न करते हुए अपना व्याख्यान शुरू रखा : 'यह लड़का छोटा है, जवान होता तो चोटी पकड़ कर मस्तानी को घसीटता लाया होता । हम बामन-बनिये तो नहीं हैं जो कुछ और सोचें ?' फिर वीरजी की ओर तेजी से देख कर कहने लगी : 'वीरजी ! मैंने जैसे ही यह बात सुनी, मेरे तो पेट में पानी पानी हो गया । लेकिन एक तुम हो । इससे अच्छा तो यह है कि राँड को नाहीं करनी थी तो ब्याह के बाद सफेद-स्याह करके ही अलग हो जाती । इसने तो तुम्हें क्या बच्चे की भी जिन्दगी समाप्त कर दी । मैं तो...........।'

शनी मन्थरा की कान सुनायी के बाद, भले ही यह सम्बन्ध पसन्द न था, तो भी सासू-बहू के विवाद की सी बात तो उठ ही गयी : 'मैं ना कहूँ तो ठीक, परन्तु तू कौन होती है ना कहने वाली ?'

अन्तिम रूप से तो भगवान् ही जाने, लेकिन शनी ने अपना आखिरी तीर छोड़ते हुए कहा : 'हमें क्या है ? यह काम तो वीरजी का है, वह अपनी बहू को किसी और के साथ ब्याहने देंगे क्या ?'

★

: १० :

आँधी

रयजी की तीन लड़कियाँ और एक लड़का जीवित थे। तीन लड़के मर चुके थे। शेष इन चारों में से चन्दा सबसे अधिक मन भावती थी। लड़के से बड़ी दोनों लड़कियों का स्वभाव सर्वथा अपनी माँ से मिलता-जुलता था। उनको ब्याहे हुए तो दस वर्ष बीत चुके थे। किन्तु उनकी ओर से कोई उपालम्भ आज तक रयजी को न मिला था। रयजी का लड़का भावो भी इक्कीस-बावीस वर्ष का जवान हो गया था। इसमें माँ और बाप दोनों के गुणों का समुचित संमिश्रण प्रतिबिम्बित हो रहा था। इसे परिश्रम से प्रेम था, व्यर्थ के झगड़े-टंटों से घृणा। किन्तु चन्दा की बातें तो शैशव से ही भिन्न थीं। विधाता ने रूप, आकार आदि तो सोलह आने स्त्री का दिया था, किन्तु जीवात्मा भूल से या जानबूझ कर पुरुष का था। स्त्रियाँ तो प्रायः कहा करती थीं: 'मरी ने बाप की एक बात भी तो नहीं छोड़ी, तभी तो रयजी की विशिष्ट प्रेमभाजन बन गयी है।'

भला इतनी प्रिय पुत्री को यों ही आँखें भींच कर कौन ब्याहेगा? कुल खानदानी का मर्ज तो राव से रंक तक, ब्राह्मण से भंगी तक समान रूप से चलता है। यहाँ तक ब्याह-शादी में देखा जाता है कि अमुक गाँव के सम्बन्ध अमुक गाँव में ही सीमित होते हैं। फलाने परिवारों की कन्याएँ हमारे खानदान में नहीं आयेंगी। इन झंझटों से बचने के लिए इस जाति का अपना एक नियम था। पछाँय से लड़की लानी, पूर्व में देनी। छोटा लड़का होने पर भी रयजी नियमानुसार इसी रूढ़ि का पालन करता रहा। यदि पछाँय में देने की सुविधा होती तो जात में दो-चार लड़के तो बड़े अच्छे खाते-पीते थे। किन्तु पूर्व में सिवाय वीरजी के परिवार के सब अयोग्य थे। कुछ तो वैसे ही सगे-सम्बन्धी थे, तो कुछ में शोक की लहरें फैली थीं, और शेष अधिकतर भुक्खड़ ही थे। रयजी की शान्ति उस क्षण नास्तिनाभूत् हो गयी, जबकि कल मेले से आकर चन्दा ने कहा: 'पिताजी! मैं उस लड़के से ब्याह नहीं करूँगी।' रयजी को काटो तो खून नहीं, उसके किये-कराये पर पानी फिर गया।

चन्दा पिता की मुखाकृति को पहिचानती हुई बोली: 'पिताजी! मेरे लिए क्यों

चिन्तित हो रहे हो? मुझे भी एक लड़का मान लेना....।' कहना तो वह कुछ और ही चाहती थी, किन्तु पिता से कह न पायी। इतना मान तो माँ-बाप का बुरे से बुरे बच्चों को भी करना पड़ता है।

पिता ने बेटी की अव्यक्त चिन्ता समझ ली थी, वह सान्त्वना-मिश्रित शब्दों में बोला: 'बेटा! इसमें घबराने की क्या बात है? इतनी बड़ी जात है देखा जायेगा।'

किन्तु चन्दा ने ब्याह की बात समाप्त करते हुए कहा: 'पिताजी! मैंने भी तो कुछ कहा है न?'

अपनी बात की पक्काई मानती हुई इतना कहकर चन्दा वहाँ से अलग हो गयी।

पिता ने भी कहा: 'हाँ बेटा! जो तू कहेगी वही करूँगा मैं।'

यह बात दोनों बाप-बेटियों में बड़े आनन्द से हो गयी, न वादविवाद था, न मतभेद। हाँ यदि अगले ही दिन किशना ने गली में यह बात न सुनायी होती तो किसी को पता ही क्या चलता? किन्तु स्त्रियों का तो यह स्वभाव है, और उस पर भी माँ का जीव कि दिल की बात तो बिना निकले कैसे रह सकती है? इसे तो यह सम्बन्ध प्रथमतः ही पसन्द न था, अन्त में वही हो भी गया। तभी तो मन की बात होने से किशना ने दिल का गुबार कह दिया। मैं तो पहले ही ना कहती थी, किन्तु मेरी बात न मानी, और अब वही होकर........।'

'वीरजी को ना कहला दी है?' बीच में ही किशना ने जिज्ञासा से पूछा।

'लेकिन वह तो ना क्यों करेगा? चन्दा ने ही स्वतः स्पष्ट शब्दों में नहीं कर दिया है।'

'हैं! हैं! क्या कहती हो किशना?'

'सच्ची कहती हूँ यह बात भी शहरों की सी हो गयी और?'

'वास्तव में जब से चन्दा के बाप ने यह सम्बन्ध किया था, हमें तो कतई नापसन्द था।'

'लेकिन चन्दा के बाप का क्या कसूर? कहीं लड़का भी मिलता हो?'

'परन्तु ऊँटनी और बकरे का क्या मेल?'

''तो चन्दा के बाप ने क्या कहा?'

'वह क्या कहता अपना सिर?'

ये ही साधारण बातें आँधी के रूप में चल पड़ीं।

'मालूम है?'

'क्या?'

'अरे! रात में तो बड़ी बात हो गयी?'

'कितनी बड़ी बात?'

'मैं क्या कहता था?'

'क्या कहता था बताओ?'

'मैंने मेले में ही नहीं कहा था, चन्दा के पीछे तो सारा जमघट फिर रहा था...........?'

'हाँ, हाँ, तो इससे क्या हुआ?'

'अब तो वह पति के साथ रह ली, मेरी यह बात झूठ थोड़े होगी?'

'लेकिन ऐसी क्या बात हो गयी है?'

'यही तो होता है तरुण लड़की को मुँह लगाने से।'

'तो हुआ भी कुछ या यों ही?'

'हाँ एक तो गिलोय यों ही कड़वी, तिस पर भी नीम चढ़ी। वह पहले ही बरजोर थी, तिस पर फिर साँड नाथ दिया। मेले में ही चली जाने वाली थी वह तो—कोई ले जाने वाला मिला ही नहीं, यही कसर रह गयी। अच्छा तू ही जाकर देख ले दो-चार बार उसके घर, देख ले मैं ठीक कह रहा हूँ कि नहीं?'

'इतनी बात बढ़ गयी है और रयजी को सब भेद मालूम भी है?'

'हाँ, हाँ, क्यों नहीं, लेकिन रयजी तो बिना जात-पाँत के पूछे कोई बात करने वाला थोड़े है? परन्तु पति को तो बदती नहीं है चन्दा अब, इसमें कोई सन्देह नहीं है। रात तो फांसी खाने के लिए तैय्यार हो गयी थी।'

'हैं! सच बात है?'

'वह रस्सी छुड़ायी उससे नहीं तो........'

'अरे भाई! ये सब दिखाने की बातें हैं, मरना बड़ा........'

'नहीं जी! मरने वाले मर ही जाते हैं। इज्जतदार के तो दोनों ओर खाई और कुआ है। आखिर उसकी बात मान लेनी पड़ी।'

'क्या बात ?'

'यही बात, वीरजी के मनोहरिया के साथ ब्याह नहीं होगा। और........

'तो रयजी गया-गुजरा निकला, सुनते हो न ? मेरी लड़की चन्दा की जगह होती तो फिर बताता, गला घोंट कर खुद मार देता दुष्टा को।'

'क्या उसने कोई नया घर देख लिया है ?'

'भगवान् जाने। लेकिन माँड माँड कर बाप ने उसे मनाया। आज कल की शहरों की हवा ठेठ गाँवों में बहने भी लगी है।'

'इस बात का अनुमान तो मैंने कभी का लगा लिया था, लड़की को बहुत लाड़ लड़ाने से यही परिणाम तो निकलता है। लड़की हाथ से निकल जाती है, और सब कुछ करने....।'

'करने क्या ? कर ही लिया समझो। मगर एक बात अवश्य है, देखें इसकी प्रतिक्रिया वीरजी खाट पर क्या होती है, यही देखना है अब ?'

'लेकिन उसे खबर ही कहाँ लगी है ? यह तो रात की तो बात ही है।'

'तब तो दाल-आटे का भाव रयजीको मालूम पड़ कर रहेगा।'

'हाँ, बात तो मजेदार हो गयी है।'

शनी और कामई बातें करते-करते अपने-अपने काम पर लग गये थे। यह अंधड़ जोर-शोर से वीरजी के गाँव तक जा पहुँचा। वहाँ से वही बवण्डर फिर लौट कर यहाँ आ गया। इसका श्रेय वीरजी के गाँव वाली शनी को है। ऐसी आँधी में रेत, कूड़ा, कचरा, कंकड़-पत्थर सभी कुछ तो होता है। अच्छाई तो क्या ? लोगों की आँखें, नाक, कान, मुंह सब धूल से भर जाते हैं, साँस लेना मुहाल हो जाता है। उड़ने की नौबत आ छूती है। पाँचवें दिन शनी और कामई की बातें फिर हुईं :

'मैं कहता था न ?'

'क्या ?'

'वीरजी बराबर खबर लेकर रहेगा, वह चूकने वाला नहीं है।'

'परन्तु जुँगी होकर किसी का क्या बिगाड़ेगा ? किसी के घर में, खेत में, खलिहान में आग लगा देगा। ज्यादा से ज्यादा दण्ड ले लेगा और ? चन्दा से दस-पन्द्रह कपास की ढेरी बिनवा लेगा।

'नहीं भैय्या ! यह छोटी लड़कियों को दिया जाता है दण्ड ।'

'तो क्या बड़ी लड़की को जबरदस्ती ले जायेगा ?'

'बलात्कार से जाये तो सस्ता ही समझो न ।'

'तुम्हारे ध्यान से लड़की को मार डालेंगे क्या ?'

'अजी ! मारने से भी बुरा हाल कर देंगे ।'

'वह क्या ?'

'वह यह कि न खाना, न खाने देना ।'

'धर्मादा ब्याह भी करे तो न हो सके ?'

'पर ऐसी बात है ही कहाँ अभी ?'

'भले ही न हो, पर अब तो मामला गंभीर हो ही गया है । देख लेना ।'

'यहाँ कौन से कच्ची मिट्टी के बने हैं ? जैसे को तैसा जवाब मिलेगा ।'

'तुम जो चाहो सो कहो । एक बात तो है ही, अब जल्दी मालूम हो जायेगा कि कौन कितने पानी में है ?'

'क्या वे ब्याह करने वाले के सामने लठैती करेंगे ?'

'लठैती क्या, तलवारें चलेंगी तलवारें !'

'क्या कहते हो ?'

'मैं हँसी नहीं कर रहा हूँ । वीरजी ने तो गाँव भर के सामने हाथ में जल लेकर प्रतिज्ञा की है: 'चन्दा से ब्याह करने वाले को न मारूँ तो अपने बाप का बेटा नहीं ।'

, 'और यदि कोई बाहर ही बाहर चुपके से ले जाये तो ?'

'भला वीरजी के सामने किसकी चलेगी ? वह तो पाताल में से भी ढूँढ़ कर ले आयेगा ।'

'यह भी देख लेगे, देखें क्या करता है वीरजी खाँट ?'

'देखना चाहे न देखना, पर इस बात में कोई परिवर्तन नहीं हो सकता ।'

इस प्रकार की बातें मुँहामुँह, विना रेडियो, तार, टेलीफोन, समाचारपत्रों के ही, सारी बिरादरी में फैल गयीं बढ़ चढ़ कर ।

वीरजी ने एक दो जगह स्पष्ट कर भी दिया था कि ये सारी बातें झूठी हैं,

पर लोगों की समझ ठहरी। वे इस बात को ऊपर ही ऊपर हंसी में उड़ा देते थे। वीरजी वैसे तो समझदार था। उसे पता था कि पड़ोसी लोग तो यह कहा करते हैं : 'चढ़ जा बेटा शूली पर भला करेगा राम!'

ऐसे ही अपने बारे में रयजी जब कोई विरोधी स्वर निकालता तो विघ्न सन्तोषी सच्ची बात का उल्टा ही अर्थ लगा लेते थे! हाँ अब बराबरी का मिला है न? चुकाना ही पड़ेगा। वीरजी के पैरों में तो रयजी ने पगड़ी भी रख दी है, लेकिन वह यों ही थोड़े मानने वाला है। वह तो साफ साफ कहता है; 'तू चाहे तो अपनी लड़की को घर में ही रख ले, किन्तु मैं धर्मादा के लिए भी तैय्यार नहीं हूँ। बेचारा रयजी तो 'भई गति साँप छछूंदर केरी' सा हो गया है।

वैसे यह बात झूठी थोड़े है।

चन्दा को अपनी जीवन-सगिनी बनाने की बातों से सभी युवकों के मुँह में पानी आ रहा था, अनेक विवाहित तो ऐसी वीरांगना के साथ सुखद विवाहित जीवन-यापन के लिए अपनी पत्नियों को विविध कष्ट देते थे खीझते थे : 'यह राँड मर जाये तो पीछा छूटे।' इतनी बात तो स्पष्ट थी कि जब तक चन्दा किसी की नहीं हो जाती, तब तक इस समस्या का समाधान नहीं हो सकता था। विवाह करनेवाला वीरजी को भी देखता, और फिर इससे मुँह में लार लानेवालों को छुट्टी मिल जाती।

अनेक युवक तो वीरजी की प्रतिज्ञा से डर गये। अतः रयजी को सफलता न मिली। यद्यपि ऐसे तो अनेक तैय्यार थे जिन्हें वीरजी के 'जल' का कोई भय न था, किन्तु उन्हें भय था चन्दा की वीरता का। 'साँड को वश में करनेवाली उनके काबू में आयेगी या नहीं?' इसी समस्या में पड़े थे कि एक ने तो कहा : 'रयजी! हमारे बेटे की बिसात नहीं है इतनी!'

'बीस वर्ष का तो है न?'

'लेकिन वर्षों की कोई बात थोड़े है। चन्दा से ब्याह करना साधारण बात है क्या!'

एक दूसरे ने कहा : 'हमें तो वीरजी के बाप का भी डर नहीं है, तो भी...

रयजी : 'कहिये न भैय्या ठीक ठीक तो भी क्या?'

'बात यह है कि तुम्हारी चन्दा की-सी चतुराई मेरे छीता में कहाँ है ?'

इसके बाद रयजी अपने काम में जुटा रहा। तीसरे के घर गया तो वह कुछ न बोला। उसने तो सीधा-सा ना कर दिया।

रमजी ने उसे विश्वास दिलाया : 'यदि तुम वीरजी से डरते हो तो उसका दायित्व मेरे ऊपर है।'

'नहीं, नहीं, मैं तो किसी के भी बाप से नहीं डरता, किन्तु मेरा विचार नहीं है।' इसने अपने मन की कोई बात न बतायी।

रयजी की सारी असफलता की बातें चन्दा ने भी सुनीं, वह बोली:: 'पिता जी ! मैंने क्या कहा था आप से !'

'क्या कहा था ? भूल गया मैं तो बेटा !'

'यही कि मुझे एक लड़का ही मान लो न !'

'परन्तु चन्दा बेटा ! तुझे क्या मतलब इन बातों से ?'

अखिरकार चन्दा ने अपनी आत्मिक बात खोल कर रख दी : 'पिताजी ! दोनों में से एक क्वारा भी रह जायेगा, तो क्या हुआ ? आपका वंश तो चलेगा ही एक से !' वैसे तो इसका भाव दूसरा ही था : 'जो ब्याह करने से ही डरते हैं, वे ब्याह करके भी क्या लेंगे ?'

लेकिन रयजी तो एक दिन घर से यही सोचकर चल पड़ा : 'मैं चन्दा के लिए वर ढूँढ कर ही लौटूँगा।' रयजी मानता था : 'लड़का भले ही कुमार रह जाए तो कोई बात नहीं, परंतु लड़की का कुमारी रहना तो बड़ा पाप है।'

रयजी छः मास तक वर ढूँढता रहा, मगर उसने इस बारे में किसी से कोई बात न की। इस अवधि में क्या-क्या किवदन्तियाँ-गप्पें लोगों ने उड़ायीं, उसे जानकर क्या होगा ?

★

: ११ :

प्रथम-मिलन

सर्दियों की गुलाबी मीठी धूप नगर की अट्टालिकाओं को धो रही थी। भीमा बहुत तड़के ही गाड़ी में लकड़ियाँ लादे नगर की सड़क के एक कोने में गाड़ी रोककर बैलों को पानी पिलाने जा रहा था। गाँव बसते समय लोगों को कब ध्यान था कि रेलवे होगी, स्टेशन होंगे, उन स्टेशनों का नगर बन जाएगा, जिनमें बड़े बड़े बाजार होंगे ? नगर की सड़कें बहुत तंग थीं। भीमा तेजी से गाड़ी हाँक रहा था कि सामने उसने एक गाड़ी खड़ी देखी। उसे हटाने की गर्ज से भीमा चिलाया: 'अरे गाड़ीवाले ! हटा न जरा।'

गाड़ी की खड़खड़ाहट और भीमा की हाँक सुनकर गाड़ीवान चन्दा ने पीछे मुड़कर देखा, भीमा का शरीर चार आँखें होते ही रोमांचित हो गया।

चन्दा के प्रत्युत्तर देने से पूर्व ही भीमा की गाड़ी बीच सड़क में आ गयी। दोनों गाड़ियों को खड़ी देखकर खाकी वेष-भूषा से सुसज्जित राज्य का एकमात्र प्रतिनिधि होने का दावा करनेवाला पुलिस का सिपाही अकड़कर बोला: 'क्यों बे ! सड़क के बीचों-बीच गाड़ी खड़ी कर दी है ?'

तुरन्त ही बैलों की रस्सियां खींचता हुआ भीमा बोला: 'क्यों, क्या हो गया ?'

जिन्हें चौबीसों घन्टे तू-तड़ाक, गाली-गलौज, रोब-दाब से वास्ता हो, वे क्या जाने सरलता ! झट से सिपाही अकड़ कर बोला: 'क्या फूट गई हैं तेरी ? रास्ते के बीच में गाड़ी खड़ी कर रखी है। दूसरा, तेरा बाप किधर से जाएगा ?'

'अभी तेरा बाप खड़ा तो नहीं है कोई !' भीमा ने ईंट का जवाब पत्थर से देते हुए कहा।

चन्दा तो अभी उत्तर भी न दे पाई थी कि यह घटना घट गई।

सिपाही तो आग-बबूला हो गया। उसने आव देखी न ताव, झट से डण्डा लेकर भीमा को ओर लपका वह। किन्तु भीमा, सिपाही के आक्रमण करने से पूर्व

चौकन्ना हो चुका था। उसने झट से सिपाही को गठिया लिया और उसने जो मारने के लिए डण्डा उठाया था, उसे भी छीन लिया। सिपाही तो बेचारा हक्का-बक्का रह गया ! क्या करता, खिसियाकर बोला: 'चल चल, छोड़ दे न !'

रयजी भी सेठ की दूकान पर माल उतार कर अपनी गाड़ी पर आ चुका था। सब ओर से प्रश्नों की बौछारें हो गयीं: 'क्यों, क्या बात है भाई ? क्या बात है ?'

आज सिपाही ने न जाने किस दुष्ट के दर्शन किये थे। ड्यूटी पर जाते ही बेभाव के पड़े। वह आगे कुछ न कर सका, शायद लोगों से डर गया था या भीमा की ताकत से !

भीमा ने भी बात को समाप्त करने की इच्छा से उसका डण्डा बिलकुल ऐसा दे दिया, जैसे उसने योंही देखने के लिए लिया हो। सिपाही वहाँ से अकड़कर आगे चल दिया, और बोला: 'आगे से मियाँ ! ध्यान रखना, व्यर्थ में किसी से छेड़छाड़ न कर बैठना, नहीं तो...........'

भीमा ने इस बात का कोई जवाब न दिया; और उसकी आँखें, विजय के उल्लास से चमकती—मदभरी चन्दा की आँखों से जाकर टकरायीं। इस निगाह ने चन्दा को घायल कर दिया। उसके हृदय में इस अज्ञात युवक के शौर्य ने अमिट स्थान पा लिया था। चन्दा ने आँखों से ही इस को शाबाशी दी। रयजी को समझते देर न लगी कि यह बात उसी की गाड़ी के कारण हुई।

रयजी ने गाड़ी में चढ़ते हुए बैलों की रास हाथ में लेते लेते पूछा : 'कहाँ की गाड़ी है भाई ?'

'चपरा की।' भीमा ने प्रत्युत्तर दिया। परिचित गाँव का नाम सुनते ही रयजी खुश हो गया। उसने भीमा से पूछा : 'क्यों भाई ! बकोर भगत, बेचर तलशी, देवजी मोटा, सब आनन्द में हैं न ?'

'हाँ जी ! सभी आनन्द में हैं।' कह कर भीमाने चन्दा का ध्यान खींच लेने की इच्छा से कहा : 'देवजी मोटा मेरे पिता लगते हैं जी।'

चन्दा तो रयजी से आँखें बचा-बचा कर भीमा को ही देख रही थी। रयजी ने आगे पूछा : 'तो तेरा ही नाम है भीमा ?'

'हाँ जी !'

'हे सेठ ! जरा हटना ।' रास्ते के बीच में खड़े खड़े बतियाते सेठ से चिल्ला कर रयजी ने कहा, और फिर वह भीमा से बातें करने लगा: 'भीमा ! तुझे देखे तो पाँच-छ: वर्ष हो गये हैं । आज तो देखने से पहचान में भी न आया। बड़ा अन्तर हो गया है, है ?'

रयजी और भीमा, गाँव की, पास-पड़ोस की बातें करते चले जा रहे थे। दोनों ने पड़ाव आने पर बैल छोड़ दिये, और सुस्ताने का उपक्रम किया । चन्दा पास के नल से पानी भर कर ले आयी थी । रोटी खोलते ही रयजी ने भीमा को आमन्त्रण दिया: 'चलो भीमाभाई ! थोड़ा-सा भोजन पा लो न ?'

'नहीं, नहीं काका ! मैं भी लाया हूँ, आप अपना भोजन कीजिए ।'

'अच्छा, साथ में आकर खा लो भाई ! इतना बड़ा काहे बनते हो ?'

भीमा के प्रत्युत्तर से पूर्व ही चन्दा ने आँखों से इशारा कर के कहा: 'ऐसे तो काम नहीं चलेगा, तुझे यहाँ साथ में आकर रोटी खानी ही होगी ।'

बेचारा भीमा चुपचाप अपनी रोटियाँ लेकर उनके पास जा बैठा, और उसने अपनी शाक रोटी रयजी के सामने रख दी। रयजी को यह बात पसन्द न थी, बोला: 'यह बात तो भीमा ठीक नहीं है !'

खैर, दोनों ने रोटी खा-पी ली । भीमा की एक रोटी बच गई थी, उसने वह वहीं छोड़ दी । तभी वे दोनों पानी पीने के लिए नल पर चले गये, अवसर पा कर चन्दा ने झटपट भीमा की रोटी ले ली, और उसे देखभाल कर खा गई । अपनी रोटी से उस रोटी में बड़ा अन्तर पाकर उसे लगा कि 'यह रोटी तो किसी वृद्धा के हाथ की होनी चाहिए । या तो इसकी बहू अपने पीहर गई होगी, या यह भी हो सकता है, इसका ब्याह ही न हुआ हो !'

चन्दा इसी उधेड़बुन में पड़ी रही, किन्तु उसका समाधान न हुआ । वे दोनों पानी पीकर आये थे, रयजी बीड़ी सुलगा रहे थे कि उसे दर्जी को दिये कपड़े की याद आयी । दर्जी ने चन्दा का घाघरा और रयजी की घर वाली का कपड़ा एक घण्टे बाद देने का वायदा किया था ।

गाँव जाने से पूर्व रयजी को बाजार से कुछ सामान लाना था, उसने पूछा : 'भीमा ! चलो बाजार ही कर आवें ?'

वैसे तो भीमा को भी बाजार जाना था, किन्तु चन्दा के साथ बातें करने का उसे कौन सा समय मिलता ? वह रयजी को टालता हुआ बोला : 'नहीं जी ! मैं जरा करवट बदलूँ, आप हो आइये।' कह कर वह गाड़ी में ही लेट गया।

'अच्छा तो मैं हो आता हूँ। तुम दोनों यहीं रहो। हाँ चन्दा ! ध्यान रखना, सो मत जाना। नहीं तो गाय, बैल आकर सब घास-पात खा जायेंगे।'

चन्दा भी भीमा के साथ बातें करने के लिए व्याकुल हो रही थी, वह बोली : हाँ, हाँ, जाओ न तुम ......अपना।'

रयजी की पीठ फिरते ही दोनों ने आँखों-आँखों में बतियाना आरंभ कर दिया था, बात करती-करती चन्दा बोली : 'मैंने तुम्हें कहीं देखा तो है, पर याद नहीं आ रहा जरा।'

भीमा : 'हाँ, याद क्यों आयेगी ? मुझसे तो हजारों तरुण तेरे पीछे मँडरा रहे थे उस दिन।'

चन्दा की स्मृति सजग हो गयी। उसे ध्यान आया, कन्धे पर लाठी धरे, कसा हुआ कोई नौजवान उसके सामने खड़ा है, चन्दा ने सिर को कुरेदते हुए कहा : 'हाँ, हाँ, याद आ गयी है मुझे उस दिन तो...पीर के आगे ही तो तुम खड़े थे न ?'

'हाँ, मनोहरिया अपनी माँ की गोद में बैठा था, वह गोदी से उठा ही था कि तू वहाँ से नौ-दो-ग्यारह हो गयी।'

नीचे देखती हुई चन्दा बोली : 'यह तो तुम नहीं कहते, तो भी याद है।'

'हाँ चन्दा ! वह क्षण जीवन में कैसे भुलाया जा सकता है, उसकी तो याद होनी ही चाहिये।'

चन्दा को यह बात न रुची, उसका मुख उतर गया था। भीमा कहने को तो कह गया था, किन्तु उसे अपनी कथनी पर पश्चाताप हो रहा था।

थोड़ी देर दोनों जने चुप रहे। मौन की नीरवता शायद चन्दा को अच्छी न लगी, वह बोल उठी : 'उसमें स्मरणीय था ही क्या ?'

भीमा : 'मैंने तो यों ही कह दिया था, बुरा न मान बैठना चन्दा !'

चन्दा : 'बुरा भी लगे तो मैं क्या बिगाड़ सकती हूँ किसी का ?'

भीमा : 'अपनी शक्ति याद तो रखती। अभी मैं खाने नहीं उठ रहा था तो तूने कैसे उठाया था ? फिर तुझे बुरा मान कर मैं कहाँ रहूँगा ? मुझे तो ताजी सी बात लगती है, जिसने मदमाते साँड को नाथ दिया हो, उसके सामने मेरी...

चन्दा : 'तुम सब लोग न जाने मेरा क्या करना चाहते हो ?'

भीमा : 'चन्दा को कुमारी रखना चाहते हैं।'

चन्दा : 'किन्तु इससे तो तुम्हारी नीचता सिद्ध होती है।'

'जो नीच बनता होगा, उसे चिन्ता होगी, मुझे क्या भय है ?'

'तुम भी तो उन्हीं में आ गये हो।'

'मुझे क्या लेना-देना है औरों से ?'

'समझी, तुम साँड नाथने वाली से डर गये हो ?'

'ऐसा भीरु होता तो आज बाजार में क्यों भिड़ जाता ?'

भीमा अब तक कुँवाराही कैसे रह गया ? वारेचा और जेहरा कुटुम्ब का आठ-आठ पीढ़ी का वैर चला आ रहा था। बड़ी मुश्किल से बीस वर्ष से दोनों परिवारों की की कोई टक्कर नहीं हो पायी थी। दोनों परिवारों के आठ वर्ष का अन्तिम वैर देवजी ने उतार दिया था; देवजी तब जवान था, अब इसका जवाब जेहरा परिवार के ऊपर शेष था। देवा की ही आयु का खाता पीता जेहरा परिवार का मुखिया रामा था। उसके तीन लड़के थे। बड़ा लड़का तो साक्षात् दानव सा लगता था। वैसे तो तीनों ही किसी को कच्चा खाकर डकार भी न लें ऐसे थे। दो लड़के छोटे थे। बस इन दोनों के बड़े होने की प्रतीक्षा थी, बड़े हुए और उन्होंने मन की निकाली। शतैः शनैः यह वैर पच्चीसवें वर्ष में पहुँच गया। एक एक दिन जाता हुआ बुरा लग रहा था। रामा को इस विलम्ब के लिए अनेक बातें सुननी पड़ रही थीं। कुछ को ऐसा लग रहा था कि कहीं रामा एक साथ ही वैर वसूल न कर ले। वह सोचता था कि मैं ने तो खा पी लिया है, सब कुछ देख भाल लिया है, क्यों न मैं ही काम तमाम करूँ !' ऐशी दशा में देवा के लड़के भीमा को लड़की देना मुहाल था।

वैसे तो इस जाति में विधवा को किसी समस्या की चिन्ता न थी। पति के मरने पर वह कुछ ले देकर दूसरे घर में जा सकती है। परन्तु देवजी के भाई को

मार देने पर उसकी विधवा स्त्री की बड़ी फजीहत रही। बेचारी की दो लड़कियाँ थीं, छोटी तो दुधमुँही थी, इसलिए उसे नये पति ने जैसे तैसे रहने दिया, किन्तु उसके पहले पति की बड़ी कन्या को निकाल कर ही दम लिया। तब वह लड़की अपने ताऊ देवजी के पल्ले बँधी।

इसलिए कल को अपनी लड़की की भी यह दशा हो जाय तो ? और ऐसी दशा आने में क्या कसर थी ? यह था कारण, जिससे भीमा के सर्वथा योग्य होने पर भी विवाह न हो पाता था। सब लड़की वाले पूर्वोक्त बातें सोचते रहते थे। साथ ही भीमा की उमर भी कोई इतनी बड़ी तो नहीं हो गयी थी जो कोई सी लड़की पकड़ कर घर में डाल ली जाती। अतः बिरादरी में यह युवक भीमा काफी सुखी सम्पन्न था सब प्रकार से।

चन्दा की इच्छा विवाह की जड़ तक पहुँचने की न थी, किन्तु इसे तो अब स्वयं ही सारी बातों का निबटारा करना था। अपने आप तू बड़ा बना कर तैरता था। वह तो सारी बातों का स्पष्टीकरण करना चाहती थी। यह तो जीवन-मरण का प्रश्न था, भारतीय संस्कृति में विवाह शादी की बात नहीं होती। यह तो कर्तव्य की निष्ठा है, जिसे पूरा करना ही चाहिये। अभी तक तो चन्दा अपने बाप के ऊपर निर्भर थी, किन्तु रयजी की हिम्मत बैठ गयी थी। जहाँ कहीं लड़के देखता, वहीं माँ-बाप चन्दा से ब्याह रचाने के लिए कतई तय्यार न होते थे। अतः आज चन्दा ने अपनी आँखों से ही सरे बाजार सरकारी गुण्डा को मात चखाते गँवार भीमा को देख लिया था, उसकी निर्भीकता चन्दा को खरीद चुकी थी। तभी तो चन्दा नें बाप के बाजार से आने से प्रथम ही भीमा से सारी बातें करने की ठान ली थी।

विवाह की चर्चा करती हुई चन्दा बोली : 'तुमने अभी तक हाथ पीले क्यो नहीं किये ?'

मीठा किन्तु तीखा सा हँसते भीमा ने कहा : 'जैसे तुमने नहीं किया।'

'मैं तो कह चुकी हूँ कि मुझे देख कर लोग भड़क ही जाते हैं।'

'तुम में तो भड़क है किन्तु मुझ में तो मौत है।' भीमा ने अपना रहस्य प्रकट करते हुए कहा।

'मतलब ?'

'मतलब कि मेरे सिर पर मौत खेल रही है।'

'बस, इतनी ही बात है ?'

'तो यह कम बात है ?'

'अच्छा, इतना होने पर कोई तैय्यार हो तो ?'

'कोई से क्या मतलब ?'

'मतलब यह कि पुरुष तो तुमसे ब्याह करने से रहा।' चन्दा ने मीठी चुटकी लेते हुए कहा।

'तुम तैय्यार हो तो मैं ब्याह कर सकता हूँ ?' भीमा ने अवसर देख कर निशाना लगा दिया।

'मेरे हाथ में थोड़े ही है। मैं तो तुम्हारा विचार जानना चाहती हूँ।

'किन्तु जान कर क्या करोगी ?'

'यह आवश्यक है कि जान कर ब्याह करना ही चाहिये।

'परन्तु तुमने तो जानबूझ कर ही सगाई तोड़ दी है न ?' भीमा ने ताना मारते कहा।

'तुम ब्याह करना नहीं चाहते मुझे लगता है।' चन्दा ने कहा।

'क्यों ?'

'तुम्हीं जानते होगे यह तो।'

यह बात आगे बढ़ ही रही थी कि इतने में तो रयजी बाजार से लौटता नजर आया।

चन्दा ने जल्दी करते कहा : 'देखो मै तुम्हें बाँध नहीं रही हूँ, किन्तु आज से पन्द्रहवें दिन पूनम को हमारे गाँव के पूर्व की अमराई में पहर चढ़े चन्दा के आना। यदि ब्याह करने की इच्छा हो तो शेष बातें मैं देख लूँगी।' पिता के समीप आने से पूर्व ही कह दिया : 'नहीं आओगे तो जान लूँगी कि तुम यों ही बातें करते थे।'

रयजी ने आते ही मन का गुब्बार निकाला : 'मरी कमीनी दरजी की जात, कभी सच बोलना तो जानते ही नहीं, प्रातः सायम् कह कर टालते रहेंगे। गया, तब सिलने बैठा।'

दोनों प्रेमी एक दूसरे को देख कर धीरे से मुस्कराते रहे।

: १२ :

दोनों विवाहित हो गये

पूष की पूनम की ठण्ड की तो मत पूछो, बुरे हाल हो रहे थे, लोगों की धारणा थी, भयंकर पाला पड़ कर रहेगा। सब लोग खा-पीकर अलावों, अँगीठियों के आसपास बैठ गये। खाट पर सोने वालों को तो गद्दे और रजाइयों में पाला पड़े की सम्भावना सता रही थी। कोई ऐसी दशा में तम्बाकू के खेतों में धुँआ करने की योजना घड़ रहा था तो कोई रातभर खेतों में पानी सींचने की बात सोच रहा था और कोई कोई कह रहा था: 'राम ही रखैया है।'

लोगों को अपनी खेती-बाड़ी की चिन्ता थी, तो भीमा चन्दा के वचनानुसार अमराई की सघन वृक्ष छाया में इधर से उधर चन्दा के लिए चक्कर लगा रहा था। पूनम के पूर्णेन्दु का विमल प्रकाश पादपों के पत्तों को भेद कर भूमि पर छन-छन कर पड़ रहा था, चन्दा न आवे तो ? ऐसी आशंकित दृष्टि से भीमा चन्दा की ओर देख ही रहा था कि तभी चन्दा में बैठी बुढ़िया उसे सान्त्वना के स्वरों में कुछ कह सी रही थी।

अरे ! भीमा ने तो सोचा था कि चन्दा नहीं आई होगी, किन्तु अमराई में भीमा के प्रविष्ट होने से पूर्व ही चन्दा के नूपुरों का शिंजन गूँजने लगा।

भीमा वृक्ष के तने के पीछे छिपने को तो छिप ही गया था, किन्तु उसकी चतुराई किसी काम न आयी। चन्दा तो दूर से देखते ही चिल्ला पड़ी : 'ऐसे छिप जाने से हृदय तो नहीं छिप सकता।'

'हृदय तो तूने उसी दिन ले लिया था, होता तो न छिपाता।' भीमा चन्दा के निकट आकर बोला।

'किन्तु एक वस्तु के स्थान पर दूसरी तो मिल गयी है न ?' चन्दा पीछे हटने वाली न थी।

'दूसरी जब तक अपनी न हो जाय, तब तक क्या काम की है ?'

'तेरी न होती तो इस निर्जन निशा में यहाँ कैसे आ जाती ? अस्तु, जाने दे इस बात को मुख्य बात पर आती हूँ, बोल क्या विचार किया है तूने ?'

'किस बात का विचार ?'

'यह भी नहीं जानता तो यहाँ झख मारने आया है ?'

'तुझसे मिलने।'

'किन्तु मुझसे तेरा क्या लेना-देना है ?'

'क्या तेरा मेरा कुछ भी नहीं है ?'

'होता तो तू नहीं कह देता ?'

'अच्छा ! मेरे मुख से कहलाना चाहती है ?'

'क्या स्त्रियाँ भी कभी कहती हैं ?'

'इसकी मुझे क्या खबर ?'

'खबर न हो तो अब जान ले न !'

'अच्छा इन बातों को रहने दे न ! बता क्या विचार किया है ?'

'वाह यह भी खूब रही ? मैंने तुझ से पूछा, तू उलटा मुझ से पूछ रहा है।

'हाँ, मैं तो तुझ से ही पूछना चाहता हूँ !'

'मैं यहाँ तक आयी, फिर क्या पूछना ?'

'लेकिन आगे बात होने से पूर्व हमें कुछ निर्णय तो कर लेना चाहिये ?'

'मैं कब ना कहती हूँ, तभी तो सामने खड़ी हूँ।'

'अच्छा, एक बात जानती है तू ? मैं पछाँह का हूँ हाँ !'

'मैं सब जानती हूँ, विवाह में पूर्व और पछाँह का क्या सम्बन्ध है ?'

'तेरे मन की तो मैं जान गया, किन्तु तेरे बाप.........?'

'ब्याह मुझे करना है या बापको ?'

'अच्छा रानी !' भीमा आगे कहने लगा: 'मेरे सिर पर मौत घूम रही है, यह तो ध्यान में है न ?'

'मौत से डरने वाली और कोई होगी, चन्दा नहीं हाँ !'

भीमा थोड़ी देर चुप रहा और जूते में जैसे कोई पत्थर कंकर फँस गया हो, ऐसे पैरों को पछाड़ कर बोला : 'माँ-बाप को मेरा ही आधार है, हाँ ! कल अलग होने की बातें न करने लग जाना ?'

आँखें तरेरती हुई चन्दा बोली : 'भीमा ! तू ने यह बात कैसे मान ली विना देखे भाले ?'

'चन्दा इसमें देखने भालने की बात ही क्या है ? घर घर में तो दो दो ल्चूहे हो रहे हैं न ?' बात छिपाने की सी वृत्ति से भीमा बोला ।

चन्दा को भीमा की यह बात जँची नहीं, वह बोली : 'भीमा ! मेरी शपथ खाकर कहता है न ?'

'चन्दा ! इसमें दुराव की क्या बात है ? तुझे तो ज्ञात ही है कि मेरा बाप बूढ़ा है, माँ दमा की मारी है, रोटियाँ देख कर तू ने ही तो कहा था : 'ये रोटियाँ किसी बुढ़िया की पकायी मालूम पड़ती हैं ? बेचारी को बड़ी परेशानी होती होगी !'

'तो भीमा ! मैं ही उसे कष्ट देना चाहूँगी ? तू ने कैसे निश्चय कर लिया ?' वकालत करती हुई चन्दा बोली ।

'मेरे मन में तो कुछ नहीं था, किन्तु माँ के मन में जरा.........।'

'कह दे न रुक क्यों गया ?'

'हाँ डर है कि साँड नाथा तो कहीं........।'

'हाँ भीमा ! समझ गयी हूँ, कहीं साँड की तरह सबको न नाथ दूँ, है न यही ?'

भीमा ने कुछ जवाब न दिया ।

चन्दा ने फिर पूछा : 'और कुछ कहना है ?'

'मुझे तो कुछ भी नहीं कहना है, तू चाहे तो कह न !'

चन्दा ने पूर्व तय्यारी रूप में सिर से खिसकती हुई ओढ़नी को ठीक किया, और नोकीली बालों की लटों को पसीना पूँछने के समान यथावस्थित कर दिया। फिर भीमा के मन की थाह लेती हुई बोली : 'और कुछ तो नहीं पूछना न ?'

'अब तो तेरी बात एक बार सुनने के बाद पूछना होगा तो देखा जायेगा ।'

चन्दा खुद बोली : 'चन्दा से ब्याह करने वाले के सिर पर मृत्यु-चक्र फिर रहा है, मालूम है न तुझे ?'

'वीरजी खाँटे ने जो गप्पें मारी हैं, वही न ?'

चन्दा वैसे तो जानती ही थी कि इस बात में कितना तत्व है, तो भी जीवन साथी का पानी मापना उचित है, यह मान कर चन्दा ने कहा : 'गप्प वप्प की बात नहीं है हाँ !'

भीमा ने गंभीर होकर कहा : 'परन्तु कौन कहता है कि वह हँसी करता है, वह तो उसके गाँव में घुसते ही धड़ से सिर जुदा कर देने वाला है। प्रभु ने उसी को दो हाथ दिये हैं, औरों के तो एक भी नहीं है।'

'मैं एक दो की बात नहीं जानती, यह तो तू जाने, लेकिन यहाँ से चुपचाप जाने की बात नहीं होगी।'

भीमा तड़ककर बोला : 'क्यों क्या किसी के बाप की चोरी है ? किसी की घरवाली को तो नहीं भगा रहा हूँ, दिन-दहाड़े सबके सामने हाथ पकड़ कर ले चलूँगा।'

'बस, यही कहना था मुझे ?' चन्दा बोली।

'क्यों चन्दा ! और कुछ कहना चाहे तो वह भी कह ले न ?'

'नहीं, नहीं भीमा ! मैंने तो अभी तेरी शंका का उत्तर ही कहाँ दिया है। साँड़ नाथने की बात का मुझे अभिमान है? क्या तुझे ऐसा लगता है ?'

'नहीं, मुझे तो नहीं, किन्तु........'

'समझ गयी घरवालों को न ? देख भीमा ! मैं फिर कह रही हूँ, मेरे मुख से आजीवन साँड़ नाथने की बात नहीं निकलेगी।' चन्दा फिर थोड़ी देर रुक कर बोली : 'शायद तुझे, नहीं नहीं, माँ जी को ऐसा लगता होगा कि मैं अलग हो जाऊँगी ....?'

'नहीं चन्दा ! ऐसी बात क्यों कहती है ?' भीमा बीच में बात काट कर बोला।

'नहीं नहीं, सीधी सीधी बात न कह दूँ ?' चन्दा भीमा की बात अनसुनी करती हुई बोलती रही : 'चन्दा का यद्यपि तुझे अनुभव नहीं है, तो भी मैं कहे देती हूँ कि चन्दा तो और ही मिट्टी से बनी है। खाने को नहीं देगा, तो कोई बात नहीं, कपड़े लत्ते नहीं देगा, तो कोई चिन्ता नहीं, काम करने से कभी घबराऊँगी नहीं, घरवालों की गाली तो क्या घूँसे-लात भी खाकर तेरा घर नहीं छोड़ूँगी, लेकिन...लेकिन...'

'हाँ हाँ, चन्दा ! बोल, बोल।' भीमा आनन्द में कह रहा था।

'बस भीमा ! इतनी ही शर्त रखना हां !'

'तू कहती जा न ! यह सब तो मेरे हृदय में लिख गया समझ ले अब।'

'यदि तू शराब पिएगा, अन्ट-सन्ट बोलेगा, इधर-उधर गुण्डागिरी करेगा, या और कोई मुझे बुरे बोल सुनायेगा, तो सौ बार कान खोल कर सुन ले, मैं कतई नहीं सहूँगी !'

'चन्दा !' भीमा तेजी में आ गया : 'मैं गर्वोक्ति नहीं करता, जिसकी मौत आयी होगी, वही तुझ से ठठोली करेगा।'

'भीमा ! कल ही तो मैं अभी रयजी की लड़की, बारेचा की बहू हो जाऊँगी। बाद में तेरी और मेरी इज्जत एक हो जायेगी। मैं स्वयं को मिटा कर तेरी हो जाऊँगी, किन्तु मेरी प्रतिज्ञा को न भूल जाना। मेरा स्वभाव है 'रस्सी जल जाये पर ऐंठ न छूटे' समझ गया न !'

'तो चन्दा ! मैं भी इसी स्वभाव का हूँ।'

'होगा, मानती तो नहीं हूँ, यदि मानने का समय आयेगा तो जानता है क्या होगा ?'

'किन्तु चन्दा ! ऐसा समय ही न आयेगा तो जान कर क्या करूँगा ?'

'अच्छा ! इतना बात का धनी है तो जब समय आयेगा, तब की तब।'

इस प्रथम मिलन के समय उन दोनों ने एक दूसरे में गुँथने के स्थान पर अपने अभावों का प्रदर्शन करना ठीक समझा। सौन्दर्य के स्थान पर शूरता थी, चन्दा की चञ्चल चन्द्रिका में चन्दा और भीमा एकाकार हो रहे थे। दोनों को इस रात की वियोग-वेला खलने लगी थी।

प्रभात के प्रथम प्रहर में खेतों में खड़े अन्न की बालों पर बाल रवि के कोमल किन्तु तेजस्वी किरणों के पड़ने पर पाले के भय से बचे खेतों को देखकर जितना आनन्द किसान को होता है, उससे कहीं अधिक आनन्द से आज रयजी का मन बाँसों उछल रहा था। चन्दा दिनों दिन यौवन पथ में बढ़ रही थी, अनेक शक्य यत्नों के बाद भी, चन्दा की साँड नाथने की घटना सुनकर कोई बिरादरी वाला उस से ब्याह करने की हिम्मत न बता पाया था, रयजी के नाकों में दम था। ऐसे समय पर उसकी जाति का एक सम्पन्न कुलीन घराने का बलिष्ठ युवक चन्दा से विवाह करने के लिए उसके गांव की अमराई में आ रहा है, सुनते ही रयजी ने प्रभु को कोटि कोटि धन्यवाद दिये। यद्यपि पछाँह में यह ब्याह हो रहा था और जात में यह बात सर्वप्रथम हो रही थी, तो भी चन्दा के अनुकूल विचारों को जानकर रयजी ने भी खुशी प्रदर्शित कर अपनी माथे-पच्ची से मुक्ति पाने का मौका पा लिया।

देवजी को ना कहना अर्थहीन था। बल्कि उसे तो ऐसी पूर्व की वीर कन्या के वधू बनने पर आनन्द ही आनन्द हो रहा था। हाँ देवजी की घरवाली को जो थोड़ी सी आपत्ति थी, वह भी भीमाने दूर करदी थी। अब एक ही प्रश्न था ? 'वीरजी खाँट का। लेकिन एक बार बरात सकुशल लौट आये तो आगे की सारी समस्या, अकेला देवजी सुलझा लेगा। और देवजी न भी करता तो भीमा चन्दा को छोड़ने के लिए सर्वथा तैय्यार न था। अतएव देवजी ने खम्भ ठोककर भीमा को ब्याह करने की आज्ञा देदी। और सारे गाँव ने भी—देवजी के काम को अपना समझकर सहायता देगे की स्वीकृति दे दी।

भीमा वरराजा के रूप में दूसरे ही ढंग से चमक दमक रहा था। यद्यपि उसने सारे कपड़े नये पहने थे, तो भी उन कपड़ों से उसका डीलडौल डाकुओं सा लगता था। उसने शाक पात काटनेवाली वह चिथड़ों में लिपटी तलवार न बाँधी, उसने तो अपने कन्धे पर डेढ़ दो हाथ चौड़ा फाल वाला बल्लम रख लिया था। यह आराम से बहली में ऐसा बैठा था कि समय आते ही कूदकर बाहर आ जाये। उसके कजरारे नैन श्यामल भरे हुए कपोलों पर बड़े सुहावने लग रहे थे। उसके अंग अंग में निर्मलता और सतर्कता की छाया प्रति बिम्बित हो रही थी। वह तो वीरजीखाँट तो क्या किसी से भी प्रतिरोध लेने के लिए कटिबद्ध हो बैठाथा।

यह बरात क्या थी, एक छोटी मोटी सेना ही थी। इस बरात में बरातियों के पास बल्लम, लाठी, तीर कमान, और छुरियाँ तैयार थीं। सब कोई जान बूझ कर समय की प्रतीक्षा में इन हथियारों के प्रयोग की बाट देख रहे थे।

यद्यपि सारे लोग देवजी के लड़के की बरात में सज्जित होकर गये थे, मरने मारने, तो भी अनेक लोगों के मनों में यह भाव थे: 'देवजी ने व्यर्थ ही में यह मुसीबत अपने गले में डाली है। आज तो शायद है वीरजी खाँटा कुछ न बोले, हमारी तैयारियाँ देखकर, लेकिन कल का क्या भरोसा ? वह क्या कर बैठे ?

कुछ लोगों का ध्यान था कि यह झगड़ा तो व्यर्थ में लड़के की जिद् से हो रहा है। उधर तो रयजी ने लड़की की बात मान ली और इधर देवजी ने ! देखें कल क्या होता है।

कुछ ने कहा: 'अजी देख लेना, वह तो कब टिकनेवाली है ?'

तो भी बिना बिघ्न वाधाओं के वे दोनों विवाह के बन्धन में बँध गये।

: १३ :

नयी उलझन

भूकम्प के धक्के सह्य होते, विद्युत्पात सह्य होता। सारा का सारा नभोमंडल धरती में समा गया होता, तो भी देवजी के मन पर विशेष कम्पनरेखाएँ न उठी होतीं, जितनी कि चन्दा के चले जाने से उठ रही थीं। देवजी विचार कर रहा था: 'भीमा की जगह वह होता तो न जाने उसने क्या क्या कर दिखाया होता? एक बार तो देवा को लगा: 'वह तो चन्दा की समूची नाक काट देता, फिर सोचने लगा: 'नहीं नहीं, नाक से क्या होता? उसके ना कहते ही गला घोंट दिया होता!'

किन्तु देवजी सोचने पर भी भीमा न बन सका था। वह भव विपिन के द्वार पर खड़ा था, व्यवहार उसे ऊँचा नीचा दिखा रहे थे। वह तो अब जवान की जगह प्रौढ़ बन गया था, चन्दा सकुशल वहाँ से चल दी थी, क्षण भर में वह वातावरण ही पलट गया! देवजी के हृदय में अब देवासुर संग्राम छिड़ रहा था।

उसके मस्तिष्क में उसके यौवन के चित्र खिच आये, मानो उसकी जवानी उसे बुला रही हो, यवनिका के पीछे खड़ी खड़ी।

बेचारी कंकू का क्या दोष था? बहू रूपी प्राणी को श्वसुरालय रूपी पिंजरे में यदि कोई मधुरपाश है तो देवर का है। सास तो घर की सर्वस्व, श्वसुर तो सहृदय होता हुआ भी स्वत्वशून्य होता है, ननद गृहस्वामिनी सास की मुख्यमंत्री इसलिए उससे सदैव भय ही भय रहता है और पति तो सास का आज्ञानुकारी सेनापति ठहरा! अत: बेचारी बहू को कहीं से कोई सहानुभूति की आशा होती है तो केवल देवर से ही! वह समय कुसमय सारे घर की विपदाओं से भाभी को छुड़ाने की क्षमता रखता है। किन्तु कभी कभी तो देवर से भी भाभी को सुख की जगह दु:ख मिलजाता है। क्यों कि पराधीनता में स्वप्न में ही सुख होता है!

कंकू के देवर ने स्नान गृह में बैठे बैठे ठण्डा पानी मांगा। भाभी ने देबर से परिहास करते हुए कह दिया: 'मैं तुम्हारी नौकरानी थोड़े हूँ! गर्म था तो पहले से ही ठण्डा लेकर बैठना चाहिए था।'

'अच्छा, भाभी ! अबतो दे दो न ?' देवर बोला । और भाभी से प्रेम में बाँह चढ़ाकर बोला : 'उठती हो कि नहीं ! लगाऊँ दो धौल ?'

'बड़ा आया धौल जमानेवाला ? तेरी बहू आकर कौन सी मेरी सेवा कर देगी !' कंकू बोल रही थी बस, कंकू ने कौन सी नयी बात कहदी थी; वह तो देवर जैसा कुछ भी न बोल पायी थी ।

देवर घर में बैठा बैठा ये बातें सुन रहा था । देवर तो उठते उठते ही उठता, किन्तु देवा से न रहा गया, उसे लगा : 'उसकी घरवाली की इतनी मजाल कि उसके भाई से मुँहजोरी करे ?' उसने घर के कोने में पड़े पाये को उठाया और धड़ धड़ पाँच सात जड़ दिये : 'हराम कहीं की ! बहुत चढ़ गयी है ?' देवा ने बेचारी को ठीक कर दिया ?

पाये की गुस्से की मार से कंकू के दाहिने हाथ में बड़ी चोट आयी । अगले दिन हाथ काफी सूझ गया । किन्तु किसी को क्या पड़ी थी कि कंकू के हाथ में हल्दी नमक की पुलटिस बनाकर बाँधता ? बेचारी को स्वयं ही अपनी मलहम पट्टी करनी पड़ती थी और घर का सारा काम काज भी उसी के मत्थे पड़ा ।

कुछ दिनों बाद एक दूसरी घटना घट गयी । देवा ने प्रतिज्ञा की कि वह मावा के घर कभी भूलकर भी पैर नहीं रखेगा ? किन्तु जात विरादरी के मामले बड़े विचित्र होते हैं ? मावा के घर कोई मंगल काम था ।

विरादरी के दो चार आदमियों ने आकर देवा के नोरे काढ़े और समझाया आज उसके घर काम है तो कल तेरे घर भी होगा ? अतः देवा को मावा का आमंत्रण मानना पड़ गया ।

किन्तु कंकू के मुँह से जाने कैसे निकल ही पड़ा : 'तुम्हें जाना हो तो जाओ, मैं तो नहीं जाना चाहती ।'

अब क्या था ? देवा के दिमाग का कीड़ा रेंगने लगा, उसने सोचा : 'मैं घर का मालिक तो 'हाँभी' कह कर आया और यह टका की लुगाई 'ना' करती है । इतनी हिम्मत इसकी ?' फिर तो देवा का मुख क्रोध में तमतमाया और पुरुष होने के नाते उसने उसे लातों-लातों इतना मारा कि कंकू को लहू की उलटी हो गयी ।

ऐसे होली खेलने के अवसर तो कंकू के साथ कितने ही बीते थे । अभी

अन्तिम होली खेले चार ही वर्ष तो मुश्किल से बीते होंगे, और इसी अवधि में देवा ने अपने ही घर में कुछ नया देखा।

इसी अशान्ति की आग में देवा तब तक जलता रहा, जब तक देवा ने कंकू के साथ मिल कर यह निश्चय न कर लिया : 'अपने जीते-जी तो वह इस घर में आ नहीं सकेगी, और जल्दी से जल्दी भीमा का दूसरा ब्याह फरा दें।'

भीमा की समस्या बड़ी गम्भीर थी। सरोते के बीच में पड़ी सुपारी सा वह दोनों ओर से कटा जा रहा था। चन्दा के चले जाने से उसे लगा : 'उसका सिर ही कट गया है। उसको गाँव में मुंह दिखाना भारी हो गया था। लोग इच्छा-नुसार बातें कर रहे थे, इसी हेतु भीमा सारे दिन घर से बाहर न निकला, और घाव पर नमक छिड़कने के समान माँ-बाप ने ऊपर से दूसरे ब्याह की बात कर दी। भले ही वह चन्दा के ऊपर रुष्ट था तो भी उसके ऊपर दूसरी स्त्री करना उसे मृत्यु के समान लग रही थी।

भीमा और ही कुछ सोच रहा था, पूँजा तो उसका शत्रु हो ही चुका था, आज चन्दा यहाँ होती तो शायद था पूंजा को योग्य शिक्षा मिल गयी होती, पर वह चली गयी मनमानी करके, अतः दो-चार महीने कुछ न करके चन्दा को खूब तंग कर देना चाहिये, बिल्कुल पूँजा का बिना कुछ बिगाड़े, इससे चन्दा घुलती रहेगी।

भीमा के मन में तो पूर्ण विश्वास था ही वह गुस्से गुस्से में चली गयी है, किन्तु वह पछतायेगी अवश्य। उसकी अपनी माँ बीमार हुई थी तो भी वह पीहर में दस दिन से अधिक न ठहर सकी थी, और भाभी के भाई के ब्याह में भीमा नहीं जायेगा, यह जान कर उसने बहाना कर दिया था : 'मेरी तबीयत ठीक नहीं है, कह कर वह भीमा को छोड़ कर नही जा सकी थी। आखिर यह चन्दा है तो वही, देखें कैसे रहेगी ? उसे खूब खपाना चाहिये', यह थी भीमा की कल्पना !

किन्तु माँ-बाप के दूसरा ब्याह करने की बात से उसका रोम-रोम काँपने लगा। एक रात की प्रेमभरी बातें भीमा के मस्तिष्क में चक्कर लगाने लगीं, भीमा ने ही तो उस बात का श्रीगणेश किया था :

'चन्दा ?'

'क्या कहते हो ?'

'माँ आज क्या पूछ रही थीं ?'

'कब ?'

'तू न्हा रही थी जब ।'

चन्दा के मुख पर ललाश दौड़ गयी । वह बोलना चाहती थी, किन्तु बोल न पायी ।

भीमा को हुआ कि अच्छा हो चन्दा से बात न पूछूँ, किन्तु मन न माना, वह बोला : 'क्यों बताती नहीं है ?'

साँड नाथने वाली चन्दा तो शर्म के मारे जमीन में गड़ रही थी, वह धीरे से बोली : 'क्यों तुम्हें बड़ी जल्दी है पूछने की ?'

'तुझे कैसे अनुभव हुआ ?'

'माँ तो इस बार मेरे अलग बैठने से बिगड़ रही थी...'

'परन्तु मुझे तो खुशी हुई इस बात से ।'

चन्दा जब ब्याह कर आयी थी तो कंकू ने सोचा था कि पलक मारते ही हमारे घर में पालना झूलने लगेगा, किन्तु एक वर्ष, डेढ़ वर्ष क्या पूरे दो वर्ष बीतने को आ गये थे पर वहाँ कोई आशा न मिली । बेचारी दम की मारी कंकू को यह बात बुरी लग रही थी । इस पर भी एक बात और हो गयी थी, दो-तीन महीने से चन्दा ने अलग बैठना छोड़ दिया, तो कंकू को खुशी हो रही थी, पर उस दिन चन्दा के अलग बैठने से उसकी आशा जाती रही थी, अतः कंकू बड़-बड़ाई : 'यह राँड तो शुभ दिन दिखलाने से रही ।'

अन्तिम दिन जब चन्दा बहुत तड़के उठ कर न्हाने लगी तो कंकू बोली :'बहू ?'
'हाँ माताजी !' चन्दा ने कहा ।

कंकू के मन में नाती-नातिन देखने की शुभ-लालसा तीव्र रूप से झाँक रही थी, उसे लगा कि चन्दा के गर्म तेज़ मसाले खाने से ही इसके गर्भ नहीं ठहरता । यह बात कंकू ने चन्दा से दो चार बार कही भी थी । आज फिर से वही बात दुहराती हुई कंकू बोली : 'मैंने बहू ! कितनी बार तुझे समझाया है कि गर्म चीजें न खाया कर ।'

चन्दा को उस समय इतनी रिस चढ़ी कि वह मन ही मन बड़बड़ाई : 'इतनी जल्दी हो तो दूसरी ले आओ न।' किन्तु प्रत्यक्ष में चन्दा विना कुछ कहे ही अपने कपड़े धोती रही।

और वही बात जब रात को भीमाने पूछी तो उसे लगा कि माँ और बेटे दोनों को एक ही धुन तो सवार नहीं है ?

किन्तु भीमा ने तो चन्दा से उलटी ही बात कही : 'चन्दा ! तू ऐसी ही रहे तो कितना अच्छा हो ?'

'ऐसी की ऐसी से क्या मतलब ?'

'छड़ी की छड़ी।'

'क्यों तुझे लड़का नहीं चाहिए ?'

भीमा ने प्रश्न हजम करते हुए कहा : 'तुझे बुरा तो नही लगेगा ?'

'नहीं, कह तो सही क्या बात है ?'

'बाल-बच्चे होकर भी उन्हें क्या सुख मिलेगा ?'

'क्यों ?'

सामने के घर की ओर भीमा की आँखें रुक गई। उसे उस दिन की घटना स्मरण हो आयी। गंगा जब जयसिंह के घर अपनी छ : मास की बच्ची को लेकर आयी थी, तो कुछ समय तक उस बच्ची का आदर मान रहा, किन्तु शनैः शनैः एक वर्ष की होते होते तो जयसिंह के दिमाग में उस अबोध बालिका के प्रति दुर्भाव जम गये। उसने एक दिन उस बच्ची को इतनी जोर से जमीन पर बाहर पटका कि बह मरते मरते बच ही गयी, समझो। नहीं तो उसकी छाती फटने में क्या देर थी ?

भीमा ने उस घरवाले से विरोध होने पर भी उस लड़की को गोदी में उठा लिया था। गंगा ने अपनी बिटिया की दुर्दशा देख कर रोते हुए कहा : 'हाँ भई ! यह दुनिया तो स्वार्थ की सगी है। तू तो इसे मारकर ही दम लेगा।'

इस बात से भीमा के हृदय में बिजली कौंध गयी। उसने जल्दी से बच्ची को गंगा के हाथ में थमा दिया।

उसके विचारों में संक्रान्ति आ गयी थी। उसे लगा : 'मेरे बाद मेरे बच्चों की भी यही दशा होगी है ? दूसरे घर में जाने से।'

और अभी अभी तो भीमा को सर्वदा के लिए मार देने का रामा का दाव खाली गया है। न जाने आगे कब उसके प्राण ले लिये जायें। अतः उसने सोचा : 'इस से अच्छा तो यह हो कि मेरे बच्चे ही न हों।' अपनी इसी इच्छा को व्यक्त करने के लिए भीमा कितने ही दिनों से छटपटा रहा था। किन्तु अवसर आज ही आया था, मन की बात कहने का।

'मौत सिर पर घूम रही है, यह तो तू जानती है न ?'

'क्या मरने की बहुत जल्दी है ?'

'जल्दी न हो तो चूड़ियाँ पहन कर जीऊँ ?'

चन्दा इस झंझट से बच कर बोली : 'अच्छा ! बता तो सही, तू क्या कह रहा था ?'

'लेकिन तुझे बुरा तो नहीं लगेगा चन्दा ?'

'बुरा लगेगा तो रोटी अधिक खाऊँगी ?'

'मैं सोच रहा था कि बच्चे हों और—सामने गंगा के घर की ओर अंगुली करके बोला : 'इस गंगा की बच्ची की तरह।

चन्दा ने जान बूझकर कहा : 'तू नहीं रहेगा तो घर में कोई न कोई तो और होगा ही न ! माँ है, बाप है, भाई है, बहन है,....'

और भीमा का पानी देखने के लिए बोली : 'और जिस के लिए तू कहेगा उसी को सौपती जाऊँगी, फिर क्या ?'

किसी की जबरर्दस्त लाठी की चोट खाकर भी बाल बाँका न माननेवाले भीमा की आँखों से उस बात के सुनते ही टप टप दो बूँद आँसुओं की लुढ़क पड़ीं।

चन्दा उसके आँसुओं को देखकर पत्थर हो गयी। उसने छोटे बच्चे की तरह भीमा का सिर अपनी गोदी में लेकर सहलाते सहलाते कहा : 'मैं तो हँसी में कह रही थी, तूने तो सच ही मान लिया। छी : छी : ?'

चन्दा ने अपने आँचल से भीमा के आँसू पोंछ लिये। भीमा बैठते हुए बोला : 'चन्दा तू हँसी करती हो या सत्य कहती हो, इसमें तेरा क्या दोष है, आज तो घर घर में यही हो रहा है।'

भीमा के सिर को अपनी गोदी में ही लिए चन्दा ने गंभीर मुद्रा में पूछा :

'सच कहना भीमा ! तुझे क्या लगता है ? मैं तेरे बाद दूसरा घर बसा लूँगी क्या ?

भीमाने चन्दा की आँखों में आँखें गड़ाते हुए कहा : 'चन्दा जैसे दूसरी करती हैं, तू भी करे तो कोई नयी बात थोड़े होगी ?'

'तुझे दूसरों की बातों से क्या मतलब ! मैं तो अपनी बात करती हूँ भीमा ?'

'क्यों चन्दा ! अभी इतनी बड़ी उमर यों ही कट सकती है ?'

'क्यों ! द्विजाति में कैसे रहती हैं स्त्रियाँ ?'

'उनमें तो ऐसी ही प्रथा है चन्दा ? किन्तु अपने में तो....।'

चन्दा ने बात को मोड़ दिया : 'तो इसका अर्थ तो यह निकला कि मेरे बाद में तू दूसरा ब्याह कर लेगा भीमा ?'

इस बात ने भीमा में आग सुलगा दी। भीमा चन्दा से दूर हटकर बोला : 'बेरी परीक्षा ले रही है क्या ?'

'नहीं, नहीं, मैं तो पूछ रही हूँ योंही ?'

'चन्दा ! तुझे याद नही है कि मुझे दूसरा ही ब्याह रचना होता तो तेरे लिए मैं बड़ी से बड़ी आपत्ति उठांना क्यों पसन्द करता ?'

'नहीं भीमा ! यह तो मुझे ज्ञात ही था कि मैं तेरी हो ही गयी हूँ, किन्तु मैं यह पूछती हूँ कि मैं न रहूँ तब ?'

'देख चन्दा ! में कहूँगा, किन्तु तुझे विश्वास थोड़े होगा ?'

'भीमा ! सच्चे मन की बात तो सब मान लेते हैं ?'

'सच्ची बात तो यह है कि तेरे बिना मैं जी भी तो नहीं सकूँगा ?'

'हाँ भीमा ! मुझे ही बनाने चला है ? ऐसे बननेवाले शिकारपुर में रहते हैं ?' कह कर चन्दा भी भीमा से दूर हट गयी।

'मैं तो कहता था न ! तू नहीं मानेगी।'

'भला ! कोई किसी के लिए मर जाता होगा। ये तो सब कहने की बातें हैं।'

भीमा की बोलती बन्द हो गयी थी। थोड़ी देर बाद भीमा बोला : 'मैं औरों की तो नहीं जानता, किन्तु अपनी कहता हूँ, मुझे तो ऐसा ही लगता है।'

चन्दा हँस कर बोली : 'क्या धरा है इन बातों में, लोगों की बातें सुन कर कहने लगा न भीमा तू भी ? जरा समय आने दे, देखें मेरे बिना कैसे रह जायेगा अकेला ?'

'तू हँसी कर रही है ?'

'और क्या ? सच्ची मान बैठे महाशयजी !'

चन्दा ने आज सारी बातें सहन करके कहा : 'भीमा ! मुझे नंगा न समझ बैठना। तुझे विश्वास तो है कि चन्दा अपनी बात की पक्की है। यदि विश्वास न हो तो बच्चा होने से पूर्व ही मैं डर निकाल दूँ तेरे ही सामने

'नहीं, नहीं चन्दा ! मेरे कहने का यह भाव नहीं था, और मेरे बाद तू चली भी जावे तो इससे मुझे बुरा क्यों मानना चाहिये ? मैं तो यों ही बक गया था।

भीमा ! तूने चन्दा को पहचाना नहीं है। यह कोई बच्चों की सी बात करने का प्रकार है। समय बता देगा कि चन्दा तेरा घर छोड़ कर कहीं नहीं जायेगी।

'किन्तु चन्दा ! हमारी बिरादरी में ऐसा कैसे हो सकता है ? कौन सी अपनी जमीदारी है या कल-कारखाने हैं। मजदूरी का काम हैं, मजदूरी करने वाला मर गया तो बेचारी स्त्री क्या करेगी ?'

चन्दा की आवाज भर्रा गयी थी, वह आवेश में बोली : ' भीमा ! भगवान् ने चन्दा को दूसरों की भीख पर जीने के लिए नहीं बनाया है। वह अपने हाथ-पैरों पर भरोसा रखती है।'

दोनों थोड़ी देर तक मौन रहे । अभी तक निधड़क बातें करती हुई चन्दा जाने क्यों मुर्झा रही थी। थोड़ी देर पहले चन्दा भीमा के आँसू पोंछ रही थी, और अबके तो उसी की आँखों में आँसू छलक आये थे। भीमा ने उसे बहुत मनाया तो भी उसकी आँखों से आँसुओं की धारा बहती रही।

अन्त में तो रोते-रोते चन्दा की घिग्घी ही बँध गयी थी। उसने करुणातुर आँखों से भीमा को देखते हुए कहा : 'क्यों भीमा ! मुझे यों ही छोड़ कर चला जायेगा हैं तू ? निर्दय !' जाने भीमा उससे अलग हो रहा हो।

भीमा को अपनी कही बात पर बड़ा पश्चात्ताप हुआ। वह अपनी मूर्खता पर रो रहा था।

किन्तु एक तो वह दिन था कि भीमा चन्दा के मरने के बाद भी दूसरा ब्याह नहीं करना चाहता था, और वही चन्दा के पीहर चले जाने पर दूसरा ब्याह करने की बातें सुन रहा था।

: १४ :

गाँव का गुरु

देवा को लग रहा था कि भीमा ने दूसरा ब्याह करने की बात मान ली है, अतः ब्याह के लिए रुपये-पैसे, सामान आदि की तैय्यारी कर लेनी चाहिए थी। पैसा होगा तो ब्याह के लिए लड़की का क्या घाटा ?

उस दिन देवा अपने लेन-देन करने वाले सेठ नेमचन्द के पास ज्वार लेने गया था तो सेठ ने देवा के साथ अच्छा सलूक नहीं किया था, इससे पूर्व तो सारा लेन-देन नेमचन्द के साथ ही था, परन्तु इस घटना ने देवा का मन खट्टा कर दिया था, और वह नेमचन्द की जगह और किसी से ऋण लेने की बात सोच रहा था।

इस गाँव में सिवाय नेमचन्द के और कोई कर्ज-पात देने वाला न था। सारे गाँव में दो-चार ही घर भाग्यशाली थे, जिन्हें नेमचन्द के लात-घूँसे, गाली-गलौंच न सुननीं पड़ती हों, नहीं तो और सबों को तो उसने चूस-चूस कर समाप्त कर दिया था। कुछ अभागे ऐसे भी थे, जिन्हें गाली-गलौंच के बाद भी सेठ नेमचन्द घर से बैरंग लौट आते थे।

खैर, इसके अतिरिक्त देवा के गाँव में अन्य पड़ोसी गाँव के भी एक-दो साहूकार लेन-देन का काम किया करते थे। इनके कब्जे में आने पर तो सबको समान ही अनुभव हुआ करता था।

इनके सिवाय शम्भू पटवारी जबसे इस गाँव में बदल कर आया था, तो वह भी मनुष्यरूपी गन्ने को चूसना खूब जानता था।

पच्चीस रुपये वेतन मिलता था, दस जने खाने वाले थे, उस पर भी यह रुपये बचा कर लेन-देन किया करता था। यह बात है तो बड़ी मनपसन्द !

शम्भू पटवारी का बाप, इसके बचपन में ही मर गया था, शम्भू की विधवा माँ ने समझदारों के कहे-सुने से इसे चौथी श्रेणी से छठी श्रेणी तक पास कराया, इन दो सालों में बेचारी को बड़े पापड़ बेलने पड़े थे।

पहले तो बड़ा सुनहला समय था। थोड़ा पढ़ा आदमी भी बड़ी इज्जत-आबरू से अपना पेट पाल कर चार पैसे बचा लेता था। बेकारी का नाम तक नहीं था।

चौदह वर्ष का छोकरा शम्भू स्कूल में पाँच रुपया मासिक पर अध्यापक हो गया था, और दो-तीन वर्ष तक अध्यापकी करता रहा।

अठारह वर्ष की अवस्था तक तो उसे अनुभव भी हो गया था कि पैसा कमाना हो तो मास्टरी को छोड़ना ही पड़ेगा। उसने नया व्यापार ऐसा ढूँढ़ा कि जिसमें बिना ही पैसे के पैसा कमाया जा सके। व्यापार की भाँति घाटे की भीति नही, नौकरी की तरह किसी की दासता नहीं, घर के घर में रहे, लोगों पर रोब रहे, शिक्षा की योग्यता के अनुसार पटवारीगिरी कम वरदान नहीं है, नौकरी और डाँट-डपट दोनों साथ-साथ रहती हैं।

सरकारी नौकरों में थोड़ा-बहुत हरामी बनने की सुविधाएँ तो सभी में होती हैं, किन्तु पटवारीगिरी में तो आदि से अन्त तक यही भरी पड़ी हैं। भले ही काम किसी गाँव में या खेत में हो, तो भी यह घर में बैठे-बैठे अपना रोबदाब तो सरलता से छाँट सकता है। कभी कभी तो वर्ष में एक-दो महीने घर से बाहर रहना होता है, इसमें भी आराम ही आराम! एक-दो नौकर जो भी सरकार की ओर से मिलते हैं, वे सरकार का सारा काम तो करते हैं बिना कुछ खाये-पीये। भंगी, चमार, नाई, धोबी, बढ़ई, लुहार, तेली तो हमेशा ही सेवा मे निःस्वार्थ-भावना से काम करते रहते ही हैं। नम्बरदार या मुखिया से लेकर छोटे से छोटा आदमी भी पैसे का पैसा चटावे और लभाव में खुशामद करे वह अलग इसे कोई भी काम बिना पैसा लिए न करने पर भी घर के ब्याह-शादी के काम-काज में सबकी ओर टीका, तिलक मिलता है, बिदाई के समय इसके बहू-बेटा-बेटियों को भेंट दी जाती हैं वे सँगे में रहीं।

इन बातों के सुखद स्वप्नों ने शम्भू को अध्यापकी से छुड़ा कर पटवारी बनने के लिए बाध्य कर दिया। और वह पटवारी बनकर चारों ओर से पैसे बटोरने पर जुट गया। पैतृक सम्पत्ति बेटे के नाम पर चढ़वानी हो तो भजकल्दारम् किसी के खेत को अपना बनवाना हो तो भजकलदारम्, सरकारी जमीन को पचाना हो तो दो पटवारी को भेंट-पूजा, सरकार के पास से तकाबी लेनी हो तो भी इनकी सेवा सबसे प्रथम।

और इस व्यापार में कितनी कमाई है? औरों में ग्राहक आवे तो लाभ हो,

किन्तु इसमें तो ग्राहक को स्वयं ही सिर के, बल चल कर आना पड़ता है। विना आये बण्टाढार न हो जाये ! उधार का नाम नहीं, नकदनारायण पहले बाद में काम हरीच्छा पर।

'चल तेरे खेत की मींड ठीक नहीं है, पैसा देता है कि चालान करू ? इस घर की एक दीवार सरकारी जमीन पर चिनी गयी है। यह आज्ञा ली हुई जगह से अधिक जगह क्यों ली है ? विना आज्ञा के पेड़ क्यों काटा ? क्यों सेठजी ! आप अपनी दुकान पर सरकारी भाव नही रखते ?'

'इन दुष्टों से कितनी बार कहा है कि बीच रास्ते में कूड़ा कचरा न फेंका करो बदमाश सुनते ही नही हैं ! यहाँ सराय और धर्मशाला कौन आया है ? चलो, दिखाओ तुम्हारे घर में कितना अनाज है ? कितनी कपास है ? सरकार ने तो आदेश निकाल दिया है कि किसी को ५० टका से अधिक उपज का संग्रह नही करना चाहिये। अरे, चौधरी ! तेरे पास तो बहुत अनाज, तिलहन आदि भरा पड़ा है, तेरे ऊपर तो जुर्माना विना हुए रहेगा नही। और क्यों सेठजी ! तीन चार बार तो आपको छोड़ चुका हूँ कि गायकबाड़ी से बाहर कोई व्यापार नहीं कर सकते। पर आप क्यों मानेंगे ? क्यों भाई ! बीड़ी पान वाले ! खूब मुनाफा कर रहे हो ? जानते हो कितना बड़ा जुर्म है यह ? हाँ तुम तो मिट्टी का तेल सरकारी भाव से बेचते ही नहीं हो, खूब लाभ उठा रहे हो। यह बात ठीक नहीं है !'

बालू में से भी तेल निकालने की विधि पटवारी खूब जानता है। जहाँ सरकारी कर भरने का समय आया कि बरसी चारों ओर से चाँदी।

'लाओ वसनजी भाई ! आपके खाते में रु० १०६–५–६ निकलते हैं।'

'किन्तु गत वर्ष तो मैंने रु० १०५–५–३ भरे थे ?'

'हो सकता है कि आपके खाते में और किसी का रुपया जमा हो गया हो ?'

'भगवान् ही जाने।' कह कर वसनजी भाई ने नये-नकोर दस रुपयों के ग्यारह नोट दे दिये।

वसनजी भाई ने रुपयों की रसीद माँगी तो पटवारीजी कहने लगे : 'क्यों भाई ! अपनी अन्नदाता सरकार का भरोसा भी नहीं है ? रसीद कहाँ जाती है, फिर ले जाना।' कह कर पटवारी दूसरे का हिसाब करने लगा।

थोड़ी देर बाद वसनजी भाई ने फिर कहा : 'मेरे बाप ! मुझे रसीद मिल जाये तो मैं रास्ता पकड़ूँ ।'

'क्यों मैंने कह तो दिया है, कल वल ले जाना रसीद, जमाकर छोड़ूँगा ।'

'लेकिन शेष रुपये ?'

'कैसे शेष रुपये ? ठीक तो हो गया है हिसाब ।'

'कैसे जी ?'

पटवारी हँसता हुआ बोला : 'तुम भी क्या हो वसनजी भाई ! इतनी मँहगाई बढ़ गयी है कि आप जैसा आदमी अपने अपने खाते में पाँच पाँच रुपये अधिक दे तो क्या बड़ी बात है ।'

'प्रति वर्ष दो रुपये देता तो हूँ पटवारी जी !'

'अजी, नम्बरदारजी ! इतनी तो कपास हुई है, बाजार इतना मँहगा है, तो भी वही दो के दो रुपये ! तिगुना भाव चीजों का मिल रहा है, अतः ईमानदारी से तो दो के तिगुने छः रुपये मिलने चाहिएँ थे । तो भी मैंने तो एक ही रुपया अधिक लेकर छोड़ दिया है ।' पटवारी ने अपनी चतुराई बताते हुए कहा ।

वसनजी भाई थोड़ा हिसाब किताब जानते थे, उसने दो की जगह तीन की नयी चपत पड़ते देख कर कहा : 'तो भी दस आना नौ पाई मेरे निकलते ही हैं ।'

'हैं, हैं !' कर के हँसता हुआ पटवारी बोला : 'आप तो सब कुछ जानते ही हैं, रेजगारी की इतनी कठिनाई है कि मैंने तो सीधा सीधा रुपये का ही हिसाब रखा है ।'

तो भी वसन जी भाई ने पटवारी का पिण्ड न छोड़ा । बोला : 'कोई हानि नहीं है, लाइये रुपया मैं लौटाये देता हूँ शेष पैसे ! चारों ओर हमी को दबाना ठीक थोड़े है ।' इसके बाद तो पटवारी के रुपया देने से पूर्व ही वसनजी ने साढ़ पाँच आना उसके हाथ में थमा दिये । अब तो पटवारी को संदूकची खोल कर लौटाना ही पड़ गया । लेकिन था वह बड़ा बना हुआ, इसी काम में बीस-बावीस वर्षों का अनुभव इसे निपुणता दे रहा था ।

इसके बाद वसनजी अपने शेष पैसे लेकर वहाँ से चला गया तो महादानी पटवारीजी दूसरों से बोला : 'है न कितना बदमाश ! पाँच-छः हजार की फसल

हुई तो भी पैसे निकालते बाप मर रहा था। थोड़ा-सा कुछ कर दूँ उलटा-सीधा तो पच्चीस पचास के नीचे आ जायेगा मेरा बेटा!'

देख लो सरकारी कर्मचारी की निम्न मनोवृत्ति, सरकार इसी बात का तो पैसा देती है, ऊपर से हर एक से दो चार रुपये तो मिलते ही हैं, फिर भी खरीज के बहाने दस-पन्द्रह आने और हड़प हो जाते हैं।

तीन सौ रुपया वेतन, एवं ऊपर से एक हजार बोनस। राज्यस्व विभाग का व्यय कूता जाता है, किन्तु इससे भी कहीं अधिक धन तो प्रजा के पास से ही इनके पास चला जाता है, उसे मिलाया जाये तो कितना आँकड़ा हो जायेगा?

किन्तु शम्भू पटवारी के पास इस बात का पूरा पूरा विवरण था कि वह जो कुछ भी लेता है, उसका ज्ञान सरकार को तो है ही, यह घूसखोरी कोई छिपी बात थोड़े है।

पटवारी के पास इसका एक उदाहरण था। वह कहा करता था: 'तहसील में बड़ा सरकारी अधिकारी आया हुआ था, तीन सौ रुपया उसके ऊपर खर्च हुआ, तीन दिन ही रहा था। १५० रुपये मासिक वेतन पाने वाला अधिकारी इतना रुपया कहाँ से खर्च करता है? अधिकारी अपने भत्ता और मार्ग व्यय को वेतन में ही मानते हैं, अतः उसमें से तो एक पैसा भी खर्च नहीं करते तब इतने भारी व्यय के लिए तो ये लोग अपना सारा बाहर भीतर आने जाने का व्यय पटवारियों पर २०-२५ रुपये का अनिवार्य बोझा डाल देते हैं। भला २०-२५ रुपये मासिक वेतन पाने वाला अपने एक मास का वेतन कहाँ से देगा?' सो भी एक एक आठ आठ दस दस अधिकारियों की सेवा के लिए भरना ही पड़ता था। जिसका स्पष्ट भाव होता है कि हम तुमसे वसूल करते हैं तो तुम दूसरों से वसूल करो।'

'सभी सफेद प्रवाही को दूध मान लेना मूर्खता है। यह जो कुछ मैं लेता हूँ, इसमें तो अनेक लोगों के हिस्से हैं, हम तुमसे लेते हैं तो हमें भी आगे काम कराने के लिए देने पड़ते हैं। कभी कभी तो जितना हमें मिलता भी नहीं है, उससे कहीं अधिक आगे वालों को देना पड़ जाता है। ऊपर के अधिकारी के कार्यालय का छोटा-से-छोटा चपरासी भी विना घूस के कहीं टिकने नहीं देते।

वह अपने बलबूते पर थोड़े लेता है, उसके लेने में भी साहब का भाग होता है। नहीं तो क्या मजाल जो एक पच्चीस तीस रुपये का लिपिक का चपरासी चमकते नोट अपनी जेब में रखे ? सच्ची बात तो यह है कि सर्वत्र यही घूसखोरी का बाजार गर्म है।'

किन्तु शम्भू पटवारी इस घूसखोरी की कला में सबसे आगे है।

'यह तो जानता है भेड़ियाधसान ! जो माँगता है उसे देते हैं, जो पूछता है उससे कह देते हैं, अतः तुम केवल काम ही करते रहो तो कोई नहीं पूछनेवाला। और खुद ही लेकर खाते रहो आगे वालों को न खिलाओ तो भी नहीं चल सकता। कल कोई अधिकारी आकर जनता से पूछ बैठे : 'कुछ भेंट पूजा नहीं देते ?' और लोग बाग कह दें, लेने देने की बातें तो मुसीबत हो जावे। इसलिए लेने देने का हिसाब बराबर करते, रखते जाना चाहिये।

और शम्भू पटवारी है भी बड़ा चलता पुर्जा। वह अपने ही भूमि-विभाग का काम काज नहीं करता था, अपितु छोटे-मोटे काम मास्टरों की अदला बदली से लेकर, थानेदार, तहसीलदार, कलक्टर तथा जज आदि के काम भी वह अपने सिर पर लेकर खाता पीता था। वह कह देता : 'अरे भई ! जिससे कहो, उसी से काम बन जायेगा।' और सचमुच अधिकारियों की सेवा करने में शम्भू पटवारी इतना चतुर था कि क्या मजाल कोई साहब उस से अप्रसन्न रह जायें ? तभी तो वह कह दिया करता था : 'साहबों की क्या इच्छा है, इसे तो मैं उनकी स्त्रियों से भी अधिक जानता हूँ समझे न !'

पटवारी में सब से अच्छा गुण तो यह था कि जो कुछ भी काम काज हो तो दस पाँच आदमियों की सलाह सम्मति से ही करता था। इसी सद्व्यवहार के कारण ही तो इसने गाँव की छोटी-सी नौकरी में रहकर भी बाल-बच्चों को पढ़ा-लिखा कर खिला-पिला कर ब्याह-शादी करने के बाद बीस वर्ष में पन्द्रह हजार रुपया बचा लिया था।

हाँ, जब लड़की का ब्याह हुआ तो पटवारी ने अपने क्षेत्र के तीन गाँवों में प्रत्येक घर पर कर लगा दिया था। गाँवों के दो चार अग्रगण्य व्यक्तियों को मिला कर, समझा बुझा कर अपने पक्ष में कर लिया था। वे सब कहते थे :

क्या हो गया, जो दो चार रुपये दे दोगे ? अपना पटवारी है, और ब्राह्मण है, कन्यादान के पवित्र कार्य में तो सहयोग देना ही चाहिये।' फलस्वरूप सारे लोगों ने कुछ न कुछ दिया ही था तब।

कपास की खेती पर प्रति घर आधा सेर कपास पटवारी की निश्चित थी। इस से कोई किसान भी नहीं रोता और पटवारीजी को प्रति वर्ष बारह सौ रुपये मिल जाते थे। कन्या के विवाह के समय तो पाँच सौ रुपये नकद आ गये थे कन्यादान के लिए। पचास रुपये व्यय हुए, शेष बच गये। कहने का तात्पर्य यह है कि सिवाय अपने नये पक्के मकान के जिसमें साढ़े पाँच हजार लग गया था, और किसी भी काम में पटवारीजी की कानी-कौड़ी भी खर्च न हुई थी, सिवाय बचत के।

और अब तो पटवारीजी ने सात आठ वर्षों से लेन देन का व्यापार भी प्रारम्भ कर दिया था। इस समय नहीं भी होंगे पटवारीजी के तो गाँव में दो हजार रुपया रुका हुआ था इस गाँव में। यहाँ आये डेढ़ दो वर्ष ही हुआ था। विना अच्छे लाभ के शम्भू पटवारी इस व्यापार में हाथ डालनेवाला ही कहाँ था ?

देवा भी पटवारी की बातें जानता था, किन्तु और कोई चारा न था। उसे नेमचन्द्र सेठ को भी दिखा देना चाहिये कि उसकी शाख तो अभी तक शेष ही है। तुम न दो तो भले न दो, दूसरे देने वाले भी तो हैं गाँव में। साथ ही फसल आने में दो चार महीने की देर थी, फसल आने पर तो तीन सौ चार सौ रुपये उतार देना कौन-सी बड़ी बात है ? नहीं भी मौका आयेगा देने का तो कोई नया काम ढूँढ़ कर दे ही दिया जावेगा।

इन्हीं बातों को सोचकर देवा भीमा के विवाह के लिए कर्ज लेने शम्भू पटवारी के पास गाँव में अगली ही प्रातः जा पहुँचा।

★

१५

बेचारा भीमा !

देवा शम्भू पटवारी के घर से पैसे लेने स्वीकृत करके गाँव में लौटा तो भीमा के पैरों के तलों की जमीन खिसक गयी। इन दो दिनों में देवा की मुखाकृति इतनी बदल गयी थी कि भीमा अपने बाप की ओर आँखें उठा कर देख भी न पाता था। बोलचाल की बातें तो अलग रहीं। दोनों बाप बेटे एक दूसरे के मुख की भाषा देखते ही पहचान रहे थे। अतः भीमा को लगा कि हों न हो अब तो पिताजी उसके गले में दूसरी बहू लटका कर ही मानेंगे। भीमा ने बड़ी बड़ी विधियाँ बरतीं, पर एक न चली बाप के सामने। भला भीमा किस मुख से बातें करता बाप से ? माँ-बाप की आँखें तो साफ साफ बता रही थीं भीमा के लिये उनके पास सिवाय अपमान के और कुछ भी नहीं है।

तो इसका भाव यह हुआ कि भीमा माँ-बाप के कहने से दूसरा ब्याह कर ले। फिर भीमा चन्दा को क्या मुँह दिखा सकता है ?

किन्तु इस समय तो भीमा के ऊपर चन्दा की अपेक्षा माँ-बाप की ही चिन्ता अधिक थी। उन्हें भीमा अपने मन की बात कैसे बता सकता था चन्दा के लिए यह बड़ी टेढ़ी खीर थी।

देवा ही एकाकी इस बात पर होता तो स्यात् कोई मझला मार्ग निकल आता, किंतु भीमा की माँ कंकू तो उस से भी भयंकर हो गयी थी। उसने तो भीमा को अपना निश्चय सुना दिया था : 'दूध में न्हाकर भी चन्दा आवे तो वह उसे अपने आंगन में पैर भी न रखने देगी।' भीमा के विवाह के समय भी माँ-बाप में काफी विरोध था। वह कहती थी : 'कब तक इन दोनों की गाड़ी खिचेगी ? मुझे तो लगता नहीं है कि ये दोनों बहुत दिन साथ में रह सकेंगे !'

अन्त में वही बात होकर रही। अतः भीमा कुछ बोल न सका।

माँ-बाप मानें या न मानें तो भी, भीमा अपने बचाव के लिए मार्ग खोज रहा था।

हाँ, उसकी समझ में एक बीच का मार्ग आ गया। रणछोड़ तो मुखिया

अब बना था, किंतु उसकी बातें तो लोग बहुत पहले से ही मानते थे। और देवा तो उसका इतना प्रशंसक था कि जब देखो उसी का बखान करता रहता था : 'है तो छोटा ही उमर का, किंतु सम्मति खूब सोच-विचार कर देता है।' चन्दा के विवाह के समय देवा तो थोड़ा बहुत झुका था तो इसी की सम्मति से। यदि रणछोड़ किसी भाँति देवा को समझावे तो यह बात तो निश्चित है कि देवा कुछ समय के लिए दूसरे विवाह का विचार छोड़ देगा।

किन्तु रणछोड़ के ऊपर चन्दा का बुरा प्रभाव पड़ चुका था, वह अनेक बार भीमा से कह चुका था : 'अरे ! पागल हो गया है ? स्त्री के ऊपर तो सदा बैठे रहना चाहिये, नहीं तो, 'नारी अतिबल होत है, अपने कुल का नाश।' भीमा को लगा कि शायद रणछोड़ इस बात में न भी पड़े। उस पर भी चन्दा अपनी इच्छा से चली भी गयी थी, इस शंका ने भीमा को कुछ दबाया।

'परन्तु उससे पूछ लेने में क्या हर्ज ? करे न करे उसकी मर्जी।' कहता हुआ भीमा रणछोड़ के पास जा पहुँचा।

भीमा के पहुँचते ही रणछोड़ अपनी घरवाली के साथ दैनिक कार्यक्रम में उलझा हुआ था। उसके घर में घुसते ही उसने सुना : 'यह तो मैं सीधी-सादी कमजोर मिल गयी हूँ, चन्दा मिली होती तो....।' मणी कह रही थी।

'चन्दा तो क्या उसकी माँ भी मिली होती तो क्या ? उसकी भी ऐसी गत बनाता कि हमेशा याद रखती।' रणछोड़ ने कह कर बाहर देखा ही था कि भीमा खड़ा मिला। उसने भीमा की ओर देख कर आगे कहा : 'वह तो यह भूतनी का मिल गया है नहीं तो क्या मजाल है जो स्त्री घर से बाहर पैर भी रख दे।'

भीमा ने ये बातें वड़ी मुश्किल से गले के नीचे उतारीं। वह तो कुछ न बोला, किन्तु मणी बोली : 'वह तो तुम्हें नहीं मिली है, इसीलिए बकवास करते हो, भीम भाई तुमसे कम थोड़े ही है, मगर यह कहो न धींग के सामने किसकी चलती है ?'

रणछोड़ बोला : 'कौन-सी मर्दानगी कर दी है उसने ? देखूँगा कौन है उसके बाप के मर जाने के बाद। दूसरा ब्याह कर ले, यह तो पता चल जाये उसे भी।'

'हाँ, हाँ, आया तो है तुम्हारे पास, इसका करा दो दूसरा ब्याह।' मणी ने तेजी में कहा।

इन बातों से भीमा मन फटा जा रहा था। उसने रणछोड़ से कहा : 'मुझे थोड़ा-सा काम था ?'

'अच्छा चलो बैठक में चलेंगे।' कह कर दोनों बैठक में बातें करने चले गये।

वहाँ बैठते ही बिना बोले चाले चकमक से बीड़ी सुलगाकर दोनों पीने रगे। धुएँ का कश छोड़ता हुआ रणछोड़ बोला : 'बोल क्या काम है भीमा ?'

भीमा ने भी बीड़ी को सुलगाने के लिए तीन चार कश मारे और फिर दो अँगुलियों के बीच में बीड़ी को विश्राम देता हुआ बोला : तुझे बात तो मालूम हो ही गयी है ?'

'कौन-सी बात भीमा ?'

'वही जो मणी भाभी कह रही थी।'

'अरे ! उसकी भली चलायी, वह तो दिन भर में ऐसा कितनी बार कहती है।'

'दूसरी शादी......?'

'अच्छा कल शाम ही देवा चाचा ने मुझसे इस विषय में बात की थी।'

'क्यों क्या कह रहे थे पिताजी ?'

'यही कि ब्याह के लिए रुपयों की व्यवस्था तो शम्भू पटवारी से कर ली है।' आगे बात बढ़ाते हुए रणछोड़ ने कहा : 'लेकिन भीमा तेरी क्या मर्जी है ?'

'अच्छा शान्ति से सुनो तो कहूं ?'

'शान्ति शान्ति क्या ? अभी तू ने धीरज की बात ही कहाँ की है ? मुझ जैसा होता तो उसी समय दो टुकड़े कर देता, आगे जो कुछ भी होता देख लेता। देवा काका भी मेरे ही स्वभाव का है। मुझ से वे आगे बोले : 'क्या करूँ रणछोड़ ! वह मेरे बेटे की बहू थी, दुनिया न जाने क्या क्या कहती ? जो भीमा में पानी होता तो बाद की बात तो मैं सब कुछ देख लेता। खैर भगवान् जो कुछ करता है, ठीक ही करता है। मैं तो उसे अपने घर में आने नहीं दूँगा।' बीच में ही रणछोड़ ने कहा : 'भीमा ! मैंने चाचा का मन टटोलते पूछा :

चाचा ! भीमा का विचार हुआ उसे रखने का तो...., चाचा ने कहा: 'हुआ करे उसका, मैं यही समझूँगा मेरा एक लड़का कम था और क्या ? उसे लेकर भीमा भी मेरे घर में नहीं रह सकता।' रणछोड़ थोड़ी देर तक भीमा के मुख की ओर ताकता रहा।

भीमा तो यह सुन कर पत्थर बन गया था। उसकी आँखें फटी की फटी रह गयीं। वह टकटकी लगाये रणछोड़ का मुख देखता रह गया।

रणछोड़ को लगा कि तीर अपने लक्ष्य पर लग गया है। अत: भीमा को सम्मति देता हुआ बोला: 'भीमा ! मेरी सम्मति पूछता हो तो बताऊँ ? देख स्त्री किसी को बुरी थोड़े लगती है, परन्तु क्या कोई सोने की कटारी से पेट चाक करवा लेता है ? यह भी कोई बात हुई कि चन्दा तो तुझे लातें मारे और तू पैर दबाता रहे उसके। भीमा ! हम तो ऐसा कभी नहीं कर सकते। मैंने तो तुझे कितनी बार समझाया होगा कि राँड और गाड़ी तो दबाये ही ठीक चलती हैं। शायद तू तो समझता है कि चन्दा क्या है कोहेनूर हीरा है। तेरी मर्जी ! जूते खाने पसन्द हों तो खूब खा, तेरी चाँद है तू जाने। स्त्री को तो एक आँख से रुलावे तो दूसरी से हँसावे। वह तभी काबू में रहती है। ग़ुलाम बन जाना तो नपुंसकता है।'

भीमा को हुआ कि रणछोड़ का तूफ़ान मेल तो आगे बढ़ता रहेगा। अत: वह बीच में बोल पड़ा : ' क्यों रणछोड़ भाई ! अपनी कहता रहेगा या मेरी भी थोड़ी सुनेगा ?'

'कौन ना कहता है, सुना तू भी सुना न !' रणछोड़ बोला

भीमा जानता था कि चन्दा का पक्ष लेने से तो कोई काम चलेगा नहीं, क्योंकि यहाँ के सभी लोग तो स्त्रियों को पैरों की जूतियों से भी नीच समझने वाले थे, अत: उसने मन की बात मन में रखते हुए कहा : 'रणछोड़ ! चन्दा को बुलाने की तो बात नहीं है।'

'तो क्या बात है भीमा ?'

'यही कि दूसरे ब्याह की इतनी जल्दी क्या है ?

'धत्त तेरे की ! तू तो मूर्ख का मूर्ख रहा भीमा ?

भीमा शान्ति से बोला: 'किन्तु पूरी बात तो सुन तो ली होती।'

'क्या खाक सुनूँ तेरी बात ! उसमें क्या धरा है?'

'रणछोड़ ! मुझे पिताजी की शर्त मंजूर हो तो....'

'तो तुझे आगे क्या कहना है?'

'कहना यही है कि चन्दा को तो सौ बार नहीं बुलता लेकिन....

'लेकिन क्या? दूसरा ब्याह नहीं करना है यही न?'

भीमा ने स्वीकृतिसूचक सिर हिलाया कि रणछोड़ ने होंठ पीसते हुए कहा: 'जा जा ! जोरू के गुलाम ! चुल्लू भर पानी में जाकर डूब मर !'

भीमा रण छोड़ की कड़वी से कड़वी बातें सुनरहा था। नहीं तो और करता भी क्या वह ! कोई उपाय न था, इस समस्या के सुलझाने का ! वह फिर बोला: 'रण छोड़ भैय्या ! इस में किसी की क्या हानि है?'

'है न तू बिल्कुल मूर्ख ! जब चन्दा को लाना ही नहीं है तो दूसरा ब्याह करने में क्या नुकशान है !' भीमा तो अभी अभी न बुलाने की बात माने बैठा था अतः वह कुछ न बोला।

रणछोड़ ने आगे परम्परा बढ़ाते कहा: 'भीमा ! तुझे क्या मालूम है ! अरे दूसरे ब्याह करने से उस साली को मालूम पड़ जायेगा कि वह नहीं तो उसकी बहन मिल गयी है दिन के दिन?'

भीमा को यह विचार पसन्द सा आ गया था, तो भी उसने कहा: 'जल्दी काम शैतान का? इस लिए ठहरकर करना ही बुद्धिमत्ता होगी।'

रण छोड़ भीमा के मन को समझ गया था। उसने इधर या उधर दो टूक बात कहते हुए कहा: 'मैं समझता हूँ भीमा ! तुझे चन्दा से बहुत मोह है। लेकिन तुझे पता भी है इस पागलपन से तेरे घर का सत्यानाश हो रहा है। और तू आँखें उघाड़े सब कुछ देख रहा है। लेकिन भीमा ! मनमें प्रेम होने पर भी तो तू अपनी बुद्धि से काम ले सकता है। क्या आवश्यकता है अपने मनका भेद देने की। दूसरा ब्याह करने मात्र से वह कहीं भाग तो नहीं जाएगी। ब्याह का नाम सुनते ही उसके तन बदन में आग लग जाएगी। भला कौन स्त्री यह सह सकेगी कि उसका पति तो दूसरी स्त्री से मजा करे और वह सिसकती रहे,

फिर स्वयं ही आयेगी तलास लेने के लिए। विना जात विरादरी के उसे परित्याग तो नहीं मिल सकता, तब हम लोग देख ही लेंगे उसे ! वह अपने कसूर पर क्या कहेगी •!'

भीमा तो टुकुर टुकुर करके रण छोड़ की ओर देखता ही रह गया। प्रत्येक दृष्टि से कितनी व्यावहारिक बातें खोद खोदकर बता रहा था वह ! लेकिन उसे इस बात की बड़ी हैरानी थी कि स्त्री जाति के प्रति रण छोड़ के ऐसे अनाड़ीं विचार क्यों हैं ?

दो पक्षों में सुलह शान्ति कराने की शक्ति रखनेवाला रण छोड़ स्त्रियों के प्रति इतना अनुदार क्यों है, इस बात से भीमा को लगा कि रण छोड़ चन्दा के प्रति मनुष्यता भरी उसकी बात को कैसे मान सकता है ? सब कुछ सुनने के बाद भी भीमा को कोई मार्ग नहीं मिल रहा था, और रण छोड़ की तरफ ही देख रहा था और सुझाव के लिए।

अन्त में भीमा की विवशता देखता हुआ रण छोड़ बोला : 'भीमा ! तुझे अभी स्त्रियों का तिलमात्र भी अनुभव नहीं है। इन्हें प्यार से रखोतो ये सिरपर गोवर थापने लगती हैं, और डाटते पीटते रहो तो पति को हँसाने की चेष्टा करती हैं। अच्छा मैं अपनी सम्मति कहता हूँ, माने तो अच्छी बात हैं। एक वात मैं भी तेरी माने लेता हूँ।,

'कौन सी बात ?'

'चन्दा के ऊपर तेरा प्रेम हो तो देवा काका को मैं समझा लूँगा. बस न !,

'किस की बात कहते हो तुम ! मैं समझा नहीं ? रण छोड़ ने आगे कहा : देवा काका कहते थे न 'चन्दा मेरे घरमें झाँक भी नहीं सकती; लेकिन तेरा विचार हो तो मैं उन्हें चन्दा के बारे में समझा दूँगा। लेकिन तभी, जब तू दूसरा ब्याह कर ले। उसे भी तो पता पड़ना चाहिए कि यह होता है सेर के ऊपर सवा सेर। दूसरा ब्याह करने के बाद वह यदि दूसरा घर बसाने की बातें करेगी तो जात के नियमानुसार उसे बाँधकर भले ही लाना पड़े,सब देख लिया जाएगा। इस लिए बिना दूसरा ब्याह किये ये बातें नहीं हो सकतीं।'

यह वात सुनकर तो भीमा पसीना पसीना हो गया। उसके मुँह से निकल

पड़ा : 'दूसरे ब्याह की तो बात है, ब्याह करने के बाद चन्दा को मैं कौन सा मुँह बताऊँगा ।'

रण छोड़ ने भीमा का भाव जानते हुए कहा: 'हाँ गले में बात नहीं उतरी न ?'

'उतरने लायक हो तो उतरे न ?'

'तू बात कहे तो मेरे मनमें भी बात बैठे । लेकिन तू तो कुछ कहता ही नहीं ठीक जैसा ।'

'रण छोड़ ! कितनी बार कहूँ । मैंने मन की बात तो कह दी है तुझे ! अब तेरी मर्जी है, मेरा काम कर या न कर । तू जानता तो है ही कि मेरे लिए और कोई द्वार नहीं है बातें करने का !'

'भीमा ! मैंने कब ना कहा है, बातों के लिए !'

'ना तो नहीं किया पर यह भी कोई ढंग है ?'

'जब मैंने कह दिया है कि मैं चन्दा को नहीं बुलाऊंगा तो फिर दूसरे ब्याह की बात बीच में क्यों लायी जाती है ?'

'अच्छा भीमा! सच्ची बात सुननी हो तो सुन ले । मुझे तो आज तक प्रेम का अनुभव नहीं है, रिस लगाने की बात मैं नहीं जानता, लेकिन जहाँ तक चन्दा के न लाने का और ब्याह न करने का प्रश्न, वह मेरी समझ में कतई नहीं आता ।' तू ब्याह करने की बात मान ले तो दूसरी बात चन्दा की तो मैं फिर देख लूंगा । इस लिए तू हाँ करे तो काम बन जायेगा अन्यथा नहीं । मैं किस मुँह से कहूँगा चाचा से भीमा ?'

'रण छोड़ भैय्या ! तू कह कर के देख ?'

'किन्तु मैं कैसे कह सकता हूँ भीमा ?'

'हाँ हाँ कह देखना, न मानेंगे तो कम से कम तेरा दोष तो न रहेगा ?'

'परन्तु भीमा ! मैं ऐसी मूर्खता की बात कैसे कह सकता हूँ ?'

'लेकिन मैं कह तो रहा हूँ कि उसे नहीं बुलाऊँगा ?'

'नहीं, भीमा ! जब तक तू ब्याह करने का वचन नहीं देगा, तब तक मैं देवा चाचा से एक शब्द भी नहीं कहूँगा ।'

इस उत्तर से भीमा की रही सही हिम्मत चूर-चूर हो गयी थी। उसे लगा कि अब तो दूसरा विरोध सहना पड़ेगा। पहले तो बाप ही चन्दा के विरोध में है, तिस पर भी उन्हें रण छोड़ का सहयोग है।

तो क्या बुढ़ापे में माँ बाप छोड़ दूँ, चन्दा के लिए। यही तो समय होता है माँ बाप की सेवा करने का ?

आखिर चन्दा ने ही तो मूर्खता की है। किसी का क्या दोष है ? भले ही मेरा मन न मानता हो, तो भी माँ बाप के लिए विवाह करही लेना चाहिए। भीमा का मन कह रहा था: 'भगवान् ही जाने क्या होनेवाला है ?'

★

:१६:

हृदय की साक्षी

चन्दा को बराबर गुरुवार को सात दिन हुए थे कि उसी दिन भीमा ने दूसरा ब्याह करवा लिया ।

चन्दा चुपचाप पीहर आई तो उसके माँ बाप रयजी और किशन को उसके व्यवहार से कोई सन्तोष न हुआ था । उन्हें लगा कि कुछ न कुछ दाल में काला है ।

किन्तु चन्दा के भाई भावा ने स्पष्टतया पक्ष लेते हुए कहा :

'क्या हो गया जो आ गयी तो ! अपना घर है; इच्छा हुई होगी तो आ गयी । दो चार दिन रहकर चली जाएगी ।'

लेकिन वह अब जाती ही कैसे ! वहाँ तो उसका रास्ता ही बन्द हो गया था । इस समाचार से रयजी आपे से बाहर हो गया, उसे बड़ा गुस्सा चढ़ा था, किन्तु ठीक समय पर उसमें कुछ बुद्धि जाग गयी और कोई दुर्घटना होने से टल गयी । किसन नाराज भी होती थी तो भी रयजी उसे चुप कररहा था ।

चन्दा का सारा गुस्सा किसन ने रयजी के ऊपर निकाला, वह लम्बे हाथ करते बोली :

'हाँ मैं खूब जानती हूँ, तुम्हीं ने तो इसे सिरपर चढ़ाकर गला कटवाया है ।' गुस्से के मारे वह आगे कुछ भी न बोल सकी । फिर भावा के ऊपर रहा सहा क्रोध झाड़ती हुई वह बोली :

'तूने यदि उस दिन सहारा न दिया होता तो आज यह दुर्दिन देखने को न मिलता ! मैं तो इसका डिग देखकर समझ गयी थी कि यह बिना नयी पुरानी किए आनेवाली थोड़े है । किन्तु मेरी बात कोई सुने तब न ? मैं तो घर में कुत्ती जो हूँ ।'

रयजी बोला : अच्छा रहने दे न व्यर्थ की बकबाद ?' किसन ने अपना ऊँचा हाथ नीचे करते हुए कहा : मेरी तो सारी बातें बकवाद हैं,

किन्तु मैं ही जानती हूँ कि मेरी एक भी बात आजतक झूठी न हुई। हुई हो तो मेरा सिर और तुम्हारी जूती ! मैंने तो पहले ही कह दिया था कि चन्दा को ब्याह की क्या तमीज ? यह काम तो जबतक हम हैं हमारा है। लेकिन हुआ कुछ असर तुम पर, उलटा छोकरी का पक्ष लेकर मुझे ही डाटा धमकाया। फिर यही हुआ न अपनी जात के नियमानुसार ब्याह हुआ और हमारा कुछ समय तो हुक्का पानी बन्द रहा जब जात का दण्ड तथा भोजन दे दिया, तो फिर मिल पाए।'

बोलती बोलती किसन थक गई थी, किन्तु रयजी कुछ न बोला। वह तो उसका स्वभाव जानता ही था कि कुछ भी कहा और इसकी घड़ी का अलार्म बजा।

वह फिर बोलने लगी : 'लड़की का क्या है ? उसे मानापमान, मार, प्यार, कड़वा, मीठा, सब कुछ सहना ही पड़ता है। भला अपना घर भी छोड़ा जाता होगा ? घर छोड़े तो फिर घर कैसे बन सकता है ?'

रयजी की ओर देखकर फिर तेजी में आयी : 'इसमें उसका क्या दोष है ? उसने किसी का खाया है जो दवाब में बैठा रहेगा। जब घरवाली लड़कर अपनी इच्छा से पीहर चली जाए तो ठीक ही किया उसने जो ब्याह कर लिया इसमें उसकी भी मान हानि थी जो ब्याह न करता तो ? यह तो दया समझो उसकी, जो विना कुछ किए सही सलामत आने दिया।

'हाँ हाँ ठीक है, इतनी कसर माँ तू पूरी करादे !' चन्दा आवेश में आकर बीच में ही बोल पड़ी।

किशन आपे से बाहर होती हुई बोली : 'ओ हो ! महारानी से कुछ कहें भी नहीं, बड़ा बढ़िया काम करके आयी है न ?'

'अच्छा माँ ! अधिक कहने की कोई आवश्यकता नहीं है, मैं अपना पाप स्वयं भोगलूँगी, किसी को क्या पड़ी है ?'

'सुनते नही हो, छोकरी सामने सामने कितना बोल रही है ! हे राम ! मौत भी तो नहीं आती, कहाँ जाऊँ अब ? इसने तो दो ही दिन में खून पी लिया है।'

'तो माँ ! तू यही चाहती है कि मैं यहाँ न रहूँ, कह दे न ! नहीं रहूँगी,

कतई नहीं रहूँगी ? जिसने पैदा किया है, वह खाने को भी देगा। लेकिन कोई भी क्यों न हो, मैं किसी मी अन्यायीब ातें तिलभर भी स्वीकृत नहीं कर सकूँगी।'

बात आगे बढ़ती देखकर रयजी बीच में बोल उठा: 'किशन ! क्यों नाक कटवाने बैठी है ! क्या होगा इस लड़ाई झगड़े से जो होना था सो हो गया, अब स्वयं को सँभाल कर बातें कर सब ठीक हो जायेगा। जग हँसाई से क्या लाभ ?'

किशन को बहुत दिनों के बाद आज फिर से रयजी को समझाने का समय मिला था। कह सोच रही थी: 'जो आदमी छोटी छोटी बातों पर भी अपना मान गवाँ बैठता हो ? सजीव तो सजीव, जड़ पर भी अपने क्रोध को निकालना न भूलता हो, बह अपनी लड़की चन्दा के सामने विना चूँ चपर के ही कैसे रह जाता है ? मेरी बात तो दूर रही, किन्तु अपने एक मात्र पुत्र भावा को भी नही छोड़ता. छोटी छोटी बातों पर विना डाटे फटकारे मारे पीटे ! वे बेचारी दोनों बड़ी लड़की जब कभी अपनी सुसराल से यहाँ आती हैं तो उन्हें भी कुछ न कुछ तो कहना ही है ! लेकिन सबके ऊपर क्रोध करने वाला चन्दा के सामने भीगी बिल्ली क्यों बन जाता है ?' इन्हीं विचारों में किशन खो गयी थी।

चन्दा के लिए क्या नहीं सहा उसके बापने, सगाई तोड़ी, भीमा से विवाह होने के पूर्व तक जात विरादरी की तीखी टीकाएँ सहीं, दण्ड सहा, और न जाने अब आगे क्या करो की नौबत सहनी पड़ेगी ?

चन्दा अपनी सुसराल छोड़कर गुस्से में आ गयी, अभी तो कोई बात नहीं थी, उसने भी अपमान का बदला लेने के लिए दूसरा ब्याह कर लिया, लेकिन इससे मुसीबत बढ़ ही तो गयी, चन्दा के लिए उस घर के द्वार सदा के लिए बन्द तो हो ही गए किन्तु इसकी तो जिन्दगी खतम हो गयी। भला जात विरादरी के पञ्च चन्दा को भीमा से परित्याग कैसे दिला सकेंगे ! दोष तो इसी का है न ? बेचारी किसी तरफ की न रही। तो भी रयजी उसी का पक्ष लेता था तो किशन सिवाय खीजने के और क्या कर सकती थी ?

यह सोचते ही किशन फिर से बड़बड़ाई: 'मेरी समझ में यह नहीं आता कि तुम इसके कहने पर खन्दक खाई में भी गिरने को कैसे तय्यार हो जाते हो ? इसमें ऐसे कौन से लाल लटक रहे हैं, जो तुम्हें कुछ सूझता ही नहीं है।'

रयजी भी कभी कभी विचार करता था : 'चन्दा में ऐसी कौन सी बात है जो मेरी बोलती बन्द हो जाती है, मुझे मौन आ दबाता है ! सबसे छोटी है तो क्या हुआ, दुनिया में कौन मानता है आँखें मीचे !' परन्तु पूर्व संस्कारों के सामने मानव का विज्ञान शास्त्र कमजोर पड़ जाता है और उसकी गुत्थियाँ ज्यों की त्यों उलझी की उलझी रह जाती हैं।

यह बात तो नही थी कि रयजी को चन्दा का यह व्यवहार अच्छा लगा था। उसने तो चन्दा के आने के बाद ही उससे आने का कारण पूछा था किन्तु उसनें कुछ न बताया। परन्तु रयजी के मन को शान्ति न थी।

अगले ही दिन की बात है कि दोनों बाप-बेटी खेत में काम कर रहे थे, तो रयजी ने फिर वही बात छेड़ी।

चन्दा को लगा कि अब तो विना बात बताए छुटकारा नही तो वह अन्त में बोली : 'पिता जी ! मान लो मैं लड़कर ही आयी हूँ, इसका अर्थ यह तो नही है कि तुम भी मुझे घर से निकाल दो ?'

रयजी ने स्नेहार्द्र हो कर कहा: 'बिटिया ! तू जानती तो है कि मुझे तेरे प्रति कितना लाड़ है, मुझे तो पूर्ण विश्वास है कि तू सच्ची है, किन्तु कल तो देख लिया न तूने तेरी माँ कितना लड़ रही थी !'

चन्दा ने तो झट से अन्तिम बात मुखसे निकाल कर कहा : 'पिताजी ! क्या हुआ तो, माँ ज्यादा यही कर सकती है कि मुझे अपने घर से निकाल दे बस न !

किन्तु रयजी की लाल आँखों में आज आँसुओं की बूँदे छलकने लगी थीं। उसका कलेजा मुँह को आ रहा था। उसे लगा कि बेचारी चन्दा का और आसरा ही कहाँ है जो हम उसे दुत्कारें। वहतो हमारी काली गाय है।

चन्दा ने पिता के अश्रुपूर्ण नयनों में अपना भावी झाँक लिया था, उसके रोम रोम में पितृवात्सल्य के लिए अमन्द श्रद्धा उत्पन्न हो रही थी। उसकी सिहनी सी आँखों में दुर्बलता की प्रतिमा बढ़ रही थी, वह अपने को न रोक सकी और बाप की गोदी में सिर रखकर घिघियाती बोली : 'क्यों पिताजी ! तुम तो मेरे साथ ही रहोगे न ?'

'अरी पगली ! क्या हो गया है तुझे ? भला मैं अपनी फूलसी लड़की को

प्राण रहते अलग कर सकता हूँ, छी : बेटा ! ऐसा सोचकर रोंया क्यों दुखाती है ?' इतना कहते ही रयजी की आँखों से टप्प पप्ट आँसू गिर पड़े थे चन्दा के बालों पर ।

चन्दा को पिता के आँसुओं से डर लग गया, वह गोदी से हट गयी, और बोली : 'क्षमा करना पिताजी ! मुझसे गलती हो गयी है कहने में । मेरे लिए आप घर न छोड़ें, मै अभागिन अपनी समस्या स्वयं ही सँभाल लूँगी हाँ !'

रयजी ने चन्दा को वात्सल्य से हाथ पकड़ कर पास में खींचते हुए कहा: 'रानी बेटी ! तू भी क्या सोचने लगी मेरी आँखें तो देख ! सबको छोड़ना पड़े तो मंजूर हो किन्तु चन्दा बेटी...।

'नहीं, नहीं, पिताजी ! मेरे लिए घर का सत्यानाश करना ठीक नहीं है। माँ जो कहती है, ठीक कहती है । मेरा दाता बेली है, मै मैं एकाकी...।

'मेरी चन्दा बिटिया ? तू जानती तो है कि मै तुझे कितना प्यार करता हूँ, भले ही कुछ हो जाय परन्तु मै तुझे अपनी आँखों से इस अवस्था में दूर नही होने दूँगा । मेरे पास पिता का हृदय है समझी न ? खबरदार ! जो आगे से अपने को एकाकी समझा तो !' इतना कहकर रयजी गंभीरता में खो गया ।

इन विचारों की प्रतिच्छाया रयजी के मुख पर स्पष्ट दीख रही थी। सब को रयजी का चेहरा देखदेख कर भय लग रहा था अतः छः दिन तक इस बारे में किसी ने कोई बात न की । किन्तु सातवें दिन भीमा के विवाह समाचार से दबा हुआ किशन का क्रोध उबल पड़ा । रयजी को भी इस बात में चन्दा दूषित लगी अतः उसने भी किशन और चन्दा के बीच में कुछ न कहा । किन्तु जब अति हो गयी तो रयजी को बीच में बोलना ही पड़ा । किशन को पुरानी पक्षपात की बात याद आ गयी, वह फुफकार कर बोली : 'मुझे तो होता है कि तुम चन्दा का पक्ष क्यों लेते हो, किन्तु बहुत दिनों के बाद आज यह बात समझ में आ गयी है कि चन्दा को बिगाड़ने में तुम्हारा हाथ सबसे आगे है । नहीं तो क्या मजाल जो लड़की एक भी बात कह दे माँ को ! मैं तो कलमुँही हूँ बोलने में महान् कठिन है सत्य, किन्तु सत्य के अभ्यास के बाद तो सत्य कहने में बड़ा आनन्द आने लगता है । ठीक है बेटी के पक्ष में बाप हो तो किसी से डरने की क्या बात

है ? लेकिन कहे देती हूँ, मेरा कहा होता है सोलह आने ठीक ठीक। तब पता पड़ेगा, जब परित्याग लेने जाओगे ! और परित्याग हो भी जाए तो कौन है ऐसा जो इस मुसीबत को अपने घर ले जायेगा ?'

अब चन्दा का धैर्य जाता रहा। वह रिसिया कर बोली: 'अधिक कहने की क्या आवश्यकता है ? मैं तुम्हें किसी ढंग का कष्ट नहीं दूँगी ? मैं किसी के ऊपर बोझा नहीं रहूँगी, और यदि तुम्हारी धारणा हो कि मैं परित्याग लेकर दूसरा करलूँगी तो इस भूल में मत रहना। चन्दा अपने प्रण की पक्की है। मैं यहाँ तुम्हारे भरोसे नहीं हूँ, समझ गयी न ?'

रयजी नहीं चाहता था कि बात यहाँ तक बढ़े, वह कड़ककर बोला: 'क्यों री छोकरी ! तेरा दिमाग खराब हो गया है ? चुप नही रहेगी, बताऊँ फिर तुझे !'

चन्दा को अपने बाप के स्वभाव का पता था, वह बोलना तो बहुत चाहती थी, किन्तु बोली नहीं बाप के डर से।

किशन भी क्रोध के मारे न जाने क्या क्या अनाप शनाप बोलने जा रही थी, किन्तु : 'क्यों तेरे दिमाग में कीड़े पड़ गए हैं' बात सुनते ही उसका क्रोध शान्त हो गया।

रात के सुनसान में सारी प्रकृति गंभीर निद्रा में सो रही थी, रयजी का घर भी नींद की गोद में विश्राम कर रहा था। किन्तु किशन की आँखों में नींद का कहीं पता भी न था। वह दिन की बातों से परेशान थी, उससे रहा न गया तो वह रयजी को जगाते हुए बोली : 'तुम आराम से नींद ले रहे हो, किन्तु मेरी तो जान ही निकली जा रही है।'

'जान निकली जा रही है तो, बोल कैसे रही है ?' रयजी ने ताना मारते हुए कहा।

'हाँ कोई बात नहीं है, अभी मुझमें साँस शेष है, विधना ने चाहा तो तुम्हारी इच्छा भी पूरी हो जायेगी।'

'हैं, हैं, क्यों पाप लगा रही है ? मैंने तो तेरी ही बात दुहरायी है ? कौन सा मैंने तेरा कोई मार दिया है ?, रयजी ने हँसते हँसते किशन का हाथ पकड़ते हुए कहा।

'रहने भी तो इन बातों को ? मुझे तो लगता है कि न जाने तुम यह क्या कराने बैठे हो ?'

'क्यों क्या करने बैठा हूँ ?' जैसे कुछ जानता ही न हो, ऐसे रयजी ने पूछा।

'अन्त में मेरी योन क्यों बिगाड़ रहे हो, अब जीवन के शेष दिन हैं ही कितने ?' लग रहा था कि किशन के रोम रोम से यही ध्वनि प्रतिध्वनित हो रही थी।

'तू मर रही है कब ? देखना विना कहे मर जाना।' जाने रयजी से ये बातें कौन कहला रहा था ?

'मरना न भी होगा तो तुम्हारे लिए मरना ही पड़ेगा।'

'क्यों इतनी तंग हो गयी है ?'

'तुम्हें क्या पता ? तुम्हें तो बिटिया के सिवाय और किसी का ध्यान ही कहाँ है ? लोग-बाग मनभाती बातें उड़ा रहे हैं। फुर्सत हो तो तब न सुनो ये बातें तुम ! परन्तु हमें किसी की बात की चिन्ता तो नहीं है, तो भी यदि चतुराई से काम करें तो क्या हानि है ?'

'क्या कहते हैं लोग ?'

'क्या करोगे बुरी बातें सुनकर ?'

'किशन ! परस्पर छिपाने से क्या लाभ है ?

'और मरों के पास बात ही क्या होती ? किसना ने फिर भी बात न बताई।

रयजी को बड़ी झूँझल उठ रही थी।

'लोग कहते हैं कि यह भाग-वाग के तो नहीं आयी, किन्तु निकाली गयी है। भीमा ने इसे दूसरे के साथ देखा है अतः तुरत ही निकाल दिया है।'

किशन इतना कहकर रुकी लेकिन रयजी ने सुनकर कुछ न कहा, वह आगे बोलती ही गई: 'और दुर्जन इतने से शान्त न रहे, यह भी उड़ाई कि उसके तो पेट है दूसरे का ?'

'हैं ? कौन कहता है, कौन है ऐसा ?'

व्याकुल होते हुए रयजी को शान्त करती हुई किशन बोली : 'तभी तो यह सब सुनकर मुझे बुरा लगता है। यह ऐसे लड़कर न आयी हो तो कोई क्या बात

करता ? भले ही हम उसका पालन-पोषण करें, तो भी लड़की की शोभा तो उसी के घर में है !'

'देख किशन ! 'उसका कंधा पकड़कर अपनी खाट पर बिठाता हुआ रयजी बोला : 'लोग भलेही कुछ भी कहें, तो भी....।'

'यह तो मुझे भी विश्वास है कि चन्दा ऐसा कर ही नहीं सकती ! लेकिन मुझे तो यह बुरा लगता है, माँ-बाप को छोड़कर और कोई ऐसा मिजाज क्यों सहेगा ? यही देख लो, रिसा कर इसे क्या मिल गया ? वह तो दूसरी ले आया, उसे किसी बात का डर था ? और इसका तो जन्म ही बिगड़ गया है ? क्या होगा अब इसका ?'

किशन को प्रेम से समझाते हुए रयजी बोला : 'सच्ची बात तो यह है कि मैं उसका पक्ष थोड़े लेता हूँ, जिसका जो स्वभाव पड़ गया है, वह बदलता नहीं है, और तू तो जानती है कि वह गर्दन भले ही चले जाय पर हठ छोड़नेवाली कहाँ है। वह बड़ी हो तो भी अपने लिए तो बच्ची की बच्ची है। भगवान ने एक तो उसे वैसे ही तेज तर्रार स्वभाव दिया है, और ऊपर से तू और मैं भी उसे खाने दौड़ें तो वह कितने दिन जी सकती है ! यह भी तो नहीं है कि उसे डरा धमका कर कुछ करा लें। यह तो मरने की बात होगी, जो हमारे जीते जी हमारी लड़की अलग रहकर मेहनत मज़दूरी कर के पेट पाले !'

रयजी की शीतल प्रेमयुक्त बातों ने किशन के क्रोध को शान्त कर दिया, और वह चुपचाप सुनती रही।

'अच्छा किशन ! एक बात और कहता हूँ, चन्दा भले ही स्वभाव की तेज तर्रार हो, लेकिन सदाचार के बारे में उसे कोई पा भी नहीं सकता ! वह ऐसा कोई कार्य नहीं कर सकती जिससे उसके माँ बाप को नीचा देखना पड़े। उसके मुख पर सत्यता फूट रही है।'

रयजी के मनोविज्ञान की बातें वही जाने अभ्यास से थीं या पुत्री स्नेह से !

किशन अब सर्वथा शान्त हो चुकी थी। उसके मन में चन्दा के प्रति पुत्री प्रेम उमड़ा जा रहा था। वह विभोर होती हुई बोली : 'मैं कब कहती हूँ उसे अलग रखने को।'

'किशन ! तू जानती तो है कि संसार में स्वभाव ज्ञान एवं तपस्या से भी नहीं बदलते। बड़े बड़े ऋषि मुनियों का जीवन इस बात का साक्षी है। जब सुख दुःख दोनों में उसे सँभालना है, तो आराम से, शान्ति से सँभालें क्या होता है ?'

'लेकिन वह अब क्या करना चाहती है ?'

'वह तो कहती है कि न तो मैं दूसरा ब्याह करूँ, नहीं उसके घर ही जाऊँ?'

'किन्तु स्त्री इतना स्वाभिमान रख कर जी सकती है ?'

'सम्भव हो या न हो, पर करे भी क्या उसका स्वभाव जो ठहरा ?'

'आगे कैसे निभेगी।'

'निभेगी क्या, अपना खून है तो रहेगी अपने ही साथ में और क्या होगा ?'

बस इतनी बातों के बाद किशन का मातृ हृदय वात्सल्य से आप्लावित हो उठा, और उसने सारी बातें मानलीं।

उस रात चन्दा का हृदय भी भीमा के प्रति तरह तरह के विचार कर रहा था। भीमा ने दूसरा ब्याह कर लिया है। यह तो चन्द्र और सूर्य की साक्षी में हो ही चुका है, तो भी लाख लाख बार सोचने पर भी चन्दा का बिका हुआ मन नहीं मानता था कि उसका भीमा उसे छोड़ कर त्रिकाल में भी हृदय से ब्याह कर सकता है। भले ही लोग कुछ भी कहें। अनेक संकल्प विकल्पों के बाद भी उसका मन अपने जीवनधन के प्रति अविश्वास न ला सका।

अन्त में सारी शंकाओं को निर्मूल करता हुआ एक प्रबल विचार आकर टकराया। उसने भले ही दुनिया के मारे या घरवालों के सिखाये ब्याह भी कर लिया तो भी भीमा का हृदय तो उसी का है।

'पगली ! तुझे क्या मालूम है कि हृदय तेरा ही है ?' मन ने प्रश्न किया।

चन्दा के हृदय ने साक्षी देते हुए कहा : 'मेरा हृदय ही इस बात का साक्षी है।' इसके बाद उसे कुछ शान्ति मिल पायी।

★

: १७ :

नई गृहस्थी

रणछोड़ से भीमा बात करके घर लौट आया था। परन्तु उसने इस विषय में किसी से कोई बात न की। देवा को भी विश्वास न था कि भीमा विना आनाकानी के दूसरा ब्याह कर लेगा। किन्तु देवाने निश्चय कर लिया था कि भीमा भले ही धरती और आसमान एक कर ले, तो भी वह विना दूसरा ब्याह कराये नहीं मानेगा ? पर धरती और आसमान की बात तो कोसों दूर रही, वह तो चार वर्ष के बच्चे के समान विना कुछ कहे ब्याह के लिए तैयार निकला। या यों कहें कि उसने निज मनोभावना को विना बताये जताये मौन पथ आलम्बन ही श्रेष्ठ समझा।

तीन दिन पहले की ही तो बात है, जब देवा ब्याह निश्चित करके आया था तो कंकू को पूरापूरा विश्वास हो गया था कि अब बाप बेटे में संघर्ष पैदा हुए विना न रहेगा। और कंकू की यह विरोध भावना सारे गाँव में फैल गयी। लोग बाग बड़ी उत्सुकता से दोनों की संघर्ष वेला देखते रहे, किन्तु ऐसा अवसर ही न आया। भीमा ने तो शायद मुह ही सिल लिया था, इस सम्बन्ध में।

देवा के मन में और ही कल्पना उड़ रही थी। कहीं भीमा सब को चकमा देकर अन्तिम समय में छटक न जाये, और इसी विचार से भीमा के ऊपर सतर्क दृष्टि रखता रहा। दो दिन तो योंही बीत गये किन्तु भीमा के बर्ताव में कोई शंका की बात न दीखी। अब एक ही दिन बीच में रह गया था।

भीमा भले ही न बोलता चालता हो, अपने मन की बात, तो भी उसके मन की बातें चेहरे पर स्पष्ट तम अंकित थीं। उसका चेहरा साफ साफ उतरा हुआ था, और आँखों की पुतलियाँ अन्दर धँस गयी थीं। वह दो चार दिनों में ही इतना थक गया था कि जहाँ भी बैठता, मालूम होता था किसी ने कोई गठरी पटक दी हो। कहने का मतलब यह था कि भीमा का अंग प्रत्यंग चन्दा के वियोग एवं नये विवाह के संयोग से टूट गया था। बाहर से शरीर शेष होने पर भी अन्दर की आत्मा जैसी कोई चीज शेष न थी।

परन्तु क्या देवा की पुरानी आँखें यह सब नहीं देख रही थीं ? दूसरे ब्याह की उमंग तो देवा की भी भीमा को देखते ही छिप जाती थी। देवा को प्रेम का तो क्या पता ? लेकिन रणछोड़ की कही बात को वह ध्यान से सुन चुका था, अस्तु यह बात तो ठीक है कि भीमा चन्दा को नहीं बुलायेगा, पर यह भी क्या कि दूसरा ब्याह भी नहीं करना चाहता ? परन्तु इन दो चार दिनों में ही देवा को प्रीत की रीत समझ में आ गयी थी। तो भी देवा झूठी अहम्मन्यता के चक्कर में आकर सब कुछ भूल गया था। अभिमान तो बड़े बड़ों को प्रमत्त बना देता है तो देवा की तो हस्ती ही क्या थी ?

तो भी उसने सोचा था, मगर अब समय ही कहाँ था, एक ही दिन तो था बीच में। एक ओर देवा को चन्दा का स्वाभिमानी मुख उत्तेजित करता था तो दूसरी ओर भीमा का लटका मुख दूसरे विवाह का विरोधी बना रहा था।

वह पर वश सा सारी तैय्यारियाँ कर तो रहा था किन्तु आत्मा उसे काट रहा था। कभी तो उसे भीमा के भी ऊपर खीज आती थी, गधे को एक बार तो ना करना था ? और स्वयं को भी वह दोषी मानने लगता था कि उसने ना किया था परन्तु मैंने ही न माना। मेरी ही बुद्धि भ्रष्ट हो गयी थी।

अब तो बात दूर निकल चुकी थी, 'अब पछताये होत क्या चिड़िया चुग गयी खेत।' अन्ततः वह समय आ गया, दोनों में से एक ने भी ब्याह के बारे में कुछ न कहा। कंकू तो स्त्रियोचित स्वभावानुसार इस घटना को देख रही थी, उसे लगा कि यह सारा काम निर्विघ्न शान्त हो रहा है, बड़ी अच्छी बात है। इसी लिए उसने देवा से कहा : 'मुझे तो लग रहा था कि वह मानेगा नहीं, लेकिन वह तो ऐसा चुप रहा जैसे बिल्कुल तैय्यार ही रहा हो।'

अन्दर ही अन्दर कंकू की बात सुनकर देवा बड़बड़ाता रहा : 'ठीक है कंकू ? हमे क्या मालूम उसके मन की ? अरी तू मनुष्य नहीं है क्या ? देखती नहीं है उसकी शक्ल सूरत ? 'कोई क्या जाने पीरपराई ?'

'तुम्हें तो सदा यही भ्रम शंका सताये रहती हैं, तो भी बेचारे ने तुम्हारी बात चुपचाप मान ली है, फिर भी शंका है, इसका क्या कोई इलाज है ?

'अच्छा ! कंकू ! छोड़ दे इन बातों को। तुझे मेरी बात में शंका हो तो उसका मुख देख लिया होता।'

'हाँ।'

'परन्तु मुख देखने की बात ही क्या है? ऐसा तो हो ही जाया करता है?'

'तू चाहे मन गढ़न्त मान ले, किन्तु मैं तो ऐसा नहीं मानता?'

'क्यों?'

'उस का मुख ही इस बात का साक्षी है कि वह सर्वथा इस विवाह का विरोधी है।'

'अब विरोध से क्या बनता है? शाम तक वान भी हो जाएगी, व्यर्थ में शंका करने से क्या लाभ है?'

'अच्छा देख लेना कंकू?'

और वस्तुतः देवा की शंका ठीक निकली। भीमा ने 'काटे खटमल और मार पड़े खाट पर' की बात ही करके दिखादी। बाप बेटों की रस्साकस्सी में बेचारी दुखियारी अम्बा का सर्वनाश हो गया।

भीमा ने रणछोड़ से हुई बातचीत के बाद नयी दिशा पकड़ ली। वह बोला: 'भले ही हठवश बाप न माने और मैं भी अपनी स्थिति को न पलटूँ, तो भी एक दूसरा उपाय भी तो है न? दूसरे ब्याह होने से तो काम नहीं चलता! मैं जब उसे स्वीकार करूँगा तभी न?'

किसी को भी भीमा के इन भयंकर विचारों का कतई पता न चला।

अपने भावी शिशु की इच्छा को दबाने वाला भीमा जब नौ मासकी एक लड़की का धर्म पिता बनता है तो उसकी आँखों के सामने भविष्य की धुँधली छाया चमक उठी।

अम्बा तो पहले सप्ताह में ही भीमा की मनोदशा को समझ चुकी थी। उसकी तो सुहागरात ही रिक्त गयी थी। भीमा पहली रात ही घर सोने न आया था।

और जो बातें देवा को अभी तक समझ में न आयी थीं वह समझ में आगयीं। कंकू को अभी कुछ आशा की रेखा दीख रही थी। उसने सबेरे भीमा के आते ही प्रश्न किया! 'रात में सोने नहीं आया था क्यों?'

'क्या करता आकर?' अनिच्छापूर्वक भीमा ने टका सा जबाब दिया।

अम्बा चूल्हे आगे बैठी बैठी भीमा की तरफ रह रह कर देखती रही। और वह छोटी नौ मासकी लड़की भी जाने भीमा से पुरानी जान पहचान हो, ऐसे घुटने के बल चल कर उसके पास आ रही थी।

भीमा ने जैसे ही उसकी तरफ देखा तो वह ऊँचे हाथ उठा कर खिल-खिला कर हँस पड़ी। किन्तु भीमा से यह न देखा गया। वह तो क्रोध में आग बबूला हो रहा था और उसी में पैर पछाड़ता हुआ बाहर चला गया, पर बेचारी अम्बा का मन मसलता हुआ।

राम रे ! अम्बा के ऊपर तो बिजली गिरी होती तो कहीं अच्छा होता। बेचारी ने कितनी उमंगों में भर कर नया घर बसाया था। पहले घर की रोमाञ्चक बातों से तो वह सर्वथा ऊब ही गयी थी। उसे लगा था कि यह नया पति शायद उसके जीवन को सुख दे सके ! किन्तु सब किया कराया मिट्टी में मिल गया !

उसे अपने गत जीवन की रोंगटे खड़े करनेवाली बातें याद आ रही थीं। वह छोटी बच्ची थी कि उसका ब्याह गोद में फेरा कराकर हो गया था। वह अपने पति गोकुल को पाँचवे वर्ष से ही पहचानने लगी थी। वह अम्बा से दस बारह वर्ष बड़ा था। अतः जब गोकुल उसके घर आता तो इसे डर लगा करता था।

अम्बा ग्यारह साल की हो चुकी थी, और अपनी सुसराल पहले-पहल गयी तो उन दस दिनों में तो गोकुल ने इसे तीन चार बार हाथ पैर बाँधकर मारा था। माँ ने उसे कितनी ही बार समझाया था : 'अरे नालायक कपूत ! बेचारी के हाथ पैर टूट जाएँगे ! क्यों नालायकी पर कमर कस रखी है ? इस बात से तो वह और भी अधिक मारा करता था।

शायद पाठक पूछेंगे कि, वह मारता क्यों था ? गोकुल बचपन से ही शरारती था। उसके साथीदार भी ऐसे ही उचक्के लफंगे ! उन साथियों से जब कभी इस की लड़ाई होती तो यह उन्हें विना हाथ पैर तोड़े छोड़ता थोड़े था। बचपन से ही इसमें हिंस्रता बढ़ी थी। किसी के दाँत, किसी की नाक, किसी का हाथ तो किसी की टाँग, कहने का भाव यह था कि यह बिना किसी को सताये प्रसन्न ही

न होता था। स्कूल में भी पढ़ता था तो मास्टर के ही माथे में स्लेट मारकर गड्ढा कर दिया था, माँ बाप पर भी हाथ साफ किया था इसने ! घर में जो कुछ भी मिलता, वर्तन भाँडे, खाट्,-वाट्, फटे पुराने नए नकोर सभी लेकर नौ दो ग्यारह हो जाता था। और गालियों का तो अवतार ही बन गया था।

लोगों ने तो तभी कह दिया था कि यह विना मौत के मारे नहीं रहेगा ?

और इसी बीच में जब पहले पहल अम्बा सुसराल में गयी थी तो गोकुल तीन मास की हवालात से छूटकर आया ही था।

बेचारी कल की दूध पीनेवाली अम्बा तो उससे इतना भयभीत और दुःखी बन गयी कि बात न पूछो। फिर तो अपने पीहर आकर उसने अनेक बुलावे पाकर भी चार साल तक वहाँ जाने का नाम भी न लिया !

किन्तु अन्त में लड़की को सुसराल ही में तो जाना पड़ता है। वह सुसराल में जाने लायक उमर की थी तो भी उसने उस दिन पीहर छोड़ते हुए जितना रुआराट मचाया था, वह उसके पूर्व अनुभवों का जीवित स्वरूप था।

तीन वर्ष तक गोकुल के साथ जिस कठिनाई में रहकर अम्बा ने जीवन बिताया, उसकी साक्षी तो उसका पीला ज़र्द मुख ही था। नाम को तो वह तरुणी थी, किन्तु सिवाय हड्डियों के ढाँचे के उस शरीर में कुछ था ही नहीं। प्रभु ही जाने वह किस की आशा पर जी रही थी। वस्तुतः मनुष्य अधिक भार से जीवित द्विपाद पशु बन जाता है। उसमें मानवता की स्फूर्ति और उल्लास नही होते, वह तो यन्त्रवत् स्वयं को चलाया करता है।

शराब के नशे में चूर-चूर गोकुल जब आता घरमें तो बेचारी अम्बा को खूब मारता, फिर नशे की मस्ती में ही बलात्कार करके हाथ पैरों से पकड़कर घर से बाहर पटक देता था।

स्वयं तो मेहनत मजदूरी नहीं कर पाता था, बेचारी वह जो कुछ भी नून तेल जुटाती तो यह अपने बद फैलों के लिए उससे पैसे कढ़ाता था। लेकिन बेचारी गैय्या सी दयनीय अम्बा उसकी खर्च की माँग कहाँ से पूरा करती ? उसकी नंगाई से तो माँ बाप भी अलग रहते थे पर वह अपढ़ भारतीय नारी कैसे अलग रहती ?'

इतने पर भी गोकुल को सन्तोष न था। उसके घर में बुरे से बुरे आदमी आते थे। उनकी बातें देखकर यदि भाग्य की मारी ने एकाध बात कहदी तो आयी बेचारी की शामत ! दोस्तों के सामने तो अपनी वीरता बताने में वह कोई कोर कसर नहीं रखता था। और कभी कभी तो उसे डाम भी देता था।

साथ ही गाँव में होते हुए कभी अम्बा से किसी गाँववाले का कार्य सम्बन्ध न था। अम्बा के साथ तो वही बोल सकता था, जिसे अपनी इज्जत आबरू की चिन्ता न हो, जो मानापमान आदि को ताक पर रख चुका हो।

अन्तिम दिनों में तो गोकुल पुलिस से बचने के लिए छिपता फिरता था, तब इस बेचारी के ऊपर जो अत्याचार पुलिस ने किए वे तो उन्हें ही शोभा देता है। यह बेचारी तो सर्वथा साधारण स्त्री थी, लेकिन पुलिस का अत्याचार तो बड़े बड़े संभ्रान्त व्यक्तियों को भी तरसा देते हैं। एक ओर तो बेचारी भारी पैरों थी, उसके ऊपर भी पुलिस की काली मार एवं जगह जगह भटकाना ! मार खाते खाते उसका शरीर नीला नीला हो गया था।

मगर मूर्ख ग्रामीणों को भी ज्ञात है कि सुख और दुख की कोई सीमा तो होती ही है। यही अम्बा भी सोचती थी। आखिरकार सरकार गोकुल को जीवित तो नहीं पर मृतावस्था में ही पकड़ सकी।

इस ढंग से बेचारी अम्बा ने अपने जीवन के तीन नरक के से साल पूरे किए और इसी अवधि में वह एक बच्चे की माँ और विधवा भी हो गयी।

आठ महीने तो उसके जैसे तैसे कट ही गये। नौंवे मास उसके हाथ फिर से पीले हुए तो उसे लगा कि उसका भाग्य पलटा खाने वाला है, दुःखों की बदली हठनेवाली है। किन्तु पहली ही रात उसका स्वप्नों का मीठा संसार टूट टूट गया, उसका सर्वस्व बनने भी न पाया था कि बिगड़ गया।

यद्यपि खाने पीने रहने सहने में तो अम्बा को किसी प्रकार का कोई दुःख न था, सास स्वसुर, छोटे देवर और ननद भी थे, अच्छा सा खुला घर भी था, लेकिन इन सबके होते हुए भी उसका मन चातक विना चन्द्रमा के मरा मरा था। आशा तो थी उसे चन्द्रमा की चारु चन्द्रिका की, आज नहीं कल, कल नहीं तो परसों वह उसके मन मन्दिर को चमकायेगा अवश्य !

किन्तु दिन पर दिन बीतते गये, कल परसों करते करते महीना पूरा हो गया, मगर भीमा ने बेचारी तलफती अम्बा को अपने सुखद स्पर्श से नहीं रिझाया। उसके मनकी तो मनमें रह गयी। हाँ इतने दिनों में भीमा में एक परिवर्तन तो अवश्य हुआ कि वह उस छोटी बच्ची से कुछ कुछ दब रहा था। वह बच्ची भीमा की ओर हाथ उठाकर बढ़ती तो भीमा किसी के छद्म संकेतों से चाहता हुआ भी बाहर चला जाता था।

उसे जाते देखकर बेचारी अम्बा का हृदय रो पड़ता था! हत्त तेरे की, निष्ठुर! बेचारी छोटी बच्ची से भी बदला?

जब कभी दोनों की आँखें एक हो जातीं तो भीमा की आँखें अपनी विवशता बता देती थीं: 'क्या करूँ अम्बा! लाचार हूँ, तूने या तेरी नन्ही मुन्नी ने मेरा कुछ विगाड़ा नही पर...पर....।

सारा गाँव सो जाता था किन्तु दुखिया अम्वा की आँखों में नीद का नाम भी न था। वह आधी रात बीतने पर जागती जागती अपनी एक मात्र आशा मुन्नी को बगल में छिपाये कहाँ कहाँ की कल्पना किया करती थी। जब उसकी पीड़ा चरम सीमा को पहुँच गयी थी तो वह आँसुओं से अन्तर व्यथा को शान्त कर लेती थी।

यह न था कि वह भीमा को कोसा ही करती थी मगर कभी कभी तो उसे भीमा के व्यवहार में गौरव की अनुभूति भी होती थी। वह कहा करती थी मन ही मन में: 'इसमें भीमा का दोष ही क्या है? माँ बाप के दुराग्रह से उसे ब्याह करना पड़ा। परन्तु कहीं विना रीत के प्रीत होती होगी? चन्दा के साथ खूब प्रेम होगा तभी तो मेरे साथ बात भी नहीं करता? कैसी भाग्य शालिनी है वर नारी, जिसे उसका पति प्राणों से भी अधिक चाहता हो? कहाँ तो हुआ गोकुल और कहाँ भीमा? स्त्री अपमान करके भी चली गयी तो भी उसके प्रति प्रेम में सूत भर भी अन्तर नही पड़ा।'

वह आगे बड़बड़ाने लगती: 'मेरी बहन! ऐसे देवोपम पति को छोड़कर तू चली भी कैसे गयी होगी? हाय राम! ऐसे उदार पति की छाया में तो हलाहल अमृत बन जाता है तो तू एक बात भी न सुन सकी? यह तो तेरे विना पूरा खाता पीता भी नहीं है और तू उसकी परवाह भी नहीं करती?'

यह बात समाप्त हुई और अम्बा को अपना दुःख याद आ जाता था। जैसे भैंसाओं की लड़ाई में बेचारे वृक्ष का कचूमर निकल जाता है, वैसे ही इन दोनों के संघर्ष ने मेरा काम तमाम कर दिया है। ऐसा था प्रेम तो पहले से ही ब्याह क्यों किया था ? छोटा बच्चा थोड़े था जो किसी ने जबर दस्ती गले में फाँसी डाल दी है ? मेरी तो रही सही आशा भी जाती रही है। परन्तु मान लिया कि वह मुझे नहीं चाहता तो अपने मनकी बातें बताना तो चाहिए। क्या बोलने पर से ही मैं उससे चन्दा को थोड़े छीन लूँगी उसे अपने ऊपर इतना तो विश्वास होना ही चाहिए।'

फिर उसे स्वयं के ऊपर क्रोध आता, उसमें योग्यता होती तो भीमा क्या उसकी छाया भी तो घेरे काटकर बोलने लगती। मैंने ही कब उसे बोलने के लिए बाध्य किया ! मैं ही अपने प्रयत्न में असफल हूँ तो उसको बात ही क्या करनी ? भला दो चार दिनों की बात होती तो कोई बात न थी, किन्तु यह तो जीवन भर की बात है, कैसे निभेगी इतनी दीर्घ जीवन यात्रा ?' अन्त में उसने आत्मदर्शन पाते हुए कहा : 'अन्तश्चेतना उठ जाये तो भीमा को मेरा बनते क्या देर लगेगी ?'

परन्तु थोड़ी ही देर पश्चात् अम्बा अपनी निष्फलता की स्मृति को याद करने लगी। उसे लगा कि उसमें आत्म चेतना थी ही कब ?

अन्त में उसने अपना निश्चय फिर मे दुहराया, कुछ भी हो मैं तो भीमा से मन का गुबार निकाल कर ही दम लूँगी।'

वस्तुतः मनुष्य जो कुछ करना चाहता है उसे वैसा करने का अवसर मिल ही जाता है। सोचने से पाँचवें ही दिन अम्बा को भीमा से बात करने का अवसर मिल ही गया।

वैसे तो वह दैनिक नियमानुकूल घर से बाहर जारहा था, मगर उस दिन अम्बा ने स्वयमेव उसके कन्धे झक-झोर डाले। दैव ही जाने उस संत्रस्त दुखियारी के इस भाव को भीमा ने कसे स्वीकार कर लिया था ? उसने भीमा को बल पूर्वक पकड़कर कहा :' तुम भागो नहीं, क्या मैं जबर्दस्ती चिपट जाऊँगी।'

अपराधी के समान भीमा चुपचाप खड़ा रहा। मगर उसके मुख से कुछ निकला नहीं। वह तो खड़े खड़े नीचे देख रहा था !

अम्बा ने भीमा की शान्त मुद्रा देखकर आगे कहा : 'बुरा तो नहीं लगा तुम्हें ?'

भीमा का सिर स्वयमेव नकारात्मक हिल पड़ा। अम्बा : 'मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है भीमा ! तुम जाकर ले आए और मैं आगयी ! मुझे तुम्हारे मन के भावों का क्या पता था ? बीच में मुझ दुखियारी का जन्म क्यों विगाड़ते हो भीमा ?'

अम्बा का गला भर आया था, वह आगे न बोल सकी, किन्तु उसकी परि-स्थिति की यथार्थता का अनुमान भीमा की मानव आँखें कर रही थीं। अम्बा की की आँखों से निरन्तर नीर निर्झरित हो रहा था, तभी वह बोली : 'मैं कब ना करती हूँ चन्दा को लाने के लिए ? क्या एक घरमें दो सौतें रहती नहीं हैं ? यदि मुझसे कोई अपराध हो गया हो तो बताओ। मैंतो योंही मरी जा रही हूँ।'

आज तो भीमा आराम से अम्बा के पीड़ित मानस की सारी बातें सुन लेना चाहता था, बह शोकाकुल अम्बा की बरसाती आँखों की रिम-झिम देखकर अन्दर ही अन्दर रो रहा था। भीमा अम्बा के सामने ही नीचे बैठ गया। उसने आगे सुनने की इच्छा प्रगट की ही, कि अम्बा आगे बड़-बड़ायी : 'मैं कब कहती हूँ कि बहन घर में न आवे ? मैंतो यह भी नहीं जानती हूँ कि उसके प्रति तुम्हारे मनमें कैसे कैसे भाव हैं ? लेकिन नाथ ! मेरा कौन सा अपराध है इसमें, मुझे कुएँ से निकाल कर खाई में क्यों डाल दिया है ? भला महीनों तक भी तुमने सुध न ली, आँखें भी न देखी तुम्हारे विरह में रोती रोती लाल हुई और अब तो निर्जल भी हो चली हैं वे ? मुझसे रहा न गया अतः बोलना ही पड़ा ! माफ करना स्वामिन् ?'

इतना कहकर अम्बा चुप हो गयी। उसे चुप देखकर भीमा बोला : 'अम्बा ! बैठ जा ? 'क्यों और कुछ कहना है क्या ?'

अम्बा : 'क्या बहुत बोल गयी हूँ ?'

भीमा : 'नहीं अम्बा ! महीनों से चुपचाप सब कुछ सहती आ रही हो तुम सारे महीने भी बोलो तो कम है समझी ?'

अम्बा : 'तो तुम्हें कभी तो कुछ बोलना चाहिये था, है कौन मेरा तुम्हारे

सिवाय सुखदुःख का साथी।' भीमा का कण्ठ भर आया था, वह गद गद कण्ठ से बोला : 'अम्बा ! तुझे मालूम नहीं है कि मैं अब बोलने की दशा में कहाँ हूँ। मैं सब कुछ समझता हूँ, किन्तु मेरे बस की बात नहीं है।'

'अर्थात्।'

'तो अम्बा ! तू सचमुच नहीं समझी अभी तक ?'

'तुम्हारे मुख से सुनना चाहती हूँ।'

'तो सुन ले कान खोल कर, चन्दा के जीवित रहने की तो बात ही क्या है, मैं तो उसके मरने पर भी दूसरी स्त्री को अपना नहीं बना सकता।'

'हाय राम ! भीमा ! यह बात दूसरे का जीवन छीन कर याद आयी।' अम्बा ने अपनी निष्फलता बताते हुए कहा।

'कोई बात नहीं है अम्बा, मैं अपराधी हूँ, जो मन में आये कहे जा !'

'मैं कहती भर हूँ, और कुछ करती थोड़े हूँ।'

'दूसरा उपाय ही कहाँ था, बाप ने जबर्दस्ती कर दी थी।'

'तो तुम कोई बेवश थे !'

'अम्बा ! तुम स्वतन्त्र हो कहने में ! लेकिन मैं तो अपने मन को हार चुका हूँ।'

'मैं चन्दा को साथ रखने के लिए तैयार हूँ तो।'

'अम्बा ! क्यों मेरा जी दुखाती है यह पूछ कर ?'

यह सुनते ही अम्बा खड़ी हो गयी।

भीमा भी खड़ा होकर कहने लगा : 'अम्बा ! काफी बुरा लग गया होगा तुझे ?'

'बुरा भी लगे तो क्या है ?'

'तो अम्बा ! मैं तुम्हें गैर थोड़े ही मानता हूँ ?'

'न मानते होगे भीमा ! मैं तो तुम्हें क्या अपना सकूँ ! तुम तो....' अंगुली से पालने की ओर संकेत करती हुई बोली : 'उस बेचारी को भी फूटी आँखों नहीं देखते ?'

'अम्बा ! मुझे लज्जित क्यों करती है अधिक कह कर ! मुझे अपना पाप भली भाँति ज्ञात है ! लेकिन क्या करूँ ?' कहते ही भीमा के अन्तस्तल का दुःख अश्रुकणों के रूप में झरझर निकल पड़ा ।

अम्बा में न जाने कहाँ से निर्भीकता आ गयी थी । उसने अपने आँचल से भीमा के आँसुओं को पोंछ लिया । उसने भीमा को सान्त्वना देते देते कहा : 'भीमा ! रोओ मत ! मैं आज के बाद तुम्हारे दिल को ठेस नहीं पहुँचाऊँगी । इसमें तुम्हारा क्या दोष है, जब हृदय ही न रहा अपना तो तुम कर भी क्या सकते हो ?'

वस्तुतः मनुष्य हृदय तो सर्वत्र समान ही होता है न ?

★

: १८ :

भीमा अस्पताल में

अम्बा विवाह के बाद डेढ़-दो मास ही अपनी सुसराल में रही थी। और जब पीहर गयी तो आधी सर्दी बीतने पर भी किसी ने न बुलाया। न उसी ने बुलवाने के लिए खबर भिजवायी।

इन्हीं दिनों पूरा पूष और आधा माघ तो भीमा अस्पताल में ही रहा था। इन दिनों तो माँ-बाप को बेटे की चिन्ता थी, बहू की याद ही किसे आती ?

कंकूने एक दो बार देवा से कहा तो था, परन्तु देवा टका सा उत्तर देता : 'कंकू ! तुझे ज्ञात है कि भीमा बहू की ओर आँख उठा कर भी नहीं देखता। फिर बहू आकर भी क्या करेगी ?'

कंकू ने पूछा : 'तो भीमा के पास कौन रहेगा, मैं कहती थी कि:....'

बात काटकर देवा ने कहा : 'ऐसा करेंगे, मैं घरमें रहकर काम काज देखूँगा, तू अस्पताल में उसके पास रहना।'

इसके बाद तो अम्बा के बुलाने की बात निकली ही नहीं। बेचारी अम्बा आना तो चाहती थी किन्तु व्यावहारिक रूप में वह आ कैसे सकती थी ?'

भीमा को अस्पताल गये चार दिन हो गये थे, उसका शरीर बन्दूक की गोलियाँ और छर्रे लगने से काफी घायल हो गया था। डॉक्टर ने चीर-फाड़ देख भाल करने के बाद विश्वास दिलाया : 'अब खतरे की कोई बात नहीं है। किन्तु ठीक होने में डेढ़ दो महीने अवश्य लग जाएँगे।'

सेठ नेमीचन्द इतना कृपण था कि अपने शरीर के लिए भी काणी कौड़ी खर्च करनेवाला आसामी न था किन्तु भीमा के काण्ड में उतना उदार हो गया था कि सब को आश्चर्य हो रहा था। वैसे देखा जाय तो इसमें उदारता या उपकारिता तो थी ही नहीं क्योंकि भीमा ने बिना स्वार्थ के नेमीचन्द के लिए शरीर समर्पित कर दिया था। इसका प्रतीकार तो नेमीचन्द सेठ सर्वस्व देकर भी करे तो कम था। और ऐनमौके पर बाप बेटों ने सेठ की सहायता न की होती तो जाने नेमीचन्द और उसका रुपया पैसा घर वार बचा भी होता था

नहीं ? वैसे नेमीचन्द गाँववालों का साहूकार था, किन्तु ऐसे संकटकाल में किसी ने उसे तनिक भी सहायता न दी । इन डाकुओं के अत्याचारों ने चारों ओर हा हा कार मचा दिया था । इन दोनों की सहायता न होती तो नेमीचन्द का कहीं पता भी न चलता ।

अभी आठ दिन ही हुए थे, उस दिन डाकुओं ने सेठ के घर डाका डाला था, किन्तु उसके एक अहसानमन्द मुसलमान नौकर ने एनमौके पर आ कर उसे बचाना चाहा था, पर उन राक्षसों के सामने उस एकाकी की क्या विसात थी । बेचारा लाठी से प्रतिरोध करता करता घायल हो गया था । गाँववालों के सामने शायद यह बात भी जता दी गयी थी, तभी तो इस काण्ड पर कोई गाँव का कुछ न बोला । हाँ गाँववालों ने शून्य सहानुभूति अवश्य प्रदर्शित की थी ।

और उसी दिन प्रातः आठ साढ़े आठ बजे जब वही घायल आदमी उसके पास आठ रुपये माँगने गया था तो सेठ ने उसे इलाज के लिए नही दिया उधार तक !

और उसी गरीब मुसलमान को दूसरे सेठ ने चुपके से योंही दस रुपये दे दिये ।

दस ही दिन तो पहले यह बात घटी थी, जिसे सुनकर लोगों के मनों में दुःख की रेखा खिंच गयी थी । उन्हें लग रहा था कि नाहक ये दोनों आगे आ कर परेशान हुए । ऐसे मक्खीचूस के लिए जान जोखों में डालने से क्या लाभ है ?

सेठ स्वयं तो बच ही गया था, किन्तु उसकी धन दौलत को भी कोई आँच नहीं आ पाई थी । नेमीचन्द ने इन दोनों के उपकार को तो क्या सोचा होगा, पर अपयश का भय अवश्य ही उसके सिर पर चढ़ गया था । तभी तो सेठने दिल खोलकर डॉक्टर से जाकर कहा : 'देखना डॉक्टर ! इलाज में किसी प्रकार की कमी न करना, प्रत्येक प्रकार से रोगी को स्वस्थ करने में किसी बात का संकोच न रखना :' डॉक्टर ने सीधे भाव से कहा : 'नही सेठजी ! मैं कमी क्यों रखूँगा । अलग थलग कमरा लेने की क्या आवश्यकता है ? सबके साथ निभ ही जायेगी ।'

परन्तु सेठने तो पानी के भाव रुपयों की कीमत लगा दी थी । वह बोला : 'नहीं डॉक्टर साहब ! आप रुपये पैसे की कोई चिन्ता न करें । भीमा के लिए विशिष्ट कमरा ही ठीक होगा, हमें वही कमरा चाहिए ।' इस प्रकार भीमा को

विशेष कमरे में रखकर तथा चार दिन तक स्वयं भी साथ रहकर नेमीचन्द अपने गाँव लौट गया ।

वहाँ अस्पताल में भीमा के पास सेठ का एक नौकर और कंकू को छोड़ कर देवा भी सेठ के ही साथ लौट गया था । यद्यपि कंकू ने सेठ के नौकर को भी रखने की ना कही, तो भी सेठ ने एक न सुनी । इस बार तो सेठ ने कंकू के साथ वही पुराना किन्तु स्नेहशील भाभी का सम्बन्ध जोड़ लिया था । सेठ के व्यवहार में कुछ परिवर्तन दीख रहा था । उसने बड़ी उदारता से भीमा को जीवित रखने के लिए सारे उपायों को काम में लाने की व्यवस्था कर दी थी । जब कंकू कुछ कहती तो सेठ का एक ही उत्तर था : 'नहीं भाभी ! इसमें तुम्हें कुछ कहने-सुनने की आवश्यकता नहीं है । भीमा पर मेरा भी तो अधिकार है ।'

भीमा की बीमारी में जिस उन्मुक्तता से सेठ नेमीचन्द ने रुपया बहाया था, शायद इतना रुपया वह अपने आत्मज के लिए न खर्च पाता । देवा का मन कह रहा था, वस्तुतः बुद्धिमान् व्यक्ति समय को पहचान कर बर्तना खूब जानते हैं ।

कंकू के ना कहने पर भी सेठ ने अधिक से अधिक पैसा खर्च किया । अपने नौकर गोवर्धन को बाजार से साज-सामान लाने की रीति-नीति भी समझा दी । और घर जाते समय कहता गया था कि भीमा का हाल-चाल प्रतिदिन लिख कर भेजते रहना । सारी व्यवस्था हो जाने के बाद सेठ को हुआ कि अब सब ठीक-ठाक हो गया है तो वह पाँचवें दिन अपने गाँव लौट गया । साथ में देवा और भीमा के छोटे बहन-भाई, राहो और जेली भी गाँव के लिए चल पड़े ।

भीमा के द्वितीय विवाह के समय देवा ने अपने पुराने सेठ नेमीचन्द से रुपये उधार न लेकर शम्भू पटवारी से लिये थे, जिस बात का सेठ को दुःख था, किन्तु उसने सोचाः 'जो करेगा सो भरेगा' परन्तु अब तो देवा के साथ उसका सीधा सम्बन्ध जुड़ गया था, और वह भी ऐसे समय जबकि अपने भी पराये बन जाते हैं । सेठ ने दो-चार बार देवा से पुरानी बात काढ़नी चाही थी, किन्तु उचित समय न मिला । आज जब दोनों भीमा को छोड़ कर गाँव लौट रहे थे तो नेमीचन्द को बात पूछने का पूरा मौका मिल गया था, झट से उसने पूछा : 'देवा ! तुमने इतने पुराने सम्बन्ध को लात मार कर दूसरे से पैसा क्यों लिया था ? मेरी

इच्छा तो उसी समय तुमको रोक लेने की थी, किन्तु मैंने सोचा कि उस समय तुम्हें लगेगा कि मैं अपने स्वार्थ की बात करता हूँ, अतः बुरा लगने पर भी मैंने तुम्हें ना न किया था।' सेठ बात कहते-कहते देवा की आँखों से आँखें मिला रहा था।

देवा कुछ देर तक चुप रहा, किन्तु उसे लगा कि कहीं सेठ मन में यह न सोच ले कि देवा आज-कल दब गया है, अतः आगे-पीछे सोच कर देवा बोला : 'नहीं सेठजी ! ऐसी बात नहीं थी, किन्तु मैंने सोचा कि सेठ को कष्ट क्यों दें ?'

'हैं ! देवा ! इसमें कष्ट की बात क्या थी ? मैंने क्या तुझे कभी ना कहा है ?'

'नहीं सेठ ! तुमने ना तो नहीं की थी, किन्तु कहा था न आज-कल व्यापार-धन्धा ठण्डा हो गया है, लेन-देन में भी कुछ मिलता-मिलाता नहीं है, इसलिए मैंने तुम्हारे ना करने से पूर्व ही दूसरी व्यवस्था कर ली।'

सेठ देवा की बात पी गया। वह नहीं चाहता था कि स्वाभिमानी देवा की आत्मा को धक्का दिया जाय। देवा का लेन-देन एवं व्यवहार प्रामाणिक था। परन्तु धन पाकर मनुष्य का मन मद में मस्त हो जाता है, उसे भले-बुरे का ज्ञान नहीं रहता। वह तो सबको एक ही उस्तरे से मूंडने का अभ्यस्त हो जाता है।

वैसे तो सेठ का सारा ही गाँव आसामी था, किन्तु मुसीबत के समय कोई काम न आया। काम तो क्या आते वे, पर अनेक तो डाका पड़ने की बात सुन कर प्रसन्न हो रहे थे। और देवा ने सहायता देकर सेठ को उबार लिया था, तो उस पर गुस्से हो रहे थे।

सेठ ने भले ही कुछ न कहा था, किन्तु इस घटना ने उसके अनुभव में वृद्धि अवश्य कर दी थी।

उस दिन तो सेठ बात ही बात में देवा को अपने घर ले गया और सबको भोजन कराके ही जाने दिया। सेठ तो कह रहा था : 'भैय्या ! क्या हर्ज है ? भाभी के आने तक रूखा-सूखा यहीं खा लेना,' किन्तु देवा का अभिमानी मन न माना। वह बोला : 'सेठजी ! इसमें कोई अहसान की बात थो ी है। मेरा तो कर्तव्य था, पड़ोसी की सहायता करना, मैंने ईमानदारी से कर्तव्य पूर्ण कर दिया है, इसका मुझे हर्ष है। भोजन तो यहाँ भी तुम्हारा है और वहाँ भी।'

सेठ नेमीचन्द यहाँ का मूल निवासी न था । इसके बड़े-बूढ़े तो डाकोर के निवासी थे । इस गाँव में इसका पिता ही सम्वत् १९५६ के भी तीन वर्ष बाद आकर बसा था । अतः इस खानदान को आये चालीसेक वर्ष हो गये थे ।

पहले वह गाँवों में फिर कर फेरी लगाता था । वह था बड़ा चतुर, आस-पास के गाँवों में काफी जान-पहचान थी, किसी गाँव में बिक्री न होती थी तो भी लोगों के पास बैठ कर उनके सुख-दुःख की बातें पूछ लिया करता था । तभी तो दो सौ तीन सौ का माल लाता और उसीसे तीन जनों का भरण-पोषण करता था । घर में पानाचन्द और उसकी पत्नी तथा नेमीचन्द ही थे खाने वाले ।

भाग्य की बात समझो या समय की, पानाचन्द के मन में इस गाँव में दुकान खोलने की इच्छा हुई । जाति से बनिया तो था ही, अतः सोचा कि बड़ा अवसर है दुकान करने का । न तो यहाँ पर बड़े-बड़े पक्के मकान हैं, नहीं नाम की भी कोई दुकान, अतः दुकान के चलने का खूब मौका है । शहर भी तो यहाँ से काफी दूर है ।

सर्वप्रथम नमक-मिर्च की दुकान खोली । उसीसे दो पैसे कमाये और खेती करने का भी श्रीगणेश कर दिया । शरीर तो पहले ही कसा-कसाया था, एक बैल से खेती-बाड़ी और अगले ही वर्ष दो बैलों की खेती शुरू कर दी । और लोगों से भी आधे साजे पर खेती करने लगा ।

इसके बाद दूध की मशीन लगा ली, लोगों को शुद्ध छाछ मिलनी भी दूभर हो गयी ।

पानाचन्द ठोकरें खा-खाकर पक गया था, अतः लेन-देन के समय खूब समझता था कि किसे पैसे देने चाहिये ?

चार-पाँच वर्ष में तो इसका अड्डा खूब जम गया और यह यहीं बस गया ।

पानाचन्द ने तो चारों ओर रुपये कमाने शुरू कर दिये थे । कहीं दूध की मशीन से, कहीं खेती से, कहीं दुकान और रहा-सहा लेन-देन से । बेचारे गाँव वाले पानाचन्द के चंगुल में खूब ही फँस गये थे ! गाँव में बैठे हुए दुनिया भर की चीजें मिल जाती थीं उन्हें ।

लोटा-डोरी लेकर आये हुए पानाचन्द ने तो दस ही वर्ष में बहुत कुछ रुपया-पैसा संचित कर लिया था । और जमीन भी पचास बीघा खरीद ली थी ।

गाँव वालों को पानाचन्द की चढ़ती से जलन होने लगी। उन्होंने सब तरह से इसे डराने-धमकाने की कोशिशें कीं, किन्तु उन्हें किसी काम में सफलता न मिली। इन लोगों का जलना व्यवहारतः तो ठीक ही था। कहाँ तो दसों पीढ़ी वाले ग्रामीण निर्धन के निर्धन और कहाँ दस वर्ष का बसा सेठ जमीनदार और पैसेदार दोनों ही हो गया।

कितनी बार तो लोगों ने उसकी कपास की खड़ी खेती काट दी थी, घर में आग लगाने की योजना की थी, रात में आकर घर में कूमल आदि भी लगाये थे, गोशाला में से भैंसें, गायें भी खोल ली थीं, सायंकाल झामट पड़ने पर पानाचन्द को रास्ते में भी रोका था, डराया था, किन्तु पानाचन्द तो पानाचन्द, सोचता था, 'क्या कर लेंगे मेरा ? घर से लाया ही क्या था मैं ? चीज वस्तु ही तो लेंगे, जान तो मारने से रहे।' और धन संचित करने में जुटा रहा।

इसके साथ ही सेठ पानाचन्द सरकारी कर्मचारियों एवं गाँव के विशिष्ट व्यक्तियों से सम्बन्ध बनाने में निपुण था। किस व्यापार में क्या करना चाहिये, किसको कैसे लूटना चाहिये, इन बातों के लिए तो आदमी को सब प्रचार सफेद-स्याह करना ही पड़ता है। गाँव में कोई सरकारी कर्मचारी आया और सेठ ने उसे सब प्रकार सुविधा प्रदान करके सीधा किया। उसके खाने-पीने की सारी सुविधाएँ देकर उसे खरीद लेता था। वह कर्मचारी पुलिस विभाग का हो या शिक्षा विभाग का, उसे इस बात से कोई सरोकार न था, वह तो आँख मीच कर सेवा करना जानता था किसी बड़े लक्ष्य प्राप्ति के लिए।

इसी प्रकार गाँव के दो-चार भले-बुरों को भी कहाँ भूलता था यह ! जब उनके घर से कोई भी दूध लेकर आता था तो हिसाब के समय उसे दो-एक आने अधिक ही देता था। काम-काज में आने वाले लोगों को समय-समय पर खिला-पिला देता था। चौकीदार से लेकर नम्बरदार, पटवारी तक को सभी कुछ सेठ से सौगात में मिलता ही रहता था। कहने का तात्पर्य यह है कि सेठ ने अपनी बुद्धिमत्ता से समस्त वातावरण स्वानुकूल बना रखा था।

तीस वर्षों में तो सेठ पानाचन्द ने अपने पास रेहन आदि में रखी तीन बीघे जमीन, चालीस तोला सोना, चाँदी की दस सिल्लियाँ, दस-बारह हजार उधार, तीन ईंटों के पक्के और तीन कच्चे मकान एवं शहर के शर्राफ के पास साढ़े

सात हजार रुपया जमा कर दिया था। जमीन में जो दबादबाया था वह तो किसे ज्ञात था? इतनी सम्पत्ति छोड़ कर पानाचन्द ने दुनिया से कूच किया और अपने इकलौते पुत्र को यह सब सौंप गया।

नेमीचन्द ने अपने पिता की सारी कलाएँ सीखने को तो सीख ली थीं, किन्तु इसे पिता के समान सफलता न मिली। क्योंकि नेमीचन्द बड़ा मुँहफट्ट था। आसामियों के ही सामने वह मिलों जागीरों की बातें किया करता था। इन बातों से कर्जदार जल फुक जाते थे। साथ ही ये लोग जब कभी परस्पर नेमीचन्द की बातें करते थे तो सब के मुख से यही बात निकलती थी: 'साले हरामी ने हमारी तो जमीन ही पचा ली है।'

नेमीचन्द को लोगों की भावना का पता लग चुका था, अतः उसने अपना लेन देन कम कर दिया था, जब विना दिये काम ही न चले तभी देता था। देवा जैसे पुराने आसामी को टालने का यत्न करता था। अर्थात् भय के मारे नेमीचन्द ने अपने आदमियों को टका सा जवाब देना सीख लिया था।

यह समय बड़ा बुरा आ गया था, चारों ओर महायुद्ध की भीषण मँहगाई मुँह बाये जनता को मारे डाल रही थी। लोग उच्चकेगिरी के बाद डाकेजनी करने लगे थे। चारों ओर गाँवों में डाके पर डाके पड़ रहे थे। कभी नम्बरदार के घर तो कभी सुनार के, कभी तेली के घर तो कभी तमोली के। कभी खाती के घर तो कभी ठठेरे के। व्यापारी और जमीनदार तो थे ही सबकी आँखों में। वे तो छूटते ही नहीं थे इन मुसीबतों से।

इन समाचारों से नेमीचन्द सेठ के पेट में पानी हो रहा था, उसका दिल बैठे जा रहा था, इस चिन्ता से निवृत्त होने के लिए नेमीचन्द ने कपास की फसल के बाद शहर में रहने की व्यवस्था कर ली थी, पर यह फसल बड़ी लम्बी होती जा रही थी, इसकी समाप्ति का कोई लक्षण नहीं दीखता था। क्योंकि महायुद्ध की मँहगाई के नाम पर तो लोग अपने पुराने वैरों की वसूली कर रहे थे, या गाँव की फूट से फायदे ले रहे थे चोर-डाकू। दो चार दिन ही तो हुए थे एक भिस्ती के घर से दस हजार का माल ले गये थे चोर। कुछ ही हो लेकिन यह काम भेद और वैर दोनों से हो रहा था बड़ी तेजी से।

साथ में यह बात भी थी कि सारे डाकों में एक ही प्रकार की बातें घट रही थीं। अतः लोगों को विश्वास हो गया था कि हो न हो ये लोग एक ही दल के सदस्य हैं। इन लोगों का डाके का समय था वही सात आठ बजे रातको, साथ में वही उतने गिनेगिनाए ऊँट और घोड़े। सभी पुलिस की वेषभूषा में सन्नद्ध आते थे और अपना काम तमाम करके रफूचक्कर हो जाते थे, किसी को पड़ोसी की पड़ी न थी, जिस पर पड़ती थी वही भोगता था। पहले तो लोग कुछ बोलते चालते भी थे, किन्तु पड़ोस के गाँव में उस मुसलमान के घायल हो जाने से तो रही सही धीरता जाती रही लोगों की।

महायुद्ध की विकरालता के समान ही चारों ओर इस डाकेजनी की भयंकरता फैल गयी थी। पूँजा के साथ होने की किम्वदन्ती ने तो लोगों को और भी मुर्दार बना दिया था। आज कल की मँहगाई को देखते तो यह बात सच्ची लग रही थी, क्योंकि विना काम-धन्धे के कौन अपनी घर गृहस्थी का पेट पाल सकता था ? सिवाय इन बातों के लूटखलोट डाकेजनी के ! पूँजा की बात क्यों पूछो हो, उसकी रोज तो बोतलें खुलती थीं, जुए की तो सामान्य सी बात है, किसी को भी दिन-धौले डराना धमकाना तो इसके बाएँ हाथ का खेल था। मौज शौक की तो नदी वह रही थी उसके लिए। क्योंकि उसे किसी का भय तो था ही नहीं, वह नियमित रुप से पुलिस की अण्टी गर्म करता ही था, फिर 'सैयां भये कोतवाल तो काहे का डर!' वाली बात चरितार्थ हो गयी थी। लोगों को इसी लिए पूँजा का नाम सुन कर निराशा हो गयी थी : अब शायद ही कोई उस दानव के पंजों से बच पायेगा ?'

सेठ नेमीचन्द को विश्वास था कि 'यदि लोगों की बात सच्ची है तो उसके घर पर तो डाका पड़ा ही समझो। सेठ तो कपास की मौसम बीतते ही शहर चले जाने वाला था मगर बीते तब न ? इतने में तो नेमीचन्द के सामने पेट का ही भय आकर खड़ा हो गया।

शनिवार की काली रात थी, रात तो क्या वही ८—८॥ बज रहा था कि सीमा में बन्दूक की आवाज हुई। फिर क्या था ! लोगों ने अपने अपने घरों के दरवाजे फटाफट बन्द कर दिये। सेठ की बहू भी आवाज सुनते ही आँगन में बर्तन

माँजना छोड़कर कमरे में बड़ गयी, सेठ नेमीचन्द तो उस समय अपनी बही लिख रहा था। तभी उसका नौकर गोवर्धन घोड़ा की जीन आदि सवारी का समान उतार कर कोठे में घुस रहा था। घोड़े के तेज कान भावी विपत्ति की सम्भावना से खड़े हो गये। इतने में तो पाँच आदमी मुँह ढके कन्धे पर बन्दूकें धरे सेठ के द्वार पर आ खड़े हो गये। दरवाजा अभी बन्द हुआ था। अन्दर सेठ और सेठानी काँपने के स्थान पर मूर्ति से जड़ हो गये थे डर के मारे !

बाहर से सरदार ने आज्ञा दी : 'सेठ दरवाजा खोलो !' थोड़ी देर होते ही दो गालियाँ एक तो दरवाजे को चीरती हुई और दूसरी घोड़े को पार करती हुई सनन् सनन् करके निकल गयी।

सेठ तो पत्थर हो गया था, खोलता कौन ? तभी दूसरा आदेश हुआ : 'खोलते हो कि नहीं ?' और किसी ने दरवाजे पर जोर से प्रहार किया।

अन्दर से प्रत्युत्तर की चिन्ता विना किये ही सरदार ने आज्ञा दे दी : 'तोड़ दो साले दरवाजों को, देखते क्या हो खड़े खड़े ?'

आदेश पालन होने से पूर्व ही डाकुओं के पहरेदार साथी की खतरे की सीटी बजी ! सुनते ही सब लोग 'अवाउटटर्न' हो गये।

एक भाले की चोट पड़ते ही सीटी बजाने वाला साथी धराशायी हो गया था। अब तक के सारे डाकों में यही आज का सफल सामना था।

'कौन है ? क्यों मरना चाहता है ?' की भयंकर रोष पूर्ण आवाज ने साथी का बदला चुकाने की ठानी। किन्तु इस धमकी का कोई प्रभाव न हुआ। तभी तो एक ऊपर से सनसनाता तेज बाण आया। उसके ऊपर गोली दागी किन्तु उसने उका दिया उसे ! फिर दूसरा बाण ! तीसरा और चौथा आया, कि युवक छर्रों से घायल हुआ और एक गोली उसकी पिण्डलियों को चीरती हुई निकल गयी, किन्तु दूसरा आदमी निरन्तर बाण वर्षा करता जा रहा था ! डाकुओं का प्रबल प्रतिरोध आज पहले पहल हुआ था और वे बिना कुछ लिए दिए चले गए।

सारे गाँव में से केवख बाप बेटों ने ही डाकुओं को पछाड़ दिया था, किन्तु इस सामने में भीमा सख्त घायल हो गया था और देवा बच गया था।

सेठ नेमीचन्द तो बाल बाल बच गया था, उसकी प्रसन्नता का पार न था, तो भी उसका मन जीवन में प्रथम वार भीमा की कृतज्ञता के भार से दब गया था।

: १६ :

चन्दा आयी

जिस दिन सेठ नेमीचन्द और देवा घर लौटे थे, उसी दिन दिन ढलते ढलते कंकू सूर्य का प्रकाश अँगुलियों की छलनी बनाकर खड़ी खड़ी देख रही थी कि उसे चन्दा की गजगामिता, चटक भटक दीखी। उसका मन बोला : 'हो न हो वही है !' उसे ध्यान से देखा था कि अस्पताल का नौकर दूर से ही अँगुली का संकेत करके कमरा बताकर लौट गया।

कंकू का तो खून सूख गया था, उसकी समझ में ही नहीं आ रहा था कि अब क्या करना चाहिए ? वह तो सीधे कमरे में चली गयी।

भीमा ने हाँफती माँ को समझ लिया, वह बोला : 'माँ ! क्यों हाँफ रही है ?'

कंकू : 'नहीं बेटा ! खुछ भी नहीं है, यों ही....

भीमा : 'यों ही कोई हाँफता होगा ? बता बता क्या बात है ?'

कंकू : कुछ नहीं है, हाँ जरा....।'

भीमा की उत्सुकता बढ़ रही थी। वह प्रतीक्षा में था कि माँ क्या कहेगी ?

तभी कंकू के कहने से पूर्व चन्दा वहाँ आकर खड़ी हो गयी। उसके व्यवहार में इतनी निर्भीकता झलक रही थी कि जैसे कुछ हुआ ही न हो। वह माँ बेटों के बीच में खड़ी थी और वह अपनी पुरानी मद भरी मीठी वाणी में बोली : 'माँ !'

मधुर चिर परिचित शब्द सुनते ही भीमा आज उठ बैठा। दोनों प्रेमियों की आँखों से आँखें मिल गयीं। कंकू भी बोल उठीः 'बहू आ गयी ?'

चन्दा ने बात छेड़ते हुए कहा : 'मुझे तो कल रात ही पूरा समाचार मिला था। घटना घटने के अगले ही दिन हमारे गाँव में काना फूसी हो रही थी, कोई कहता था, बच गया है, कोई कहता घायल हो गया है, कल ही तो रात में पता चला कि वह अस्पताल चला गया है। रात में ही आती किन्तु...'थोड़ा रुक कर बोली : 'पिताजी ने कहा : 'हैं ? पगली इतनी रात में कहाँ जायेगी ?' तभी उसे अपने बाप का ध्यान आया, मुड़कर देखा तो वह वहाँ था ही नहीं। वह

जोर से चिल्लायी : 'पिताजी ! पिताजी ! यहाँ क्यों खड़े रह गये ? आइये न यहाँ ?'

रयजी को अपनी लड़की का यह व्यवहार बड़ा ही असमंजसकारी लगा ! उसके सामने चन्दा का विविध रूप नाच उठा। कहाँ तो वह घर से रूठकर गयी और ऊपर से उसके पति ने दूसरा ब्याह भी कर लिया था, तो भी चन्दा के मनमें भूत काल की समस्त घटनाएँ घटी ही न हों ऐसा भाव मूर्त हो रहा था। भीमा के घायल होने की बात सुनते ही वह अधीर हो गयी थी, उसने रात काटनी मुश्किल करदी, रात में स्वयं सोई भी है कि नहीं राम जाने ! परन्तु रयजी चन्दा की विशिष्टता जानकर भी अन्दर जाने में सकुचा रहा था।

कंकू को तो पता भी न था कि चन्दा के साथ और कौन आया होगा, वह तो चन्दा को एकाकिनी आती देख चुकी थी। उसे क्या पता था कि बाप बेटी आये हैं और बेटी दौड़ती आगे आ गयी है और बाप पीछे रह गया है। अपनी प्रथा के अनुसार कंकू साड़ी के पल्ले से मुख को ढकते हुये बोली: 'क्यों समधी जी ! बाहर क्यों रह गये खड़े ? अन्दर आओ न ?'

रयजी समधिन की बात से अन्दर आ गये। तभी भीमा ने नमस्कार करने के बाद कहा : 'माँ इन्हें पानी तो दे !'

इतने में तो घर की मालकिन बनी चन्दा ने ही कहा : 'अब मैं जो हूँ, काम करनेवाली, माँ को ऊठक-बैठक करने की क्या आवश्यकता है ? जरा सुस्ता लें तो दे दूँगी ?'

कंकू को चन्दा की पुरानी स्मृति याद आ गयी, आज भी वही मिठास, वही तत्परता, और चञ्चलता। भगवान् ने सारी बाते तो ठीक, किन्तु स्वभाव का कड़वा बना दिया नहीं तो....।

पिता को पानी पिलाने के बाद चन्दा ने सास से कहा: 'माताजी ! तुम्हें दूँ ?'

कंकू के ना कहने के बाद भीमा की ओर कटाक्ष की दृष्टि से देखती हुई मुस्कराती चन्दा बोली : 'तुम्हें पीना हो तो तुम्हें मैं नहीं दूँगी समझ गये' चन्दा की दृष्टि में मीठा मीठा कटाक्ष भरा था।

समयानुसार तो चाय देवी के पदार्पण के विना बढ़िया से बढ़िया

दावत भी फीकी हो जाती है। यह चाय तो राव से लेकर रंक और शहर से लेकर ठेठ गाँव तक इतनी शान से अधिष्ठित हो गयी है कि कहने की बात नहीं। जहाँ भी जाओ सर्व प्रथम चाय से स्वागत ! खाने पीने का समय भी हो तो चाय पान से ही भोजन क्रिया पूर्ण मानली जाती है। चाय ने सारे देश में महत्वपूर्ण स्थांन बना लिया है, अतिथि को आने पर चाय और बीड़ी सिगरेट न दी जाये तो लोगों को बड़ा बुरा लगता है। अतः चन्दा ने समयानुसार अपने पिता के लिए चाय बनाने की सोची, नहीं तो उसके बाप को बुरा लग जाता।

अस्पताल था तो क्या हुआ नेमीचन्द सेठ ने पृथक् कमरा लेकर एवं अपने विश्वासी नौकर गोवर्धन को सारे खान पान के सामान से लैस करके सारे अभाव दूर कर दिये थे। नयी रोशनी के अनुशार चाय और दूध आदि गर्म करने के लिए स्टोव भी आ गया था। बस गोवर्धन को कहने भर की देरी थी।

कंकू ने गोवर्धन से कहा : 'भैय्या गोवर्धन ! चूल्हा तो सुलगा दो, समधी जी को चाय तो पिला दें पहले ! भोजन वोजन बाद में होता रहेगा।'

रयजी ने आधुनिक झूठी शेखी वालों की तरह छूटते ही ना किया : 'नहीं जी क्या आवश्यकता है, कष्ट करने की ?' चन्दा ने भी पिता की बात का दबोच कर समर्थन किया। परन्तु इतने में तो गोवर्धन ने स्टोव तैय्यार कर दिया था और चाय का पानी उबलने रख दिया था।

चूल्हे पर चाय बन रही थी और रयजी डाका पड़ने की बातें सुन रहा था। रयजी ने क्रमानुसार समधिन से सारे प्रश्न किये, घाव कैसे लगा, डाके में कितने जने थे, गाँव से कौन-कौन आया था, सेठ का क्या-क्या सामान गया ? इन सभी प्रश्नों का यथोचित प्रत्युत्तर कंकू दे रही थी।

कंकू बोली : 'समधीजी ! आप तो उनका स्वभाव जानते ही हैं, जरा सी किसी पर भीड़ पड़ी कि दौड़ गये उसकी सहायता के लिए ! दो चार बार तो दूसरों के लिए मुसीबतें भी झेलनी पड़ीं। किन्तु भगवान् की दया है कि कभी विशेष चोट आदि नहीं लगी। मावजी भाई के घर चोर घुस आये लेकिन सारे तो मुँह ताकते रहे और ये सबसे आगे पहुँच गये चोरों को मारने ! चोरों को सब माल छोड़ कर जान बचा कर भागना ही पड़ा। एक बार नट आये थे तो गाँव

में उपद्रव खड़ा हो गया था। इन्होंने बीचबचाव करके निबटारा करा दिया था। किसी ने तो दाहिने हाथ पर इतनी जोर की मारी थी कि हाथ टूटता-टूटता बचा। मैं तो अब बीच में बोलती नहीं हूँ, एक बार उन्हें टोक कर पछताना पड़ा था। वे तो कहते हैं: 'बस तू ही है अपशकुनी। भलाजी! मैं क्यों उनके काम में अपशकुन करूँ ?'

कंकू थोड़ी देर बाद चाय के आने में देर समझ कर भीमा की ओर देखकर बोली : 'यह भी तो ठीक अपने बाप पर गया है ! मजाल है किसी की थोड़ी सी बात भी सहले।' तभी कंकू को चन्दा का ध्यान आ गया, कहने लगी : 'समधी ! मैं झूठ क्यों बोलूँ, तुम्हारी लड़की के व्यवहार से मुझे और इसके बाप को बड़ा बुरा लगा और हम दोनों ने इसका जबर्दस्ती ब्याह कर दिया। यह तो कतई तैय्यार ही नहीं है अभी तक ! चन्दा ने उतावल न की होती तो भीमा ने पूँजा को कभी का पाठ पढ़ा दिया होता ! जो भला दूसरों की विपदा अपने सिर लेता हो वह अपने शत्रु को कैसे छोड़ सकता है ?'

रयजी ने समधिन की हाँ में हाँ मिलाते कहा : 'हाँ समधिन ! मै भी तो समधी के विचार जानता ही हूँ। दूसरों के लिए तो मर मिटते हैं ? यह स्वभाव न होता तो सेठ का नाम निशान भी बचा होता आज ! और दूसरे ब्याह के समय में सेठ को छोड़कर मेहता से रुपये लाये, है तो गजब का आदमी !'

कंकू के मन में समधी के सूक्ष्म विचारों ने डंक मारा ! वह तो चन्दा का दोष निकाल रही थी और रयजी उसके पति का !

रयजी ने सारी आपस की बातें कर ली थी, जमाई का भी हाल चाल देख भाल लिया था। कुछ सुनी कुछ सुनायीं, अतः चाय पानी के बाद गाँव लौटने की गर्ज से कुर्सी से उठ गया, जैसे बैठे बैठे उकता गया हो। अंगड़ाई एवंजँभाई लेता हुआ रयजी चन्दा को देखकर बोलना चाहता ही था कि झट से चन्दा अधबिच में ही बोली : 'नहीं नहीं पिताजी ! आप जाइये, मैं कुछ दिन यहीं इनकी सेवा में रहूँगी। आपको देर हो जायेगी नहीं तो !'

कंकू को यह सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि यह तो मालूम पड़ता है यहाँ रहने को आयी है, बड़ी धींग है ?'

रयजी ने प्रत्युत्तर देते हुए कहा: 'अच्छा बेटा ! अभी तो जा रहा हूँ, चार पाँच दिन में फिर आऊँगा।'

'आ जाइयेगा, आराम से, यहाँ चिन्ता की कोई बात नहीं है,' चन्दा ने अपना विचार प्रकट किया।

चन्दा को देखने मात्र से भीमा का आधा दुःख दूर हो गया था और रहा सहा दुःख चन्दा के यहाँ रहने की बात सुनकर दूर हो गया। अब तो भीमा को सच पूछा जाय तो औषधि की भी आवश्यकता न थी। देखने से भी भीमा का चेहरा मुस्कराता लग रहा था।

चन्दा ने आते ही रात का सारा काम काज अपने माथे ले लिया था। बेचारी बुढ़िया को चार पाँच दिनों के बाद आज आराम मिला था। नर्स भी भीमा की खबर लेकर चली गयी थी। सबको चन्दा का आना अच्छा ही रहा।

माँ का हृदय भी बड़ा विचित्र होता है। भले ही कवि की भाषा में मानव हृदय की समता नवनीत से की गई हो। किन्तु माँ के मानस के सामने तो किसी की कोमलता नही चलती।

कहा तो कंकू ने चन्दा से चिड़कर अपने पति से कह कहाकर उसका दूसरा विवाह करवा दिया और चन्दा को घर की देहलीज पर भी पैर न रखने की शपथ ली थी, वही आज अपने ज्वान जुवान बेटे की वियोग जर्जरित आकृति से कट रही थी। वह मनमें ही भीमा की भलाई के मुख्याधार चन्दा के आगमन को न टाल सकी। न जाने क्षणभर में ही वह क्रोध कहाँ का कहाँ भाग पड़ा था! कंकू के मन ने शान्ति की गहरी साँस लेकर अपने लाल की जीवन-दीपवर्तिका चन्दा को घूर घूर कर देखा।

नयी बहू लग-भग दो एक मास तक घर पर रही थी, पर भीमा के लिए तो उसका रहना व्यर्थ ही निकला। बेचारे ने एक जून भर पेट भी न खाया। और आज सारे दिनों की कसर चन्दा के दर्शन पाते ही निकाल ली थी। पहली नयी को तो फूटी आँखों भी देखना न चाहता था।

चन्दा की अनुपस्थिति ने तो भीमा के शरीर को आधम आध खा लिया था। बेचारा कितना सीधा है भीमा ! अपने मन की पीड़ा को अन्दर ही सुलगाता रहा, पर किसी से कुछ न बोला।

उसका भी क्या दोष था ! चन्दा भी थी ऐसी ही कि उसे सब कोई याद करे । उसका हँस मुख चेहरा, सुनहरा रंग रूप, गजगामिता, किस के मन को न भाती ? किन्तु बेचारी का स्वभाव अवश्य तीखा था ।

है कितनी दिलेर और पतिव्रता ! दूसरे ब्याह की बात सुनकर तो नहीं आई, किन्तु भीमा की बीमारी सुनकर सिर पर पैर रखे दौड़ी आयी । ऐसी आई जैसे कुछ हुआ ही न हो, न तो मुख पर सौत आने का शोक, नहीं मन में कोई चिन्ता ! क्या खूब बनाई है विधना ने यह भी !

इन्हीं ऊहा पोहों में कंकू डूबी थी कि उसे ध्यान आया अब सोने का समय आ गया है । वह चन्दा से बोली : 'बहू ! बिस्तरा भीमा के ही पास लगा लेना हाँ ! रात में कोई काम काज हो तो तू कर तो देगी जल्दी से ! और मैं अपना बिस्तरा दूसरे कमरे में बिछाती हूँ पाँच छः दिनों से तो नींद हराम हो गयी थी, चलो बहू के आने से नींद तो खूब लूँगी आज ?'

सारे या तो सो गये या सोने की चिन्ता में थे । किन्तु चन्दा और भीमा को नींद न थी । दोनों ने लालटेन के मन्द मन्द प्रकाश मे आँखों से ही कुछ बातें करली थीं । कोई कुछ बोलता न था । चन्दा ने भीमा की खाट से दूर बिस्तरा लगाया ही था कि भीमा ने संकेत से उसे पास में बिछाने के लिए कहा, पर वह चन्दा ही क्या रही जो ऐसे संकेतों से बातें मान ले ! वह तो दूर बिस्तरे पर पड़ी पड़ी सोने का ढोंग कर रही थी । और भीमा भी खाट में पड़े पड़े जाग रहा था । उसे तो नींद ही कहाँ से आती ? बाहर कमरे में कंकू और गोवर्धन सो चुके थे ।

भीमा से चन्दा का यह मौन न सहा गया होता, किन्तु बाहर माँ और गोवर्धन के कारण वह कुछ बोल न सका । पर यह मौन अधिक देर तक न चल सका । वह धीरे से बोला : 'चन्दा ! ओ चन्दा ! भला सोता आदमी तो आवाज सुनकर बोल सकता है, परन्तु जो जागता हो वह क्या बोले ?'

भीमा को पूर्ण विश्वास हो गया था कि चन्दा जाग रही है, अतः वह चिढ़कर बोला : 'चन्दली ! सुनती है कि नहीं ?'

तो भी चन्दा कुछ न बोली । अन्त में भीमा ने अपना अन्तिम अस्त्र फेंका : 'चन्दा ! नहीं बोलेगी तो ध्यान रखना मैं बैठ जाऊँगा, फिर न कहना कि यह

क्या हो गया है ?' बात यह थी कि डॉक्टर ने उसे उठने बैठने की ना कर रखी थी।

परन्तु चन्दा कब डरने वाली थी। उसे ज्ञात था कि भीमा के पास कोई फेंकने वाली चीज भी तो नहीं है, जो फेंक कर मार सके। वह बौग मारे पड़ी रही।

किन्तु भीमा को तो एक एक पल भारी पड़ रहा था, वह अपनी कोहनियों के बल बैठा होने की कोशिश करने लगा।

चन्दा बोल भले ही न रही हो किन्तु उसकी आँखें भीमा की ओर ही लगी थीं। वह भीमा के बैठने से पहिले ही बैठी हो गयी थी।

उसने भीमा को सम्बोधन करके कहा : 'भला यह भी क्या पागल पन है ? भीमा ! इतनी चोटें खाकर भी अपनी हानि लाभ नही जानता ! तेरी मर्जी ! तुझी को मुसीबतें उठानी पड़ेगीं ! मेरा क्या है ?'

भीमा फिर लेट गया और चन्दा की ओर हँसकर बोला : 'ओ हो बड़ी आई उपदेश देने वाली ! तेरी हानि न थी तो क्यों बैठी हो गई ! पड़ी रही होती न ?'

'सोयी भी रहती तब भी क्या था ! अब तो तुझसे क्या नाता रह गया है भीमा ! तूने तो नीचा दिखाने में कुछ उठा नहीं रखा ! वह तो मैं ही थी कि घायल होने की बात सुन कर दौड़ी आई !' चन्दा विस्तरे पर पड़ी पड़ी बोल रही थी।

'अच्छी बात है, तेरा मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है अब हाँ !' कह कर भीमा फिर बैठने का प्रयत्न करने लगा।

'देखो फिर वही बात न ?' आधी बैठती हुई चन्दा बोली : 'भला यह विना सम्बन्ध के किसे अच्छा लगता है कि व्यर्थ में किसी की पीड़ा बढ़े ?' सर्वथा खड़ी होती होती हुई चन्दा बोली।

'यहाँ आवे तो बताऊँ ?' भीमा ने कहाः 'दूर से नहीं बता सकता ? किन्तु चन्दा ! यहाँ तो आ. देखूँ तू वही है कि और कोई, बिना देखे क्या पता चले ?' कहता कहता भीमा सचमुच आधा बैठ गया।

चन्दा बड़ी असमंजस में पड़ी थी ! अब बिना भीमा के पास गये छुटकारा

न था। वह तो भीमा के पास ही खाट पर बैठ कर बोली : 'ले भीमा ! पहिचान ले, मैं कहीं बदल तो नहीं आई।' कह कर उसने भीमा को कन्धे पकड़ कर फिर लिटा दिया।

लेटे लेटे भीमा बोला : 'रानी चन्दा ! सचमुच बताना, मेरे दूसरे ब्याह की बात तुझे सच तो नहीं लगी न ?'

'यह भी खूब रही भीमा ? सारी दुनिया कहती है और तू भी कहता है फिर सच न मानने की बात ही कैसी ?'

'नहीं चन्दा ! मेरा भाव तो यह था कि मेरे ब्याह से तुझे बुरा तो नहीं लगा, तुझे पता है कि मैंने यह ब्याह प्रसन्नता से या....'

'मैं क्या जानूँ तेरे मन की बात को ? मैं कैसे जान सकती हूँ ? तू कोई छोटा है जो जबर्दस्ती पकड़ कर ब्याहा जाता ? ब्याह से पूर्व मुझे पूछ तो लिया होता ?'

'क्यों बनती है चन्दा ! भला तू न जाने तो कौन जाने ? देख मैं मजाक नहीं कर रहा चन्दा....'

'मैं भी तो रोने की बात नही कर रही भीमा ?'

'कसम खिला कर देख ले न ?'

'ना ना ! बाज आयी मैं झूठी कसमों से ?

'हाँ चन्दा ! तू ठीक ही कहती है, मैं तो झूठा हो ही गया हूँ।' भीमा कहते कहते सिहर उठा।

चन्दा आगे कुछ न बोली। भीमा का हृदय भर आया था। वह जी भरके रोना चाहता था। चन्दा के अन देखे वह रो पड़ा। वह नहीं चाहता था कि चन्दा उसकी गीली आँखें देखे। झट से वह पूछने लगा आँसुओं को।

चन्दा की आँखों से क्या छिपा था, वह भीमा का हाथ पकड़ कर बोली: 'छी: छी :, गोली खंजर की चोट तो हँसते हँसते सह गया और छोटी सी बात पर आँसू आ गये भीमा ! इतना छुट दिला क्यों हो रहा है ?'

'चन्दा ! तू जानती तो है ? वीरों को शस्त्रास्त्र के आघात सहने में आनन्द आता है, किन्तु ....'

'नहीं, नहीं, बोल न आगे रुक क्यों गया ?'

'चन्दा ! तुझे भी मेरे हृदय की पहचान नहीं है ?'

'तो तूने ही कब मेरा हृदय समझने का यत्न किया है भीमा ? इतने वर्षों के सहवास के बाद भी भीमा ! तूने मुझे न समझा ! यदि मुझे तेरे हृदय की पहचान न होती मैं मर जाती पर तुझे मुख न दिखाती, सारी दुनिया के कहने से क्या होता है ? मुझे तो अपने भीमा के हृदय की पूरी पूरी पहचान है' इतना सुनते ही भीमा किसी शक्ति से भर कर उसे आलिंगन करने के लिए उठना ही चाहता था कि चन्दा स्वयं नीचे झुक गयी ।

★

: २० :

विचित्र नारी

वस्तुतः चन्दा को विचित्र ही कहेंगे हम ! किसी को स्वप्न में भी आशा न थी कि लड़ कर गई हुई वह भीमा का अमंगल समाचार सुन कर दौड़ी चली आयेगी, उसने तो आकर भीमा का सारा ही बोझा उठा लिया, भीमा की बीमारी आधी हो गई उसके आने से !

अगले ही दिन चन्दा ने सास से कहा : 'माताजी ! मैं तो यहां हूँ ही, तुम क्या करोगी रह कर, घर पर भी तो बच्चों को खाने पीने का कष्ट है ! आठ दस दिन में जब इच्छा हो चली आना ?'

कंकू तो यह सुन कर स्तब्ध रह गयी। उसके मन में विविध लहरें लहराने लगीं, कितनी मस्त है यह ! कोई कितना ही गुस्सा क्यों न हो, बस एक बोलने में ही मोह लेती है। फिर क्या मजाल किसी की जो इसकी बात टाल सके !

वैसे तो कंकू के मन में अनेक बातें चक्कर काट रही थीं। वह चाहती थी कि मन का सारा गुब्बार निकाले, किन्तु चन्दा की मोहिनी ने उसे चुपा दिया। वह कुछ बोल न सकी।

आज की तो बात ही क्या है, कंकू ने तो जब से चन्दा आयी थी एक भी शब्द सास बनकर चन्दा से न कहा था। आज ही क्या कहती वह ? उसने तो प्रथम आते ही सबके ऊपर अपनी मोहनी छिड़क दी थी कि किसी को कुछ कहने की आवश्यकता ही न पड़ती थी। तब उसे भीमा की विवशता का ध्यान हुआ पहले-पहल वह गुनगुनायी : 'मैं तो सास होकर भी पानी पानी बन जाती हूँ तो वह तो पति है, उसका पागल बन जाना तो ठीक ही है।'

चन्दा का पीला-सा चेहरा कंकू के सामने आया तो वह बोल पड़ी : 'बहू ! आखिर तू कितना काम कर लेगी, तेरा तो पैर भारी है, आराम तो तुझे भी चाहिये न ?'

चन्दा ने यह सुन कर कुछ न कहा। यद्यपि उसकी मुखाकृति से झलक रहा

था कि वह कुछ कहना चाहती है, शायद भविष्य के लिए छोड़ दिया था उसने कुछ कहना।

अस्तु वह दिन यों ही निकल गया, सास बहू की प्यारी प्यारी बातों में। कंकू को तो बहू के काम में कोई शिथिलता न दीखी। उसे लगा कि यहाँ रहना तो व्यर्थ ही है।

दूसरे दिन भीमा कुछ कहने जा रहा था पर शर्म के मारे कुछ न बोला। उसे लगा कि माँ को ऐसा न लगे कि चन्दा के आने से मुझे गाँव में भेज रहा है।

अगले दिन तो कंकू ने ही देखकर कहा : 'बेटा अब मैं चली जाऊँ तो क्या हर्ज है ? बहू है ही, डाक्टर की दवा दारू चल ही रही है, सेवा में कोई कमी तो करनेवाली नहीं है बहू।'

जैसे ही डाक्टर देखने के लिये आया तो उसे यह देख कर बड़ा आश्चर्य हुआ कि भीमा को इतनी जल्दी कैसे आराम हो गया है ? उसने भीमा से कहा: 'अब तुम खाट पर करवटें बदल सकते हो, उठ बैठ सकते हो।' बाहर जाते जाते डाक्टर ने नर्स से कहा : 'सिस्टर ! और कोई होता तो महीने तक तो करवटें बदल भी न पाता, पर यह तो यही है बड़ा मजबूत !'

किन्तु वेचारा पैसों का गुलाम डाक्टर क्या समझ पाता प्रेम-मदिरा की मधुर-मादकता को ? वह प्रातः पौ फटे से सायम् झामट पड़े तक 'भजकलदारम्' के चक्कर में डूबा रहता था। भरी रात में भी द्विगुणित शुल्क के लोभ से वह आधी चौथाई नींद भी न ले पाता था। उसकी जीवन संगिनी प्रेम की प्यासी प्यासी सो जाती थी, प्रातः उठ कर दिन भर प्रेम के सलोने स्वप्नों की मीठी याद में रात की प्रतीक्षा करती, पर रात आकर भी उसे सिवाय जलन के और कुछ न दे पाती। तब उसे अपने वैभव के प्रति तीव्र घृणा हो जाती थी। भला तब डॉक्टर को क्या पता था कि गरीब किस नशे में चूर चूर हँसते हँसते मुसीबतें तय कर लेते हैं ?

भीमा ने अन्त में मुंह खोल कर कहा: 'माँ ! अब तू घर चली जा ! यहाँ दो चार आदमियों का काम थोड़े है ?' भीमा ने न भी कहा होता तो भी कंकू स्वयं ही

घर जाना चाहती थी। वह बोली : 'हाँ बेटा! तू ठीक कह रहा है, मैं व्यर्थं में यहाँ क्या करूँगी! बहू तो है ही सब सँभालनेवाली! गोवर्धन को तो रहने देंगे न?'

'नहीं माँ! उसका भी क्या काम है?'

'नहीं भीमा! नगर में किसी चीज वस्तु की आवश्कता हुई तो! एक पुरुष बाहरी काम काज के लिए चाहिए ही!'

'अच्छा तो यह तुझे गाँव पहुँचा कर लौट आयेगा और!'

कंकू गोवर्धन के साथ अपने कपड़े लेकर गाँव के लिए चल दी। चलते समय चन्दा ने सास से कहा : 'माँ! क्या उतावल थी कल ही चली जातीं तो?' भगवान् को ही पता था कि यह चन्दा ने गले से कहा था या हृदय से।

दोनों कुछ दूर चले ही होंगे कि गृह स्वामिनी चन्दा ने भट से दोनों द्वार बन्द कर दिये।

कंकू सायंकाल घर पहुँची। उसने अपने लौटने की बात देवा से कही तो क्रोध में लाल पीले हुये देवा ने कहा: 'देख है न स्त्री की जात हलकी! बता तूने उसे अन्दर आने ही क्यों दिया था? आयी बहू वाली बड़ी?'

अगले दिन देवा और नेमीचन्द सेठ को अस्पताल जाना था, किन्तु पहले दिन सेठ ने कहलवा दिया था देवा को: 'भई! आज तो एक दूसरे गाँव जाना है, वहीं से फिर कल अस्पताल चले चलेंगे।'

कंकू ने देवा के दो चार भले बुरे शब्द सुन कर भी कुछ न कहा। देवा और सेठ दूसरे दिन भीमा के पास अस्पताल पहुँचे तो भीमा खाट पर बैठा था और चन्दा चूल्हा सुलगा कर भोजन की तैय्यारी में थी। गोवर्धन बाहर था, अब उसका काम ही क्या था अन्दर!

देवा तो चन्दा के आने से आगबबूला बना ही हुआ था, उसने आते ही भीमा को डाँट सुनाई : 'भीमा! ऐसा लगता है कि तेरी बुद्धि भी समाप्त हो गयी है। डॉक्टर की बात छोड़ कर राजा साहब बैठने भी लगे हैं।'

नेमीचन्द सेठ बोला : 'देवा! व्यर्थ की बात में क्या धरा है? उसे ठीक लग रहा होगा, तभी तो बैठा है?' इतने में तो डॉक्टर और नर्स दोनों ही कमरे

में आ गये। सेठ ने डॉक्टर का स्वागत करते हुए कहा : 'डॉक्टरजी ! क्या हाल है आपके इस बीमार का ?'

सेठ की ओर देखता हुआ डॉक्टर बोला: 'सेठजी ! तुम्हारा बीमार बड़ा वज्र मालूम पड़ता है, और कोई होता तो शायद है पन्द्रह बीस दिन तक हिला डुला भी न होता, पर यह तो पाँचवे दिन ही उठने बैठने लगा है ! ठीक हो गया समझें !'

'नहीं डॉक्टर ! हमें कोई जल्दी-वल्दी नहीं है, समझे न आप ! इसके टाँके कमजोर नहीं रहने पायें !'

'नहीं सेठजी ! मेरा कहने का भाव है कि वैसे तो यहाँ पर अभी महीने दो महीने तो रहना ही पड़ेगा, किन्तु इतनी जल्दी आराम होने लगा है कि जिसकी कल्पना भी नही की जा सकती !'

'डॉक्टर ! यह तो आपकी दवा का चमत्कार है ?'

तभी चुपचाप सुनती नर्स बीच में ही बोली : 'यह सब दवा का चमत्कार हो या न हो, किन्तु उस स्त्री का तो है ही ! मुझे तो यही लगता है !'

नर्स की बात काटते हुए देवा ने कहा : 'ऐसा होता तो लोग दवा क्यों कराते ?'

तरुणी नर्स ने वृद्ध की ओर कटाक्ष या घृणा की दृष्टि से देख कर कहा : 'बूढ़े ! तुम्हें क्या मालूम इस साइन्स का ?'

देवा मन ही मन बड़बड़ाया : 'देखी बड़ी समझनेवाली !'

नेमीचन्द सेठ ने नर्स की बातों में हाँ में हाँ मिलाते हुए कहा: 'हाँ देवा भैय्या ! सिस्टर ठीक कहती है। सेवा और स्नेहरूपी दवा के सामने ये दवाएँ कम मूल्य रखती हैं हाँ !'

यदि इस बारे में भीमा की सम्मति ली गयी होती तो वह तो भलेही सकुचाते कहता यही कहता : 'हाँ ! है तो नर्स की बात सोलहों आने सच ! दवा तो केवल शरीर को लाभ देती है, किन्तु प्रेम की महौषधि शरीर के रोम रोम को सशक्त एवं नीरोग बना देती है।'

विचारा देवा कहाँ तो चन्दा को निकालने आया था वहाँ वह स्वयं ही फँस गया था।

बातों बातों में भोजन का समय हो गया था। सेठ धावे में भोजन करने

उठा तो देवा भी उठ खड़ा हुआ । श्वसुर को जाने की स्थिति में देख कर चन्दा ने मीठे स्वर से कहा : 'पिताजी ! आप कहाँ जा रहे हैं अब ! भोजन तो कभी का तैय्यार हो गया है आप बैठे और भोजन मिला ।'

देवा तो क्रोध लेकर ही घर से आया था । उसने सोचा था कि चन्दा को भीमा के पास नहीं रहने दूँगा । पर यहाँ तो उलटी पड़ गयी । चन्दा के कोकिल कण्ठ ने क्रोधी श्वसुर को पानी पानी बना दिया था । वह बहुत कुछ कहना चाहता था पर उसकी एक न चली । कहाँ तो देवा उसे 'तू' भी कहना नहीं चाहता था और कहाँ उसे 'तुम' बोलने लगा ।

चन्दा देवा की उलझन जानती थी । उसने मौन बैठे श्वसुर से कहा : पिताजी ! आपके भोजन करने से चूल्हा टूट थोड़े जायेगा ! सेठजी तो हमारा नहीं खाते, परन्तु आप तो....'

'हाँ ठीक तो है देवा ! तुझे धावे में भोजन करने की क्या आवश्यकता है ? तू बैठ कर भोजन कर, मैं भी अभी जीम कर आता हूँ ।'

सेठ ने अनेक बार चन्दा के विषय में भली बुरी सभी प्रकार की बातें सुनी थी, कभी कभात देखने में आयी थी, साक्षात् तो आज ही देखी थी । उसका बातें करने का तौर तरीका, भावानु-भाव, कण्ठमाधुर्य सब एक से एक बढ़ कर थे, उसे लगा कि बड़ी सुघर है यह तो !'

देवा ने छिटकने का प्रयत्न किया था लेकिन चन्दा के सामने उसकी न चली, चन्दा ने भोजन परोस कर कहाः 'जीमिये ! जिस चीज की आवश्यकता हो बता दीजियेगा, मैं बाहर हूँ ।'

'नहीं बहू ! मुझसे इतना नहीं खाया जायेगा, भूख ही कहाँ है ?'

'आप भी क्या कहते हैं ? है ही कितना, शाम को चलना भी है न ! सब हजम हो जायेगा ! इतना तो छोटे बच्चे ही खा जाते हैं ?'

देवा ने ऊपरी भाव से तो स्वयं को बहुत बनाना चाहा पर बनावट थोड़े छिपती है । न जाने कितने दिनों के बाद देवा ने आज इतना स्वादु एवं मधुर भोजन किया था । उसकी इच्छा तो थी कि खूब खाता जाऊँ किन्तु पेट पराया न था, अपना था, साथ ही उसे अपनी भूख नहीं है, बात का भी ध्यान था । उसे

भोजन में इतना स्वाद पड़ रहा था कि अँगुलियाँ चाटना नहीं भूलता था। उसे चन्दा की बनाई ज्वार की रूखी रोटियों की आज याद आ रही थी। उनके साथ केवल छाछ ही होती थी, तो भी खेतों में खाने पर कितना आनन्द आता था? रह रहकर उसे आम की चटनी मिर्चोंवाली, धुँगारी हुई छाछ, इमली का पन्ना अरहर की दाल का रायता, खट्टी मिट्ठी, आदि आदि ग्रामीण भोजन याद आ रहे थे। आज तो खिचड़ी, कढ़ी और चौलाई की भाजी बनी थी। जिसमें उन सबसे अधिक आनन्द आ रहा था।

देवा के मनमें रह रहकर विचार आ रहे थे कि भोजन तो सभी बनाती हैं स्त्रियाँ, वही नमक, वही मिर्च मसाले, वही शाक-पात, दाल, चावल, किन्तु सब के भोजन में वही समान आनन्द नहीं आता' जाने इन सुघरी में क्या गुण, हैं जो साधारण भोजन में भी अमृत टपका देती है। भोजन तो कंकू भी खूब बना लेती है, पर चन्दा तो फिर चन्दा ही है।'

देवा इन्हीं विचारों में डूबा डूबा स्वाद के मारे अँगुलियाँ चाट रहा था, उसे पता भी न चला कि कब का खाना खा चुका है? इतने में चन्दा ने आकर कहा: 'पिताजी! और कुछ दूँ!'

'नहीं बहू! आज तो बहुत खा लिया है,' कहकर देवा ने हाथ धो लिये!

थोड़ी देर बाद देवा के जाने का समय हो गया था, वह जाते जाते बोला: 'बहू! अच्छा तुम आ गई, हमारी सारी चिंता टल गई, नहीं तो बड़ी कठिनाई थी, अब तो मैं जा रहा हूँ!'

वाह रे देव! तेरी लीला अद्भुत है, कहाँ तो देवा चन्दा का मुख भी नहीं देखना चाहता था और वहाँ अब अपने बेटे को उसी के भरोसे छोड़कर गाँव लौट गया है!

सायंकाल देवा के घर पहुँचते ही कंकू ने तपाक से पूछा: 'क्यों भीमा को अकेले छोड़कर आ गये' हैं?

'क्यों! बहू जो है वहाँ पर?'

'कौन बहू?'

'अच्छा तू क्यों जानेगी अब बहू को कंकू!'

'हाँ मैं समझ गयी हूँ, उसके सामने बोलती बन्द हो गई होगी! ठीक है उसकी वाणी में ऐसा ही जादू है, आपका क्या दोष है इसमें!'

'कंकू! तू कितना ठीक कह रही है, मैं इसका प्रमाण कैसे दूँ। मैं तेरे ऊपर व्यर्थ में नाराज हो गया था! वह तो इतनी मिश्री की डली है कि सबको पिघला देती है।'

इस प्रकार दोनों ने ही चन्दा के सामने मात खाली थी। चन्दा सबको मना कर भीमा की सेवा में तत्परता से जुटी थी, डॉक्टर की सेवा कहो या चन्दा की स्नेहार्द्र सेवा, किन्तु कहने का भाव है कि वह अति शीघ्र स्वस्थ हो गया। डेढ़ महीने में ही भीमा पूर्ववत् स्वस्थ एवं तरो ताजा बन गया था।

भीमा को लग रहा था कि उसके घावों के समान ही चन्दा के हृदय के घाव भी भर गये हैं।

गत दश दिनों में तो भीमा उन्ही पुरानी मस्तियों के झूलों में झूल रहा था। वैसे तो गोवर्धन के जाने के बाद ही भीमा पूर्णतया स्वतंत्र होकर विचर रहा था, बेचारे भीमा को छोटे से कच्चे घरमें इतनी स्वच्छन्दता भोगने का समय एवं सुविधा थी ही कहाँ। परन्तु भीमा के अच्छे हो जाने पर वह कुछ दिन और रह कर इस एकान्त का पूरा लाभ ले रहा था। उन दोनों की अलमस्ती की मधुर ध्वनियाँ कमरे के कोने कोने से प्रति ध्वनित हो रही थी। किसी को क्या पता कि भीमा क्यों नहीं घर लौट रहा। यदि चन्दा न होती तो भीमा स्वस्थ होते ही क्या घावों के भर जाने पर एक मिनट भी अस्पताल में रहनेवाला न था वह झटपट अपने घर लौट गया होता, पर उसकी जाय बला से।

किन्तु चन्दा थी पहली श्रेणी की चतुर सयानी। भीमा को मस्ती मे देखते ही कह देती दूसरे विवाह की बात! बस फिर क्या था भीमा का गुलाब सा लाल लाल मुखड़ा मुर्झा जाता था।

चन्दा जब तब मुँह बना कर कहती, चिढ़ा देती थी भीमा को: 'यह तो मैं हूँ न पहली बीबी, कितनी मस्त और मलूक है दूसरी! अब मेरीक्या आवश्यकता है?'

'देख चन्दा! इतना गुस्सा ठीक नहीं मैं बहुत सुन रहा हूँ तेरी कड़वी बातें।'

'ओहो ! महाशय ! कान खोलकर सुनलो, चन्दा तुम्हारी बन्दर घुड़कियो में आनेवाली नहीं है, तुमने ही मेरी बात कौन सी रखली है, जो मैं रखूँ !'

'मैं समझा नही चन्दा ! तू क्या कहना चाहती है ।'

'अच्छा ! मैं मजाक-वजाक तो करती नहीं हूँ, सच्ची बात वही की वही है । तुम मेरे शरीर पर हाथ नही लगा सकते, जब तक अपनी टेक न पालो ! तुमने क्या कहा था ! तुम्हें अपनी बात का अभिमान नहीं है, किन्तु मुझे तो है !'

भीमा चन्दा की इन बातों से चिढ़ जाता था, और खिसिया कर उसके कन्धे पकड़ कर झकझोर देता था । चन्दा आखिर मे स्त्री ही तो थी । कहाँ तक बस चलता । वह लाख प्रयास करने पर भी भीमा की जालिम पकड़ से न छूट पाती । झट से वह दुहाई देती: 'भीमा ! यह भी क्या है मजाक, मुझसे मजाक करने की कतई आवश्यकता नही है । अम्बा को बुलालो न ? ज्यादा गुदगुदी चढ़ रही हो तो !'

भीमा इस बात को सुनकर निष्प्रभ बन जाता था । और उसकी बलवान् पकड़ ढीली होने से चन्दा का काम बन जाता था, वह छूट जाती थी ।
दोनों इस प्रकार आपस में विविध आनन्द कल्लोल करते रहते थे । भीमा को स्वप्न में भी इस बात का ध्यान न आया । उसे तो लग रहा था कि चन्दा उसके साथ ही गाँव चलेगी ।

अस्पताल से जाने का समय आ गया था । गाँव से देवा नेमीचन्द सेठ और दो तीन आदमी आये थे ।

सारी चीज वस्तुएँ गाड़ी में रख दी गयी, शहर से आनेवली चीजें भी लाद दी गयीं थी, जैसे तैसे गाड़ी अस्पताल से निकली, सेठ तो अपने लिए ताँगा लाया था, देवा ने चन्दा के कारण ताँगा में बैठने की व्यवस्था की थी ।

गाड़ी के आगे आगे ताँगा जा रहा था । ताँगे में बैठने से पूर्व ही देवा ने चन्दा से कहा : 'बहू ! तुम्हें तो गाड़ी में बैठना है ?' बस इस अन्तिम वेला में चन्दा ने अपना उग्ररूप प्रदर्शित करते हुए कहा : 'पिताजी ! मै तो सेवा करने आयी थी पति की । मेरा काम हो गया है, क्षमा करें मैं तो अब सीधे अपने पीहर जाऊँगी ।'

चन्दा की बातें सुनकर क्या मजाल जो कोई कहता: 'क्यों नहीं चलती हमारे साथ !'

भीमा की तरफ कटाक्ष फेंकती हुई चन्दा बोली: 'अभी तो टेक कहाँ हुई है पूरी ? पूरी होने पर ही आऊँगी मैं।'

जिस प्रकार स्वयं स्वतंत्रता पूर्वक आई थी, अरे ! यह तो उसी ढंग से चली भी गयी। किसी में साहस ही कहाँ था जो उससे साथी संगती की बातें करता ?

सब के अन्तराल में प्रश्न उठ रहा था: 'है तो बड़ी विचित्र नारी !

☆

*

: २१ :

नया वैरी

वस्तुतः जेहरा ख़ानदान इस गाँव में आठ-दस पीढ़ियों से रहता था, मूल-निवासी तो अन्यत्र कहीं का था। यहाँ के वारेचा परिवार ने इस ख़ानदान को सम्बन्धी के नाते इस गाँव में बसाया था, परन्तु आर्थिक स्थिति कुछ सुधर जाने पर जेहरा वंश वारेचा वंश का शत्रु बन गया, जैसे कि बीमारी से मुक्त होने पर भूतपूर्व रोगी, वैद्य-डाक्टर का शत्रु बन जाता है। अतः इन दोनों ख़ानदानों में चिरशत्रुता का बीज जम गया था।

वैसे तो जेहरा परिवार इस गाँव में भूखों मर रहा था आते समय तो, किन्तु भाग्य की बात समझो या पुरुषार्थ की, कुछ समय बाद यह परिवार गाँव के सुखी परिवारों में गिना जाने लगा था।

कुछ समय बाद दोनों परिवारों के बड़े-बूढ़े तो काल-कवलित हो गये, जो बच्चे थे, उन्हें ज्ञान ही नहीं था कि अब क्या करना चाहिए ? फलस्वरूप मामूली-सी बात पर दोनों वंशों के संबन्ध टूट गये थे और ये एक दूसरे के जानी दुश्मन बन गये थे।

देवा-रामा की पीढ़ी सातवीं थी। बैर लेते समय जिसका दाँव चढ़ जाता था, वही एक दूसरे के खून से होली खेल लेता था। बस, थोड़ी-सी दुर्बलता देखी कि काम तमाम कर दिया।

देवा तो बैर ले चुका था अपनी पीढ़ी का, अब तो रामा की बारी थी बदला लेने की। इस बारी को अट्ठाईस वर्ष बीत गये थे। आजतक पारिवारों के विद्वेष में इतना बड़ा मौन न रहा था। एक-दो बार २०-२५ वर्ष तक भी दाँव-पेंच खाली जा चुके थे, किन्तु अब की तो ४-५ वर्ष और अधिक बीत गये थे। यही कारण था कि लोगों को बड़ा आश्चर्य हो रहा था। रामा ने दो-तीन बार बैर चुकाने का प्रयत्न किया तो था, किन्तु सफलता न मिली।

तीसरी बार का निशाना तो ऐसे खाली चला गया जैसे खरहे के सिर से सींग !

भीमा बिल्कुल तड़के गाड़ी भर कर शहर जानेवाला था। नेमीचन्द की शहर की दुकान में माल ले जाना था और गाँव की दुकान के लिए माल लाना था। सेठ तो अगले ही दिन शहर में चले गए थे। वैसे आवश्यकता तो दो गाड़ियों की थी, किन्तु कोई सज ही न मिला दूसरी का। सोचा था भीमा ने कि प्रातः बहुत सवेरे शहर चला जाय तो दोपहर में वहाँ से चलकर ठीक समय गाँव में आ पहुँचूँगा। गाड़ी गाँव से प्रातः चार बजे चलनेवाली थी, यह थी अन्तिम सूचना, जो रामा को भीमा के बारे में मिली थी।

रामा का मन वर्षो से पितृऋण से उऋण होने के लिए तड़फड़ा रहा था। रोज बरोज उसके मित्र ताने मार मार कर उसका मन खाये जा रहे थे। साथ ही गाँव का मुखिया रामा के पक्षवाला ही था। इन कारणों ने रामा को अधीर और व्याकुल बना दिया था।

और नम्बरदारी भी क्या बला है? मिलने को तो पांच सात ही रुपये मिलते है किन्तु ऊपरी जो लाभ होते है उनका अनुभव तो गाँव में रहकर ही ज्ञात हो सकता है। तभी तो इस छोटे से पद के लिए लोग आपाधापी एवं पानी की तरह रुपया बहा देते हैं। इस पद की छाया में स्याह सफेद सब कुछ हो जाता है पलक मारते ही।

गाँवों में होनेवाले नब्बे प्रतिशत अपराधों के मूल में नम्बरदारी होती है। सरकार का मुख्य कर्मचारी यही तो है गाँव में। इसकी साक्षी पर निरपराध अपराधी हो जाते हैं और सापराध निरपराध! यही है किसी को भी छोटे से लेकर बड़े सरकारी से मिलाने की कड़ी।

गरबड़ मुखिया कोई पढ़ा लिखा नही था, किन्तु गुना खूब था। भयंकर से भयंकर कत्ल को भी देखते देखते रफू कर देता था। उसने भी दो चार बार रामा को याद दिलाई थी, वंश की मान मर्यादा संरक्षण की! उसने रामा को आश्वासन दे रखा था: 'रामा! जब तक में मुखिया हूँ, तेरा बाल बाँका भी नहीं हो सकेगा।'

रामा को घर बार का भी कोई फिकर न था। तीनों लड़के बड़े हो गए थे, काम काज ठीक ठीक चल ही रहा था, दुर्व्यसनी कोई था नही, सारे के सारे उद्यमी और पुरुषार्थी थे। किसी का न लेने से न देने से।

अत: रामा सब प्रकार का त्याग करने के लिए सज्जित था। स्त्री भी गत वर्ष मर चुकी थी। ये थे कारण, जिन से मालूम पड़ता था कि वह तो कमर कसकर मरने मारने के लिए तैय्यार है।

तो भी मृत्यु से कौन नहीं डरता। सब कुछ होने पर भी वह बच-बचकर खून का बदला खून से लेना चाहता था।

'भीमा प्रात: ठीक चार बजे गाड़ी लेकर जानेवाला है' यह बात चुपचाप रामा ने अपने बड़े पुत्र भावा से कही। घरमें किसी और को इस बात का पता ही न चला।

रामा के घर के सामने से ही गाड़ी की लीक थी, सारा गाँव निद्रा देवी की गोद में मीठी नींद ले रहा था, और ये दोनों बाप बेटे शस्त्र सज्ज हो कर भीमा की गाड़ी की प्रतीक्षा कर रहे थे खाटपर बैठे बैठे। पौन घण्टा की प्रतीक्षा के बाद ही खड़खड़ाहट सुनाई पड़ी। तरुण भावा की चमकदार आँखों ने दूर से ही गाड़ी में बैठी एक मूर्ति देखी। यह जानकर उन दोनों को बड़ी प्रसन्नता हुई कि चलो अब काम बनने में देर ही क्या है? वह तो अकेला ही है न?'

थोड़ी देर में उनके घरके सामने से ही गाड़ी आगे निकली। वह मुश्किल से दो खेत ही गई होगी कि उसकी खड़खड़ाहट बन्द हो गयी। हाँ बैलों के गलों की घण्टी की आवाज अवश्य सुनाई दे रही थी अभी तक। झट से दोनों डेढ़ डेढ़ हाथ के चमकते हुए दृढ़ भालों को कन्धे पर लेकर चल पड़े। किन्तु चलने से पूर्व ही उन्होंने अपने सारे मुखको आँखें छोड़कर ढक लिया था। वे गाँव का सिमाना पार करके टेढ़े मेढ़े रास्तों से आगे बढ़ गये।

दश कोश की इस यात्रा में छ: कोश तक तो एक भी गाँव बीच में न पड़ता था। बिल्कुल बीच में खारी कुइया की एक प्याऊ अवश्य बनी थी। तो भी ऐसे स्थान पर किसी अकेले दुकेले को ठहरने का तो साहस भी न होता था। क्यों कि इस स्थान के बारे में लोगों में बड़ी किम्वदन्ती उड़ी थी।

लोगों का कहना था कि यहाँ पर कोई डाकनी रहती है। जो कभी तो बैलों की पूँछे ही पकड़ लेती है, उनकी घण्टियाँ खोल लेती है, ऊँघते गाड़ीवान को तो धर पटकती है। दो चार गाड़ीवानों को तो कुइया में पटक दिया है उसने! उस

को लोग कहते थे कि वह तो वही विधवा जीवली है, जिसे अपने जीवन में कभी सुख साज की कल्पना भी न दीखी। उसका किसी से प्रेम हो गया था। उसने अपनी सारी जमीन भी उस पुरुष के नाम पर लिख दी थी, बेचारी उसे प्रसन्न करने के लिए अपनी शक्ति भर सेवा काम काज किया करती थी, परन्तु दुष्ट ने जीवली पर दया न खायी, उसने तो जीवली का सर्वस्व अपहरण करके एक दिन सुनसान पाकर इसी स्थान पर जीवली को सदा की नीद सुला दिया था। प्रथम तो उसे घर में ही दबाया, फिर खेतों में और वहाँ से भी इस स्थान में। यही तो हुई उसकी अन्तिम गति स्थली! यह किस्सा भी पुलिस को मौज-मजा कराने पर अतीत की चीज बन गई थी। जब कभी ऐसे स्थान पर किसी को ज्वर आदि आ जाता था तो लोग कहते: 'अरे! इसे तो जीवली का भूत लग गया है! भलेही भूत कोई चीज न हो, तो भी मूर्ख प्रजा के अन्ध विश्वासों को कोई बिना विद्या के कैसे दूर कर सकता हैं? जीवली के झूट-मूठ भूत को हलवा देकर ही टाला जा सकता था।

हाँ भले ही शिक्षित लोगों को भूत पर कतई विश्वास न था तो भी उनके मनों में भी इस स्थान पर भय छा ही जाता था।

इसी प्रसिद्ध स्थान के निकट रामा और भावा आकर छिपकर भीमा की गाड़ी की प्रतीक्षा करने लगे थे उसी खेत में खड़ी इमली के पेड़ के नीचे। छोटा मोटा आदमी तो उस स्थान पर से किसी को निकलते देखकर ही मरजावे, इसी से वे यहाँ छिपे थे और गाड़ी की खड़खड़ाहट की बाट जोह रहे थे।

रात का अन्तिम याम था गाढ़ान्धकार की काली चादर अभी तक वसुधा पर आछन्न थी। स्वप्न में भी यहाँ पर किसी आदमी के छिपने की आशा न थी किसी को।

गाड़ी प्याऊ के निकट आयी, बैल टुनुन ठुनुन की मदिर घण्टी नाद के साथ समान गति से आगे बढ़ रहे थे, गाड़ीवान प्रभाती पवन के मद भरे झकोरों में तन्द्रिल बना था। वह बदनाम इमली दस बीस कदम पीछे रह गयी थी। बाप बेटे खून की प्यास के मारे व्याकुल हो रहे थे; तभी जोर से आवाज आयी: 'ओ गाड़ीवाले! खड़ा हो जा! कौन है तू?'

गाड़ीवाला आवाज सुनकर चौंक पड़ा, उसने पीछे मुड़कर देखा कि दो छायाएँ उसकी ओर लपक कर आ रही हैं। वह उद् बुद्ध होता हुआ बोल उठा : 'कौन जीवली ?'

किन्तु ये तो जीवली के बदले दो जीवला निकले ! बैल बिना रोके ही मन्द पड़ गये थे। तभी, आगन्तुकों में से एक ने कहा : 'खड़ा रहता है कि...'पूरी बात न कही। गाड़ीवान को विश्वास हो गया कि यह तो कोई आदमी है। उसने खूब माथा पच्ची की कि उस आवाज को पहचाने, पर वह न पहचान सका।

वह उसी निडरता भरे शब्दों में बोला ; 'क्यों क्या काम है ?' और उसने बैलों की रासें खींचते हुए गाड़ी को तेजी प्रदान करने की चेष्टा की 'बस सारी योजना समाप्त !' दोनों का क्रोध काफूर हो गया। वे भारी दिलों को लेकर बिना कुछ बोले लौट पड़े।

गाड़ीवान ने भरसक प्रयत्न किया कि वह उन दोनों के उद्देश्य एवं आकृति को समझे, किन्तु आखें फाड़ फाड़कर देखने पर वह अंधकार में उन्हें पहचानने में कतई समर्थ न हो सका वे तो यह गये वह गये, हो गये थे।

वह खड़े खड़े दीर्घ श्वास लेता हुआ बैलों से बोला : 'चलो मेरे बहादुरो ! अभी तो दूर चलना है ! ऐसे ऐसे गीदड़ों से डरें तो हो लिए दो दिनके !

लौटने को दोनों बाप बेटे लौट ही गये थे किन्तु उनके मनको निष्फलता की सुई छेदे दे रही थी। उन्हें हो रहा था कि रात के दस बजे तक तो भीमा ही अकेला गाड़ी हाँकनेवाला था, पर हो क्या गया भीमा को ! क्या उसने हमारी बातें सुन ली होंगी ! नही ! नहीं ! उसकी रक्षा तो प्रभु ने की लगती है ! ठीक ही तो कहा है किसी ने : 'जाको राखे साइयाँ मार न सकिए कोय !'

अस्तु एक कोश तक तो वे दोनों बाप बेटे खोये खोये मे बढ़ रहे थे किन्तु भावा से अब अन्तर्द्वन्द्व न सहा गया, और मौन तोड़ता हुआ बोला : 'पिताजी ! आपको भीमा के आने की खबर किसने दी थी ?'

रामा बोला : 'डाभई ने !'

'वह स्वयं वहाँ पर था ?'

'हाँ हाँ जबतक सब सो नहीं गये, तबतक वह वहीं पर था।'

'डाभई के ऊपर उन्हें अविश्वास तो नहीं है न ?'

'इस लिए तो डाभई हमारे घर भी नही आता है ?'

'तो ऐसा कैसे हो गया है ?'

'दैव ही जाने यह नारायण हाली पता नही कैसे चला आया ?'

मुझे तो इतना क्रोध आया था कि उसी को...किन्तु तुम आगे आ गये थे नही तो....'

'पर भावा ! किसी का क्रोध किसी और पर निकालने से क्या लाभ !'

इस बात का समाधान न हुआ अतः दोनों चुप हो गये। वे तेजी से चले जा रहे थे। गाँव का सिमाना आते ही दोनों अलग अलग हो गये। और जंगल दिशा जानेवाले आदमी के पूछने पूर्व से ही वे अपने घर पहुँच गये। घर में जाते ही बहू ने रामा से पूछा : 'कहाँ गये थे ?'

प्रश्न सुनते ही रामा ने आँखें तरेर कर उसे चुप कर दिया। और तो अभी तक कोई जगा ही न था जो कुछ पूछता ?

रात में एक दो बजे होंगे, भीमा पेशाब करने उठा था कि पेशाब करते समय उसे बिच्छू ने काट लिया। उसका जहर अभी उतरा न था, प्रातः होते ही भीमा लँगड़ाता लँगड़ाता जैसे ही जयसिह के पास गया तो रामा को रात की सूचना गलत होने का सुराग मिल गया।

डाभई ने अधूरी सूचना दी थी, नारायण काम से भीमा के साथ शहर जाने वाला था, तो उसने भीमा के बदले जाने के लिए तैय्यार देवा से चलने के लिए ना कहा: 'काका ! तुम न भी चलोगे तो कोई हानि नहीं है, काम ही कौन सा बड़ा है। बस गाड़ी हाँकनी है न ?' भाग्य की बात कहो या अकस्मात् देवा भी नारायण की बात मान गया। और नारायण अकेला ही गाड़ी लेकर ठीक समय पर निकल पड़ा था।

जब नारायण ने यह घटना शहर से लौटकर सुनायी तो किसी के मुख से कुछ न निकला तो भी घर भर में सबके मनमें एक ही शंका आ रही थी। इसी रात भीमा ने अपनी मृत्यु का स्वप्न देखा था। वह तो रोज ही मृत्यु की चिर चिन्ता में घण्टों डूबा रहता था। जबसे उसके सामने के घरमें दो बच्चों को

लेकर गंगा आयी थी और नये पति से पूर्व पति के बच्चों की दुर्दशा भोग रही थी, उसको देखकर भीमा कहा करता : 'प्रभो ! मुझे सन्तान न देना ! अन्यथा उनकी भी यही दुर्दशा हो जायेगी।'

यह विचार तो भीमा ने चन्दा से भी कह दिया था। बात खाली जाने के अपमान से गरबड़ मुखिया अकस्मात् गाँव से बाहर चला गया था। रामा भी चुपचाप अपनी ढफली बजाने में लग गया। क्यों कि इसमें कुछ कारण था।

नारायण के साथ घटी घटना से भीमा और देवा ही को क्या आधे से अधिक गाँवको लगा कि यह काम तो इन्हीं का है। अतः अपने पापको छिपाने की गर्ज से रामा ने भी कुछ दिनों तक किसी से कुछ भी न कहा।

उससे आगे सेठ नेमीचन्द को डाका से बचाने के कारण भी रामा को लग रहा था कि जितनी जल्दी हो भीमा या देवा का काम तमाम कर ही देना चाहिए। ये न होते तो नेमीचन्द को छठी का दूध याद आ गया होता ! जबतक इन्हें ठिकाने न लगा दिया जाय तबतक गाँव की शुद्धि नहीं होगी। कमलाऊ आँख से सब कुछ पीला ही दीखता है ?

रामा के साथ ही पूँजा भी भीमा का शत्रु था। शायद पूँजा को पता ही न था। क्यों कि साथ की घटना के बाद ही भीमा ने नया ब्याह कर लिया था अतः भीमा के विचारों का पता कोई कैसे लगा सकता था।

डाकेजनी के समय तो यह गाँव में ही मुहल्ले के लोगों के बीच में गप्पाष्टक कर रहा था, अतः लोंगोंको बड़ा आश्चर्य हो रहा था कि यह तो यहाँ बैठा है तो फिर कैसे मान लिया जाये कि इसका ही हाथ है डाके में ! डाके में हाथ होता तो यह क्यों रहता यहाँ। तभी इन बातों का प्रत्युत्तर देते थे दूसरे लोग : 'अरे मूर्खो ! तुम्हें क्या ज्ञान है दुनिया का ! यही तो है चालाकी, जिससे मूर्ख यही समझें कि पूँजा का हाथ नहीं है। बाहर चला गया होता तो फिर सन्देह न प्रकट हो गया होता ?

ये बातें तो बिना साक्षी के भी लोगों की आत्मा कहने लगती है।

पूँजा का हाथ न होता तो नेमीचन्द के बाल बाल बचने से पूँजा को दुःख क्यों हुआ ? भला नेमीचन्द सेठ के साथ क्या लेना देना था उसे ! और नहीं

बात यह भी देखने में आई कि इस घटना के बाद ही सात सात पीढ़ियों से प्रतिशोध की भावनावाला रामा भी भीमा का इतना जानी दुश्मन न था। क्यों कि भीमा देवा के कारण ही तो यह सारी बाजी बिगड़ गई थी, नहीं तो सेठ का नाम निशान भी न बचता ! पूँजा तो भीमा से इतना चिढ़ गया था कि बात मत पूछो। उसे तो रह रहकर भीमा का मान मर्दन करने की भावना उत्तेजित कर रही थी।

और पूँजा का मान भंग भी इस निष्फलता से काफी हो चुका था। उसकी साथ की डाकूटुकड़ी ने उसे खूब फटकारा था : 'अरे ! यह तो हमें तेरे ही गाँवमें असफलता देखने को मिली है, अन्यत्र तो हमें कहीं किसी ने चूँकारा भी नहीं सुनाया।'

अतः पूँजा ने भीमा से बदला लेने की कठोर प्रतिज्ञा ले रखी थी।

चाहे कुछ भी हुआ हो, किन्तु यह बात तो सर्वथा निश्चित थी, कि जिस परिवार का नाश रामा करना शाहता था, उसीका नाश करनेवाला एक दूसरा शत्रु तैय्यार हो गया था, यह सर्वथा निश्चित था।

★

: २२ :

एक तो मारा गया !

भीमा जब हॉस्पिटल से स्वस्थ्य हो कर घर आया तो कपास की मौसम खूब जोरों पर थी। इस अन्तिम डाके के बाद तो आस पास में लूट पाट की घटनाएँ बन्द हो गई थीं, क्यों कि मौसम की फसल थी कपास की अतः जिसने भी थोड़ी बहुत सेर आधा सेर कपास बीन ली उसी को रुपया आठ आने मिल गये।

लड़ाई का युग ! सर्वत्र प्रत्येक चीज वस्त के दाम बढ़ती पर ! शहरों की भाँति संग्रह खोरी का रोग गाँववालों को चिमट गया था, उनके पास जो कुछ भी होता, उसे वे संग्रहीत ही रखना चाहते थे। अन्नवाला अन्न दबाता था तो कपासवाला कपास !

बात भी सच्ची थी। दिनों दिन कपास के भाव बढ़ते जा रहे थे। अतः जिसके पास भी कपास रखी पड़ी थी, वे कलके मधुर स्वप्नों में खोये जा रहे थे।

इन दिनों मजदूर ढूंढ़े नहीं मिलते थे। क्यों कि कौन ऐसा मूर्ख होगा जो दिनभर मजदूरी करके चार छः आने पाये। जब बिना ही मजदूरी के थोड़ी सी कपास खेतों में से उठाने भर से ज्यादा मिल जाता हो ?

इस वर्ष तो कपास की इतनी लूट चल पड़ी थी कि क्या कहने ! इस लिए सब किसानों ने जल्दी बिनने की हत्या मचा दी थी। क्यों कि गाँववालों में एकता तो थी नहीं, अतः जो कोई भी चाहता, मजेसे एक सेर दो सेर चुराही लेता था। गत वर्ष तो खेतों की रखवाली का काम पूँजाही तो करता था, किन्तु इस वर्ष वह और ही काम में जुट गया था। सिन्धी रखे तो बड़ी मुसीबत हो गयी थी। खूब तो परस्पर गाँवमें लड़ाई झगड़ा बढ़ा और नुकशान जो हुआ सो अलग ? इस लिए इस वर्ष फिर से लोगों ने पूंजा को ही यह रखवालगिरी सौंप दी। यद्यपि प्रति दिन लोगों की चोरी बढ़ रही थी, तो भी बेचारे कुछ कर न पाते थे। कहाँ तक हानि का दाम काटते ! अन्तमें सब लोग थक गये और चुप हो बैठे।

पूँजा के तो दोनों हाथों में लड्डू थे। पूँजा रखवाली करता था और अपने ही आदमियों से चुरवाता था।

इस फसल में सर्वाधिक हानि तो देवा की हुई थी। जबसे देवा ने सेठ नेमीचन्द को डाके से बचाया था, तभी से एक रामा था ही, दूसरा पूंजा भी प्राणों का ग्राहक बन गया था। भीमा अस्पताल में था तो देवा को अकेला जानकर पूँजा ने खूब खुलकर इनकी हानि की। देवा भी चुप हो कर बैठ गया था अपनी निर्बलता और उसकी सबलता समझकर सब कुछ सहन करता चल रहा था। थोड़े समय में तो देवा की ढाई सौ रुपयों के आस पास हानि हो चुकी थी।

आधी फसल बीत जाने पर भीमा अस्पताल से घर आया था। उस दिन बाप बेटे दोनों साथ थे। चन्दा तो अपनी टेक की याद दिलाकर पीहर लौट गई थी। किन्तु अबकी बार देवा को चन्दा का वर्ताव बुरा न लगा। वह तो उलटा भीमा को ही बदला लेने के लिए उकसा रहा था। देवा ने कहा: 'बेटा! यह तो मैंने मान लिया कि बहू बड़ी तेज है, किन्तु है सच्ची! किसी की अपमान भरी बातें जान चली जाये पर नहीं सहेगी। भीमा! यदि हमने दूसरा ब्याह करने के स्थान पर बहू के अपमान का प्रतिशोध लिया होता तो कितना अच्छा हुआ होता! मुझे तो पूर्ण विश्वास है कि पूँजा जैसे नंगे ने अवश्य ही बहू की हँसी उड़ाई होगी। गुस्से में आकर दूसरा ब्याह तो छोटे मोटे सभी करकरा लेते हैं, किन्तु पूँजा की खबर ली गई होती तो आज का वातावरण ही बदल गया होता!

भला सेठ का क्रोध हमसे निकालने की क्या आवश्यकता है? करे कोई और भरे कोई! बनियों की भाँति हाथ पर हाथ धर बैठने से लाभ ही क्या है? अपमान भरे जीवन से तो मृत्यु कहीं अच्छी है!' इस प्रकार देवा अपने मन के उद्गारों को सुना रहा था।

और भीमा का हृदय तो उसी समय प्रतिशोध की आँच में भुना जा रहा था। जब चन्दा ने भीमा का साथ छोड़कर अपनी प्रतिज्ञा की याद दिलाई थी और वह बड़ी तेजी से वहाँ से चल पड़ी थी। कितनी भली है वह! मुसीबत के समय तो काम करने आ गई, और काम न रहने पर प्रतिज्ञा पूर्ति की याद दिला

कर चली गई। अतः भीमा का तो रोम रोम पहले जल ही रहा था, तिस पर भी बापकी अनुमति ने अग्नि में घी का काम कर दिया।

घर आते ही जब देवा ने सारी हानि की कहानी भीमा से कही तो उसकी आँखें रक्तिम बन गयी। उसके होंठ फड़फड़ाये और वह बोला : 'पिताजी ! क्या कह रहे हो ! सच बात है कि हमारी कपास पूंजा ने चौपट कर दी है ?'

'क्या कहते हो पूछ रहा है बेटा ! वह नाश खेत तो हाथ धोकर हमारे पीछे पड़ गया है।' देवा के स्थान पर कंकू बोली।

'और तुम योंही हाथ पर हाथ धरे देखते रहे पिताजी ?' कड़कती आवाज से भीमा ने कहा।

देवा के मनमें आ रहा था कि कह दूं : 'मैं अकेला क्या कर लेता इन नंगों का ?' पर वह कुछ न बोला।

भीमा ने कंकू की ओर देखते हुए कहा : 'माँ ! तू कितनी बार आयी थी मेरे पास किन्तु तू ने तो एक दिन भी मुख खोलकर कुछ न कहा।'

'हाँ बेटा ! मैं क्या कहती ? जले पर नमक छिड़कती क्या ?'

'तब तो वह हमें मरा हुआ ही समझता होगा माँ ?

'तुझसे कह तो दिया है कि वह अब तो रामा के सिखाये पर चल रहा है।' कंकू ने पूरी बात समझाते हुए कहा।

'माँ, देख लेंगे बदमाश को ! अब कहाँ चला जायेगा, छुप कर ? एक ही बार तो मरना होता है। बच्चू मजा न चखाया तो फिर बात ही क्या हुई ?'

भीमा के दिमाग में यही विचार चक्कर खा रहे थे। उसे क्या मालूम था कि उसके माँ-बाप उसी के बारे में बातें कर रहे हैं। किन्तु जब देवा ने चिल्ला कर कहा : 'चन्दा हमारी तरह नकटी थोड़े है जो यों ही आ जाती ?'

कंकू तो समझ रही थी कि देवा ने ही चन्दा को आने न दिया होगा; परन्तु जब देवा ने पूर्वोक्त बातें कहीं तो उसका भाव बदल गया। उसे आश्चर्य हुआ कि कहाँ तो देवा चन्दा का मुख भी देखना पसन्द न करता था और कहाँ आज उसकी स्वाभिमानिता को दाद दे रहा है ? कंकू ने अपना विचार प्रकट किया : 'क्यों यह भी क्या बात हुई जो चन्दा ने हमारे उपकार का बदला इतनी बुरी तरह चुकाया है ?'

चट से देवा बोला : 'क्यों बेचारी को दोष दे रही हो ? तुझे अपने दोष भी तो देखने चाहियें ?'

'हमारे दोष ?'

'हाँ हाँ हमारे दोष ! तुझे नहीं पता पड़ा ? किन्तु मुझे तो अपनी त्रुटि का पता चल गया है। उसने तो जो कुछ कहा पूरा कर दिखाया। हम ही ऐसे रह गये जिन्हें अपनी बातों का मूल्य नहीं मालूम है। यदि चन्दा के अनुसार पूंजा की तभी खबर ले ली होती तो आज यह नौबत न आयी होती। अब तो बात भी सारे गाँव में फैल गयी है और हमारे शौर्य का मूल्य भी मालूम पड़ गया लोगों को।'

कंकू की समझ में न आया कि देवा क्या कह गया है ? उसने बारम्बार पूछने का निष्फल प्रयत्न करते हुए कहा : 'क्यों जी ! तुम्हें चन्दा का बर्ताव बुरा नहीं लगा ?'

'मुझे बुरा क्यों लगता ? मैं भी मनुष्य हूं, दूसरे के मन की बातें समझता हूँ। कंकू ! तुझे क्या मालूम ? अब तू ही बता न कि बहू में क्या कमी है ? जब भीमा की सेवा का समय आया तो वह विना बुलाये, अपने अपमान को बिसार कर दौड़ी आयी, और अपना कर्तव्य पूरा करके प्रण की रक्षा के लिए चली गयी है। इसमें बुरा क्या हुआ है ?'

भीमा के मुख से सहसा निकल पड़ा : 'हैं ! पिताजी चन्दा का मन समझ गये न आखिरकार।' इससे भीमा के रोम रोम में नवीनता समा गयी।

फागुन की गुलाबी उजाली रात थी, मन्द-मन्द शीतल समीर बह रहा था। रात के एक दो बजे का समय था, कपास के ढोढ़े फट कर चारुचन्द्रिका की पीयूष-वर्षिणी सुषमा का पान कर रहे थे। चारों ओर अवनि-अम्बर दूध में न्हाये-से लग रहे थे। अस्पताल से भीमा के आ जाने के बाद दोनों बाप बेटे रात को कभी भी खेत में चक्कर लगाने निकल पड़ते थे। आज भी वे निकले थे कन्धों पर चौड़े चौड़े फले वाले चमकते बल्लमों को लिये। चारों ओर नीरवता का साम्राज्य था। सिवाय ज्योत्स्ना की प्यारी प्यारी कोमल चुलबुली किरणों के वहाँ किसी का पता भी न था। हाँ, पवनदेव अवश्य मुकलित कलिकाओं से कभी कभी छेड़खानियाँ कर लेता था।

बाप-बेटे नियमानुसार खेत के बीच मे खड़े होकर चारों ओर निगाह डाल रहे थे। थोड़ी देर वे सीमल के नीचे बैठे रहे। इस प्रकार आध घण्टा भी बड़ी मुश्किल से बीता था कि दोनो जने धीमे धीमे बाते करने लगे, उन्हे लगा कि कोई व्यक्ति सामने की ओर से उनके खेत में धँसता चला आ रहा है। दोनों सतर्क होकर अर्धासन में बैठ गये। और दोनों के हाथ हथियारों पर ठीक बैठ गये।

पूँजा की चोरी का ढंग विचित्र था। रात के नौ-दस बजते वह अपनी टोली के साथ खेतों में पहुंच जाता था। पूर्व दिशा में अपनी टोली को बीनने का काम सौंप कर वह स्वयं खेतों की रखवाली करता-सा पछांह की तरफ चक्कर काटा करता था। सर्वत्र निर्जनता देख कर अपने साथियों को उस ओर भेज देता था, पूर्व की ओर के काम को बीच में ही छोड़ कर। अब पूजा ने पूर्व से हटा कर पश्चिम में अपने आदमी बिठा दिये थे, और स्वयं दक्षिण में हाल-चाल देखने चला गया था। उधर ही तो थे देवा के खेत! पूजा के साथ दूसरा भी एक आदमी था। वह पूँजा से एक खेत पीछे था। उसे भली भाँति मालूम था कि भीमा और उसका बाप खेतों की रखवाली करने आया करते हैं। किन्तु उसे इस बात का कोई भय थोड़े ही था—वह तो मानता था कि खेतों की रखवाली कर रहा है और एतदर्थ किसी के खेत में घूम फिर सकता है।

पूँजा आज भी देवा के खेत में कोई रखवाल है कि नही, यही देखने आया था। जैसे ही वह कपास के पौधों को चीरता हुआ आगे बढ़ा, वैसे ही चिरपरिचित कठोर शब्द में खड़े होते हुए किसी ने पुकारा : 'कौन है रे हमारे खेत में?' पूँजा को भीमा का स्वर पहचानते देर न लगी। उसे डाके के दिन की भीमा की वीरता याद थी। उसे लगा कि आज तो भीमा से निबटना बड़ा कठिन पड़ेगा। इतने में तो भीमा के पास ही दूसरी आकृति उठती हुई दीखी। पूँजा ने समझ लिया कि यह तो देवा ही लगता है। उसके सामने मृत्यु का नग्न ताण्डव नाच उठा। उसने अपना अन्तकाल देखा, उन दोनों के रूप में। किन्तु मरना किसे अच्छा लगता है? झट से पूँजा भीमा को धराशायी करने के हेतु से उसके पास आया और आक्रमण कर बैठा। 'वह जीते जो पहले मारे' की बात उसे अभ्यस्त थी।

पूंजाने अपने बलशाली भुजाओं से पैना चमकता भाला उसके ऊपर मारा, किन्तु समय की बात ठहरी। वह दाव उसे न लग कर सीमल के वृक्ष से टकराया। बाप-बेटे को स्वप्न में भी इस बात का ध्यान न था कि पूंजा इतनी जल्दी आक्रमण कर देगा !

अब तो भीमा को अवकाश ही न था विचार करने का। उसने पूंजा के रिक्त दाव के प्रत्युत्तर में बड़ी तेजी से आक्रमण किया। किन्तु पूंजा भी तो खिलाड़ी था, उसने दाव को उकाना चाहा था, परन्तु उसे सफलता न मिली और पूंजा की गरदन को चीरता हुआ भीमा का बल्लम ठीक निशाने पर बैठा। भीमा चाहता तो न था कि पूंजा मारा जाता, पर दैवेच्छा ठहरी। किन्तु तेज घाव खाकर भी पूंजा प्रतिशोध लेना चाहता था, घायल होते हुए भी उसने जैसे ही भीमा को मारने के लिये बल्लम उठाया ही था कि देवाने उसे रोकना चाहा। पर भीमा तो वीर था, उसे यह बात पसन्द न आयी कि एक को दो मारे। उसने बाप को रोकते हुए कहा : 'पिताजी ! आप क्यों खून से हाथ रँगते है ?' इतना कहते ही भीमा ने पूंजा का प्रयास विफल करके ऐसा करारा दाव मारा कि पूंजा उसे खाकर फिर न उठ सका।

विजयी भीमा ने धराशायी पूंजा की दयनीय दशा को देख कर कहा : 'अरे पागल ! तू ने यह क्या करा लिया ?'

मरते हुए पूंजा के मुख से जोर की चीस निकली। उसका साथी समझ गया कि पूँजा सदा के लिए उनका साथ छोड़ कर चला गया है।

वह दबे पाँव पूंजा के वधस्थल के निकट आकर खड़ा हो गया। वे दोनों तो उसकी असम्भावित मृत्यु से कांप गये। उनकी इच्छा उसके प्राण हरने की न थी। पर वह मर गया तो वे क्या करते ? हाँ वे कुछ समय तक विचारों में इतने खोये कि उन्हें पता भी न रहा कि कोई खड़ा खड़ा उनके सारे कर्तबों को देख रहा है !

अब तो बेचारों के पास सिवाय पूँजा के शव को अन्तर्धान करने के और कोई उपाय न था, भीमा ने तो उसकी गटरी बना कर उसी के कपड़ों में बाँध ली और देवा ने वहाँ की रक्तिम मिट्टी और रक्तांकित कपास के पौधे दूरदूर काट कर सफा:कर दिया। उसे डर था कि कही खून की एक बूँद भी रह गयी तो उनका मृत्यु रहस्य प्रकट हो जायेगा। अतः वे दोनों भरसक प्रयत्न करते रहे कि

कोई प्रमाण शेष ही न रहे। इसी भाव से उन्होंने सारी रक्तरंजित मिट्टी बराबर कर दी और दूरदूर तक के कपास के पौधे काट डाले थे।

परन्तु उनको क्या पता था कि तीसरा जना उनकी कारस्तानी देख रहा है। तीसरा जना न भी होता तो भगवान् तो सर्वसाक्षी सब कुछ भला बुरा देखता ही है।

उन्होंने देखा कि इधर खेत ही खेत हैं, अतः यहाँ पर तो पूँजा की गति नही हो सकेगी। सामने नदी है थोड़ी दूर पर, यदि उसके पार अंग्रेजी सीमा में ले जाकर उस मुर्दे को जला डालें तो किसी को पता भी नहीं चलेगा और उस पार यहाँ की पुलिस भी नही जा सकेगी। पर उधर जाना बड़ा कठिन था! प्राणों की बाजी झूठमूठ में कौन लगाये?

उन्होंने झटपट अपने गाँव की सीमा को लाँघा, यह स्थान सदा से बुराइयों के लिए बदनाम था। दिन में भी वृक्षों के सघन कुञ्जों में छिपा हुआ आदमी दिखायी नही पड़ता था। रात को तो चोर, डाकुओं की राजधानी ही रहती थी। उस स्थान पर दोनों राज्यों की सीमा थी। इस पार या उस पार के सारे विषम अपराध इसी सीमास्थल पर आ जाते थे। दोनों राज्यों की सीमा पर नदी की खाई थी, जो दोनों राज्यों को अलग करती थी। स्थान की नीरवता ही सर्वाधिक अपराध की पृष्ठभूमि थी। वहाँ की मिट्टी काली थी अतः किसी को जला दिया जाय तो मिट्टी से पता भी नहीं चलता कि किसी ने किसी को जलाया है यहाँ पर।

यद्यपि पुलिस वाले इस बात के चिर अभ्यस्त थे कि जिस राज्य की सीमा में अपराध के चिह्न मिलते थे, वे स्वयं कल्पना कर लेते थे कि अपराध विरुद्ध सीमा में हुआ है, और इसी आधार पर हमेशा अपराधी पकड़ लिए जाते थे। तो भी अपराधी इसी उपाय को काम में लाते रहते थे। इन्होंने भी यही उपाय किया। और ब्रिटिश सीमा में उन दोनों ने उसकी एक छोटी सी चिता बना कर भून दिया। इस काम में उन्हें एकाध घण्टा लगा होगा। तब तक वे दोनों पापी हृदय से उस जलती चिता को देखते रहे।

परन्तु उन दोनों को इस बात का पता भी न चला कि दूर खड़े पाँच-छः आदमी उन दोनों के इस कलंकित कार्य को देख रहे हैं।

सच है पापी हृदय से सोच विचार तो कभी का दूर हो जाता है।

: १२ :

पकड़े गये

रामा को बहुत दिनों तक भी जो अवसर प्रतिशोध लेने का न मिला था, वह आज अनायास ही मिल गया । जैसे वे दोनों बाप-बेटे उस सघन कुञ्ज एवं खाड़ी की ओर बढ़े थे कि रामा लम्बे लम्बे डग भरता हुआ वहाँ से रफूचक्कर हो गया। और गाँव में जाकर रुका ।

वस्तुत: बिना साहस और साधन के दूसरों के बलिदान पर ऐसा सुअवसर कभी कभी किसी भाग्यवान् को ही मिलता है।

उसके मन में पूँजा की मृत्यु का शोक न था, इस साथी की मृत्यु से उसके वैर साधन की भावना बह रही थी। उसे पूँजा से क्या लेना देना था, वह कोई पूँजा की भाँति नंगा थोड़े ही था। वह तो सिवाय देवा से बदला लेने के और किसी दुष्कार्य में थोड़े ही सम्मिलित था। पूँजा की भाँति वह दुष्ट या घाती होता तो देवा से कभी का प्रतिशोध ले लिया होता उसने ! उसने तो पूँजा के सहयोग के लिए कब बढ़ाया था हाथ ?

हाँ इस कपास की ऋतु में रामा प्रथम बार ही पूँजा के साथ रात को घूमा करता था। शायद एक या दो बार को छोड़ कर रामा ने इन लूट के पैसों की शराब तो अवश्य पी थी और किसी फैल में न था वह ! तो भी कई बार रामा पूँजा के इस कार्य की निन्दा कर चुका था ।

रामा वनिया वृत्ति का था। वह साक्षात् बुराई की अपेक्षा द्रविड़ प्राणायाम की प्रणाली अधिक पसन्द करता था। उसने सोच लिया था कि दोनों में से एक भी मारा जायेगा तो एक न एक का भार कम होगा। एक शत्रु था तो दूसरा नामांकित पापी ! दोनों की मृत्यु से लाभ था उसे ।

अब तो रामा के मस्तिष्क में एक ही विचार घूम रहा था कि जल्दी जाकर मुखिया को खबर दी जाये और उसे गवाह बना कर देवा का रोड़ा रास्ते में से दूर किया जाय। यदि समय पर मुखिया को बराबर सूचना न मिली तो मुश्किल हो जायेगी। फिर तो ये दोनों शत्रु छूट जायेंगे और तब इन्हें मारना असाध्य बन

जायेगा। भला बिना दो चार गवाहियों के वे दोषी कैसे बनेंगे? और फिर तो वे साफ साफ बच कर निकल जायेंगे। हाँ थोड़ी सी सावधानी से इन दोनों को फाँसी या कालापानी हो सकता है। कालापानी होने पर तो बीस वर्ष में एक तो वहीं का मेहमान हो जायेगा, दूसरा बच कर आया भी तो क्या मजा आयेगा उसे जिन्दगी का?

वह सीधे लपकता हुआ मुखिया के घर पहुँचा। गली में घुसते ही कुत्तों ने उसका सत्कार किया। मुखिया के मकान के सहन में ही सोता हुआ चौकीदार रणछोड़ कुत्तों की आवाज सुन कर जाग पड़ा। उसने सामने खड़ी स्पष्ट मूर्ति से तीखी वाणी में पूछा : 'कौन है रे?'

'कोई नहीं, में हूँ--रणछोड़।'

'हैं! रामा भाई हैं क्या?' चौकीदार रामा का शब्द पहचान कर बोला। उसने देखा कि रामा का साँस चढ़ा था, सारा शरीर पसीने में सराबोर हो रहा था। रणछोड़ तो बीस वर्ष का चिरानुभव अपने ज्ञानी मस्तिष्क में छिपाये था। उसने तुरन्त समझ लिया कि कोई गम्भीर घटना घटी है, तभी तो रामा पसीने-पसीने है और हाँफ रहा है। उसने पूछा : 'क्यों रामा भैय्या! क्या बात हो गयी है? कुशल क्षेम नो है न?'

रामा को दुनिया भर की उतावल थी। उसने रणछोड़ से कहा : 'अरे मुखिया को जल्दी आवाज दे न।'

रणछोड़ ने धीरे धीरे दो तीन आवाजें दीं, परन्तु कोई अन्दर से न बोला। रामा को एक एक क्षण घण्टों के समान बीत रहा था। उसने जोर से पूछा : 'क्यों रणछोड़! मुखिया घर पर नहीं हैं क्या? आवाज दे न जोर से! परन्तु रणछोड़ के आवाज़ मारने से पूर्व ही रामा ने जोर से हाँक मारी : 'ओ मुखिया जी! ओ मुखिया जी!'

तभी अन्दर से आवाज आयी : 'कौन है बाहर?'

'पूँजा का खून हो गया है।'

'किसने किया है?'

मुखिया की आँखों के सामने खूनी केस की सारी मुसीबतों का चित्र नाचने

लगा। उसने क्रमशः देखा : पलिस के भयंकर अत्याचार, धन-शोषण, गाँव-गाँव में जाकर जनता के ऊपर असीम कष्टों का संनिपात का निर्मम दृश्य प्रत्यक्ष हो उठा था। तभी उसे खून सुन कर भाँति-भाँति के विचार घेर रहे थे।

'क्या तुमने अपनी आँखों से खून होते देखा है ?' मुखिया ने पूछा।

'हाँ हाँ चलो न तुम्हें मुद्दामाल के साथ पकड़वा दूँ।'

'हमारी सीमा में है न ?'

'खून हमारी ही सीमा में हुआ है, पर तब तक दूसरी सीमा में चला जायगा। जल्दी करो मुखिया !'

मुखिया को सिवाय रामा की शिकायत लिखने के अन्य कोई चारा न था। क्योंकि भीमा तो भाईबन्द थे। जो इस शिकायत के लिखने में विलम्ब करते तो सरकारी दृष्टि में अपराधी बनना पड़ता। उसने रामा को शान्त करते हुए कहा : 'ठहर तो जा भाई थोड़ी देर ! भला खूनियों का एक-दो-जने क्या कर सकेंगे ?'

'किन्तु तब तक तो...... ..।'

'हाँ ! मैं समझ गया तुम्हारा भाव।' तो भी रामा को मुखिया की बातों पर विश्वास न आया। उसे तो लग रहा था कि मुखिया जान-बूझ कर देरी करना चाहता है। रामा ने तो भी अपने मन को प्रकट न होने दी, वह बोला : 'नम्बरदार ! मैं जरा घर हो आऊँ तब तक तुम तैयार हो जाओ।'

रामा जल्दी जल्दी घर गया और अपने बड़े पुत्र भावा को साथ लेकर दो तीन और सशक्त पुरुषों को लाकर मुखिया के घर आ गया और उसने जोर से नम्बरदार को आवाज दी।

नम्बरदार ने पाँचों चौकीदारों को साथ लेना उचित समझा था, किन्तु तीन अनुपस्थित थे, अतः दो को लेकर ही चल दिया आगे। अब ये सात आदमी द्रुत गति से खेतों को पार करते हुए आगे बढ़ रहे थे। रामा उन्हें घटनास्थल दिखाने के बाद आगे उधर ही ले गया जिधर वे दोनों शब को ले गये थे। गाँव की सीमा के बाद वही सघन कुञ्ज एवं नदी की काली मिट्टी वाली खाड़ी आ गयी। मुखिया ने रामा से पूछा : 'कहाँ हैं वे खूनी ?'

रामा ने ब्रिटिश सीमा में अग्नि के प्रकाश की ओर संकेत करते हुए कहा : 'देखिये वहाँ पर हैं, उधर ही चलें तो ?'

मुखिया ने अनुमानतः बताया कि वह स्थान तो दूसरे राज्य में पड़ता दीखता है !' तभी वे ऊपर एक टेकरी पर चढ़े तो उन्होंने स्पष्ट देखा कि दूसरे गाँव की सीमा में दो आदमी चिता जलाकर राख करने जा रहे हैं। और वृक्ष के तने के पीछे छिपे वे दोनो हैं ?'

'अच्छा यह तो बताओ कि वह स्थान किसकी सीमा है ?'

'मुखियाजी ! है तो दूसरे राज्य की सीमा में ही !'

'तो भई ! माफ करो, हमारे काम का यह काम नहीं है ! भला हमें दूसरे की सीमा में जाने का क्या ?'

'तो मुखिया ! फिर वह जल भी जायगा, कोई उपाय निकालो न ? मेरा बुढ़ापा तुम्हारे हाथ है ?' रामा की आवाज मे दीनता थी।

मुखिया ने स्वयं उपाय बताया : 'जाओ उस पार के गाँव के मुखिया के पास, उसी से शिकायत करोगे तो बात बन जायेगी ?'

रामा के बाल धूप में सफेद नही हुए थे। वह जल्दी से दूसरे राज्य के गाँव में गया और रास्ते में पड़ती चिता को आस पास निर्जन जान कर बुझा दिया। तो भी उसके प्रयत्न से कोई विशेष लाभ न हुआ। वह चिता लकड़ियों की न थी, किन्तु झाड़झंखाड़ों की थी। और मुर्दे की सूरत इतनी ही आग से इतना विकृत हो गयी थी कि पहचानने में नहीं आ रही थी। परन्तु रामा को भी क्या आवश्यकता थी, कि वह मुर्दे को पहचानता, वह तो अपने आदमियों को लेकर गाँव के मुखिया के पास गया और उसको घटनास्थल पर लाया, नम्बरदार ने तुरन्त चिता में से मुर्दा खिचवाया और उसके पहरे पर भंगी तथा चौकीदार रखकर वह थाने खबर देने चला गया।

रामा को तो विश्वास था कि अब भी मुखिया की ओर से कहीं गड़बड़ी न हो जाये अतः उसने अपने आदमी भी वहाँ मुरदे के पहरे में लगा दिये थे। थोड़ी देर में तो दोनों गाँवों के पुलिस थानेदार आ धमके। आज की घटना से पुलिस वालों की बन आयी थी। एक ओर तो मुरदा पड़ा था अधजला, और

दूसरी ओर प्रजा के सेवक खीर पूरी खाने की तैयारी में थे। वाह रे न्याय के पुतलो ? किसी को क्या पता है कि एक मृत्यु के कारण ये जन-रक्षक कितनों का नाहक खून करते हैं ? ये मामले की छान बीन बिना खाये पीये थोड़े करते हैं ?

अन्त में सब कुछ हो जाने के बाद पुलिस ने अपराधियों से बयान लेने का श्री गणेश किया। परन्तु पुलिस की शर्त थी कि बयान वहीं होने चाहिये। प्रायः पुलिस के इन सशर्त बयानों के कारण तो पुलिस विभाग को कोर्ट की कड़ी फटकारें एवं चेतावनियाँ सहनी सुननी पड़ती हैं, तो भी ये न्याय परायण कब किसी की परवाह करते हैं ?

देवा और भीमा रात को देर से आये थे। अतः कंकू ने जब देवा से देर से आने का कारण पूछा तो उसने सिवाय मौन के और कुछ न कहा। कंकू तो उसका स्वभाव जानती थी अतः बिना पूछे ही चुप हो ली। दोनों ने सोने का प्रयत्न किया पर नींद कहाँ थी !

दो तीन घंटे यों ही बीत गये थे, तभी दोनों को थानेदार का बुलावा आ गया। देवा ने तो निश्चय कर ही लिया था, परन्तु भीमा के विचार का किसी को क्या पता है ? देवा सोचता था कि इतनी जल्दी किसी को इस बात का पता नहीं चलेगा. परन्तु अब तो भावी हो ही रही थी।

भीमा नहीं चाहता था कि उसका बाप झूठमूठ में पूँजा का घातक माना जाय। किन्तु भीमा की अवस्था एवं परिवार का भार समझते हुए उसने भीमा के बदले स्वयं को दोषी सिद्ध करने की चाल चली। यद्यपि यह असत्य बात भीमा को कतई पसन्द न थी। और देवा ने यही बयान पुलिस के सामने देने का निश्चय कर लिया था।

भीमा ने अनेक बार प्रयत्न किया कि देवा को स्पष्टतया कह दे : 'नहीं पिताजी ! यह नही होगा ?' परन्तु वह चाहता हुआ भी न कह सका। शायद देवा के पितृत्व ने उसके मुख में कुछ ठूँस दिया था ?

भीमा के कानों में एक ही प्रति ध्वनि गूँज रही थी कि : 'भीमा ! रहने दे न ! इन बातों को। मेरा अन्तिम समय तो सुधर लेने दे !'

वह बड़ी मुश्किल से कहता : 'अपराधी तो..........'

झट से देवा लाल लाल आँखों से उसे डपट देता था : 'भीमा ! फिर भी बात की न ?'

बयान के समय देवा और भीमा अलग अलग कोठरियों में बन्द रखे गये। यदि मुखिया स्वभाव का चलता पुर्जा होता तो उसने देवा की सहायता अवश्य की होती। परन्तु आज तो वह अपने सगे सम्बन्धी की कोई भी सहायता न कर पाया। इस बात का उसे रह रह कर पश्चाताप हो रहा था। उसे यह बात जी भर के काट रही थी कि यह क्या तमाशा है ? मैं तो पुलिस एवं सभी सरकारी कर्मचारियों की सेवा करता करता मरे जा रहा हूँ पर मुझे इनकी सेवा से छदाम का भी लाभ न हुआ। शंकरराव थानेदार तो इसके स्वभाव से खूब परिचित था अतः यदि मुखिया ने देवा को बचाने का यत्न किया होता तो भी शंका तो पड़नी ही थी। और दूसरी बात यह भी हुई कि मुखिया देवा के साथ मिल भी न सका। क्योंकि इस लबड़ धोंधों में उसे समय कहाँ से मिलता ?

यद्यपि देवा एवं भीमा को किसी ने पकड़ा न था, पर इससे क्या बनता है ? देवा ने सब के सामने ना कहने पर भी स्वीकार कर लिया था कि यह हत्या मैंने की है।'

पुलिस तो चाहती थी कि दोनों को ही अपराधी बनाया जाय। परन्तु देवा इसके लिए सर्वथा दृढ़ था। भीमा ने भी वही अभ्यस्त प्रत्युत्तर देकर छुट्टी मान ली। पुलिस ने सर्वथा कुरेद कुरेद कर बातें पूछनी चाही। किन्तु उसके सारे हथकण्डे व्यर्थ हो गये। थककर उनके बयान ले लिये और और हथकड़ियाँ लगा कर फिर दोनों को जेल में भर दिया। और पूँजा के मृत शरीर की माँग ब्रिटिश थानेदार से की।

इस घटना से सारे गाँव में हाहाकार मच गया।

—★—

: २८ :

तीन दिन में

'मां ! मां !' चन्दा ने आकर कंकू को पुकारा। बेचारी कंकू की दुर्दशा कितनी हो गयी थी ! रात ही रात में क्या से क्या हो गया था। कंकू को तो बिलकुल पता ही न था कि यह सब कैसे हो गया है। लोगों की भाँति उसे भी दोनों के पकड़े जाने पर ही सारी बातें ज्ञात हुईं। वैसे तो कंकू कायर न थी, परन्तु पति पुत्र दोनों के चले जाने से उसे निराश जरूर होना पड़ा था।

रामा तो इनका सात पीढ़ियों का शत्रु था। अत: वह अकेली कंकू को सब प्रकार से तंग अवश्य करेगा। वह यद्यपि घर में अकेली थी, साथ में दो बच्चे, दमा का रोगी शरीर, मेहनतकशी का जीवन, और तिसपर भी खून का अपराध ! न जाने क्या सजा होगी ? अत: कंकू का चित्त अत्यन्त चंचल हो गया था ! उसे पता भी न चला कि वह समय कैसे कट रहा है ?

चन्दा को उनकी गिरफ्तारी के अगले ही दिन खबर पड़ी। भला अब वह पीहर में कैसे रह सकती थी। उसकी प्रतिज्ञा पूर्ण हो गयी थी, अत: वह अगले प्रात: या मध्याह्नकाल में ही सुसराल जाने के लिए तैयार हो गयी।

माँ बाप ने चन्दा की जाने इच्छा भाँप ली, और वे कुछ न बोले। गाँव वाले भी इस अप्रत्याशित घटना के बाद अकस्मात् चन्दा के जाने की बातें सुनकर स्तब्ध हो गये। सब बहुत कुछ कहना चाहते थे चन्दा से उसी की भलाई के लिए, किन्तु चन्दा की आकृति को देखकर कोई कुछ न बोला।

चन्दा भला किसी काम में कब पूछती थी किसी को भी जो आज जाते समय किसी से पूछती ? उसे कोई न कहे या हाँ, किन्तु चन्दा का निश्चय तो अडिग होता था। रयजी पिता होकर भी चन्दा से कुछ न बोला। चन्दा से इतना ही कहा : 'तुझे सुसराल तक पहुँचा दूँ चन्दा ?'

'नहीं पिताजी ! मैं अकेली आयी थी तो अकेली चली जाऊँगी, इसमें कष्ट करने की क्या आवश्यकता है ?'

चन्दा जा रही थी सुसराल और सारा गाँव उसकी निर्भयता को खड़ा खड़ा

दाद दे रहा था ! उसने घाघरा की लाँग मार ली थी । जाने यह इसकी गति में अड़चन डाल रहा हो । उसके एक हाथ में कपड़ों की पोटली थी और जल्दी चलने के लिए दूसरे हाथ की मुट्ठी बँधी थी । इसके पैर सिर की समानता में बढ़ रहे थे । मानों कोई हरकारा झूमता झामता आगे बढ़ रहा हो । ऐसा लग रहा था जैसे काया तो पीहर में हो और आत्मा सुसराल में और वह उड़ रही हो ।

चन्दा किसी समस्या में न थी, उसे तो ऐसे प्रसंग अच्छे लगते थे । क्योंकि साहस ही सच्ची सम्पदा होती है ।

भीमा का वियोग भी चन्दा को कुछ सोचने के लिए विवश न कर सका । वह तो इस प्रेम की झूठी मोहिनी को प्रेमपावक में तिल तिल कर जलते रहना अधिक पसन्द करती थी । चन्दा तो भीमा को जाने मन ही मन शाबाशी दे रही थी : 'तुमने बहुत अच्छा किया ! वीरों की पहचान ऐसे ही समय में होती है । घबरा मत जाना, जब तक चन्दा जीवित है तुझे किसी बात की चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं है ।'

इन्ही विचारों में उलझी हुई चन्दा बड़ी द्रुत गति से सुसराल की सीमा में प्रविष्ट हो गयी । चन्दा को देखते ही लोग बाग ऐसे भड़कने लगे जैसे मरखने विजार को देखकर विदकते हैं । वे सब चिल्ला रहे थे: 'चन्दा आ गयी, वेरचा की बहू चन्दा आ गयी । अब क्यों आयी होगी ? फाँसी पर चढ़ने क्या ?'

सीमा में घुसते ही इसको देखकर पानी भरनेवाली पनिहारिनें जहाँ की तहाँ खड़ी हो गयीं । आश्चर्य के मारे कितनी ही स्त्रियों के हाथों में से रस्सियाँ कुएँ में छूट गयी थीं । अनेक के घड़े तो डगमगाते-डगमगाते गिरने से रह गये ।

चन्दा के आने की खबर विद्युत्-गति से सारे गाँव में फैल गयी । जितनी नवीनता खून करने के बाद भी गाँव में पैदा न हुई थी, उतनी से अधिक चन्दा के आने से हो गयी थी ।

घर में घुसते ही चन्दा ने हाँक मारी : 'माँ ! माँ !'

'माँ माँ' की मधुर ध्वनि सुन कर कंकू ने आँखें उठायीं द्वार की ओर, किन्तु आगन्तुक को देखने पर भी उसे अपनी आँखों पर विश्वास न हुआ ।

चन्दा ने घर में घुसते ही सास का रूक्ष एवं मुर्झाया चेहरा देख कर पूछा : 'माँ ! मुझे नही पहचाना क्या ?'

'तू कौन है ? भला तुझे न पहचानूंगी ? पर जरा मैं भूल-सी रही हूँ, तेरा ना...म..........?' वह बहुत यत्न करने पर भी उसका नाम न कह सकी।

चन्दा का भी हृदय था, उसने कंकू की उन्मत्त दशा भाँप ली, उससे न रहा गया, वह तुरन्त ही विक्षिप्तप्राय सास से लिपट गयी और भारी आवाज से बोली : 'माँ ! मैं तुम्हारी बहू चन्दा हूँ, पहचाना न अब तो ? हैं ! तुम्हे यह क्या हो गया है ?'

कंकू के मुख से निकल पड़ा : 'तू चन्दा है ! मेरी बहू ?' इतना कहते ही कंकू की आँखें खुली-की-खुली रह गयी। चन्दा बेचारी कुछ न समझ सकी।

पड़ोस-में-से दो-चार स्त्रियाँ चन्दा को देखने आ गयी थी, उन्होने कंकू की सारी विक्षिप्त दशा चन्दा को सुनायी। यद्यपि कंकू तीन दिन से कुछ बोल न रही थी तो भी किसी को उसकी मत्तता का थोड़ा भी भान न था। किन्तु चन्दा के आते ही कंकू का चित्तभ्रम प्रकट हो गया। उसका रोगी कृश शरीर तीन दिनों के असह्य सन्ताप से कुछ-का-कुछ हो गया था। उसके चेहरे पर बिखरे बाल एवं अस्तव्यस्त मुखाकृति दया की पस्ती सिद्ध करते थे।

चन्दा के जीवन में यह प्रथम अवसर था, जबकि वह किसी के कष्ट को देख कर रो रही थी। पुरुषत्व की प्रतिभा से पूर्ण इस विशिष्ट नारी के रोदन ने आगत स्त्रियों को भी पशोपेश में डाल दिया।

यद्यपि दोनों छोटी ननद और देवर को भाभी के आने से बड़ी प्रसन्नता हुई थी, तो भी तीन दिन पूर्व की घटना ने उनके आनन्द को मसोस दिया था। कोई कहता था कि तुम्हारे भैय्या-बाप अब घर नही आयेगे कभी भी, कोई कहता उन्हें तो अब फांसी होगी, पर अबोध बच्चे फाँसी की बात तो कतई नहीं समझते थे। उनकी माँ की दशा बड़ी दयनीय हो गयी थी। वह तो उन नादान बच्चों के किसी प्रश्न का उत्तर ही न दे सकती थी। फिर वे सहमे बच्चे किससे मन का रोना रोते ?

कल ही तो कालेपानी की बात सुन कर जेली को कितना दुःख हुआ था ? उसे लग रहा था कि अब उसके भाई-बाप कभी नहीं आयेगे घर में। उस अबोध ने कालेपानी की बात अपने नन्हे भाई से पूछी : 'क्यों भैय्या ! यह कालापानी

कहाँ है, जहाँ से बाप और हमारे प्यारे भैय्या कभी लौट कर नही आ सकते ?'

बेचारा राहो भी क्या जानता था कि कालापानी क्या होता है ? तभी उसे माँ की याद आयी, वे दोनों स्वाभाविक रूप में दौड़ कर माँ के पास आये और पूछने लगे : 'माँ ! लोग कहते हैं कि पिताजी और भैय्या को सरकार कालापानी भेजने वाली है, बता तो सही वह कालापानी कहाँ है ?'

बेचारी कंकू को बच्चों की यह बात सुन कर बड़ा दुःख हुआ। वह इन दोनों की निश्छलता एवं दैवी क्रूरता पर आँसू बहा रही थी। भला वह क्या बताती कि वे दोनों कालापानी में कहाँ भेज दिये जायेंगे ? उसकी बुद्धि में बच्चों के इस प्रश्न ने उथल-पुथल मचा दी थी व तभी से वह पागल-सी बन गयी थी।

दो दिनों से वह सिवाय रोने के और कुछ नहीं कर पा रही थी, पास-पड़ोस की स्त्रियाँ एवं नेमीचन्द सेठ उसे खूब समझाते थे, पर यह कैसे मान जाती किसी के मिथ्या आश्वासन को ? उसके व्यवहार में इतना अन्तर आ गया था कि बच्चों को उसे माँ कहने में भी भय-सा लगने लगा था। किन्तु वे दोनों कुछ बोलती नहीं थीं।

आज यों ही कंकू ने 'मेरे बच्चो !' कह कर गोदी में बिठा लिया था, पर वह अपने हृदय के भावों को प्यार के रूप में न बदल सकी।

आगे फिर जेली ने पूछा : 'क्यों अम्मा ! कालापानी इतनी दूर है जितना मामाजी का गाँव है ? या अधिक दूर है ?' राहो तो जब कभी इच्छा होती ननिहाल चला जाया करता था, उसे क्या मालूम था कि कालापानी 'जो चाहे वह चला जाये' वाली बात से बिल्कुल पृथक् है। कंकू बच्चों की बाल-सुलभ बातें सुन कर हतप्रभ हो गयी और प्रत्युत्तर देने के स्थान पर वह तो फूट-फूट कर खूब रोयी। अन्त में उसे मूर्च्छा आ गयी। बच्चे यह देखते रहे, और आज जब भाभी भी आकर रोने लगी तो वे कालापानी का अर्थ न समझ सके।

जेली को माँ की अपेक्षा भाभी अधिक प्यारी थी, जब तब वह तो भाभी के कान पकड़ कर चुम्मा लिया करती थी, भोजन पकाने के समय वह छोटे कामों में हँसी-खुशी उस का साथ दिया करती थी। किन्तु आज तो उसकी प्यारी भाभी के

गुलाबी गाल रूखे-सूखे और आभाहीन लग रहे थे । उसका जी चाहता था कि भाभी से मस्ती करे पर मुखवर्ण देखते ही वह रुक जाती थी।

आखिरकार जेली के संतोष का बाँध टूट गया और वह भाभी की मीठी गोद में बैठ कर पुराने स्वप्नों को याद करने लगी। शोक सन्तप्त भाभी को भान हुआ कि वह तो अपना स्वरूप ही भूल गयी है। उसने प्यार से जेली की पीठ थपथपायी और वह उसी पुरानी तर्ज से बोली: 'मेरी जेली रानी ! बोल, माँ तुझसे नाराज तो नहीं है ?'

राहो भी अपनी भाभी से बड़ा प्यार करता था। और कोई कुछ कहता या मारता तो राहो को बड़ा बुरा लगता, किन्तु भाभी की मार तो उसे इतनी मीठी मनभावनी लगती कि उसका जी करता कि भाभी कुछ और मारती तो कितना अच्छा होता ! राहो के पास भाभी के प्रेम का सच्चा पैमाना भी था, वह रोज भाभी की सेवा-भावना को देखा करता था। वह फटे कपड़े सिलती. मैले कपड़े धोती, पुस्तकें, कलम, स्याही का बराबर ध्यान रखती थी। फिर राहो भाभी की मार को प्यार से न चाहे तो क्यों भला ? खाने-पीने की बातें भी निराली थीं। भाभी देवर के लिए खेतों में सीताफल, बेर, नींबू, चने ज्वार के होले आदि बना कर दिया करती थी, और ऊपर का प्यार जो करती, वह लभाव का था।

पहले राहो को हिम्मत ही न होती थी कि वह उदासीन निष्प्रभ खोयी-सी भाभी से बोले, किन्तु चन्दा के म्लान मुख की छवि खिलते ही, कली के मुस्कुराते ही राहो से न रहा गया। जेली की जगह पर उसी ने भाभी के प्रश्न का प्रत्युत्तर दिया: 'भाभी ! जब से भैय्या पकड़े गये हैं, तब से एक अक्षर भी नहीं बोलती, गुमचुप बैठी रहती है।' चन्दा राहो की बात में चतुराई देख कर चकित हो गयी, उसने भाभी से भैय्या की बात कही, अपने बाप की नहीं। हाँ राहो भी जानता था कि भाभी के साथ का तो सम्बन्ध तो भैय्या की बदौलत ही तो है।

भोजन का समय हो गया था, किन्तु घर में खाने-पीने का कोई आसरा न था। चन्दा ने अपने स्वाभाविक स्वर में पूछा: 'भैय्या ! कुछ खाया-पीया है ?'

जेली बोली: 'भाभी ! तू भी कैसी बात पूछ रही है ? माँ भोजन पकाती ही कब है ? उसे तो रोने से छुट्टी नहीं मिलती।'

'खाती भी नही है न ?' यद्यपि माँ का चेहरा इस बात का साक्षी था, तो भी चूल्हे की ओर बढ़ते हुए चन्दा ने पूछा ।

'ओ हो बच्चों के लिए तो तड़फ रही है ।' जेली ने आगे कहा : 'कल मरगी भाभी ने थोड़ा-सा जबर्दस्ती खिलाया था, तो उसके चले जाने के बाद माँ ने उलटी करके वह खाया-पीया निकाल दिया ।'

'तो तुम दोनों ने क्या खाया था ?' चन्दा ने चूल्हा सुलगाते हुए पूछा ।

'हमें भी मरगी भाभी अपने घर ले गयी थी, एक समय । दूसरे समय यहीं पर कुछ खाने को भिजवा दिया था ।' राहो ने कहा ।

चन्दा को अब घर की चिन्ता पड़ गयी थी । दोनों बच्चों को तो ठीक है किन्तु सास की सेवा की समस्या टेढ़ी खीर थी । और ऊपर से स्वयं का दुःख भी झेलना था । तो भी वह समयानुसार भोजन पकाने में लग गयी ।

तीन दिन से सारा-का-सारा घर उजाड़ पड़ा था, पलेडे में एक घड़े में थोड़ा-पानी पड़ा था । बुहारी न थी, न ही अस्तव्यस्त चीजें सँभली थी । बाहरब करी, भैंस, गाय और बैल मारे भूख के रस्सियाँ तोड़ने की कोशिशें कर रहे थे । आज का दृश्य बड़ा ही विचित्र था । चन्दा ने तुरन्त ही एक मोटी रोटी सेक कर राहो से कहा : 'मेरे प्यारे भैय्या ! ले गुड़ के साथ यह खा ले और पशुओं को चराने ले जा । कितना राजा भैय्या है ? देख तो ले इनकी भी क्या दुर्दशा हुई है ?'

जेली बोली : 'क्यों भाभी ! मुझे नही गुड़ रोटी !'

'दूगी क्यों नही रानी मुन्नी ?' चन्दा ने मुस्कराते हुए दूसरी रोटी सेक कर ऊपर से गुड़ रख कर जेली को दी ।

चन्दा को लगा कि वह स्वयं भी सिर पच्ची करेगी, तो भी माँ तो खाने वाली नहीं है. अतः उसने रोटियाँ पो-पाकर रख दीं पिटारी में ।

जेली बोली : 'भाभी ! तू नहीं खायेगी क्या ?'

'नहीं रानी ! अभी मुझे भूख नहीं है, मैं और माता जी साथ ही थोड़ी देर बाद खायेंगी ।' इतना कहकर चन्दा दूसरे काम काज में जुट गयी । पहले भैंस गाय को थोड़ी सानी खिलाई, सास का घाघरा बदलवाया, दूध दुहा, यद्यपि भैंस

ने पहले पहल तो उसे आँचल में हाथ भी न लगाने दिया थ, तो भी चन्दा की युक्ति से भैंस ने दूध दिया।

उन सभी ढोरों को छाया में घास भूसा डालकर बाँध दिया। घर में बुहारी लगायी, गोबर से लीपा पोता। गन्दे कपड़े निकाले साथ में नदी पर ले गयी, सारे बर्तन भाण्डे माँजे और नदी से पानी भर कर लायी।

दो तीन घण्टे में घर की सफाई हो सकी।

कंकू यद्यपि कुछ बोलती न थी, तो भी उस की आँखों में अतीत के चलचित्र मूर्तिमन्त से घूम रहे थे। अब उसके मस्तिष्क का भार थोड़ा हो रहा था, जैसे किसी ने बड़े प्रेम से उसका सारा बोझा चुपके से उतार लिया हो, ऐसे ही कंकू स्वयं को काफी स्वस्थ समझने लगी। उसका बोझीला सिर फूल जैसा लगने लगा था।

तीन घण्टों के बाद चन्दा ने घर के सारे कामकाज से निवृत्त होकर सास से कहा : 'माँ !'

'क्या है बेटा !' कंकू के मुख से तीन दिनो के बाद यह स्पष्ट आवाज पहले पहल निकली थी। किन्तु इस शब्द से चन्दा को कोई सन्तोष नहीं हुआ ! वह तो बेटा के स्थान पर बहू सुनना चाहती थी। क्योकि कंकू ने आज तक कभी चन्दा को बेटा नही कहा था। अतः चन्दा को हुआ कि अभी तक सास के मस्तिष्क का भार हलका नहीं हुआ है।

जेली भाभी के गले से हटकर माँ से बोली? 'अम्मा ! भाभी कितने दिनों के बाद आयी है, क्या अब भी नहीं बोलेगी भाभी से, इतनी गुस्सा है?'

'भाभी अब आयी ?' कंकू की नहीं और किसी की मन्द ध्वनि चन्दा के मस्तिष्क मे घूम रही थी।

इस ध्यान ने चन्दा के मन को दो टूक कर दिया था, अतः चाहते हुए भी वह कंकू से विशेष आग्रह न कर सकी। उसने भी सास की देखादेखी उस दिन कतई कुछ न खाया था।

उसने कंकू को हाथों का सहारा देकर विस्तरे पर लिटा दिया था। और स्वयं भी विस्तरे पर लेट कर खूब रोयी।

किन्तु लेटे लेटे उसे ननद देवर के वे निष्कपट तुतलाते बैन याद आये : 'भाभी ! अब तो तू नहीं जायेगी न ?

'नहीं, नहीं अब तो तुम मुझे निकालना भी चाहो तो मैं नहीं जाऊँगी तुम्हारा साथ छोड़ कर।'

'तो भाभी हम कब निकाल रहे हैं तुझे ? 'माँ तो कहती थी तू स्वयं ही गयी है ?'

'हाँ, मैं जैसे अपने आप गयी थी वैसे ही अपने आप आ भी तो गयी हूँ।'

'तो अब हमें छोड़कर जायेगी तो नहीं न ?'

'नहीं, नहीं, अब मैं तुम्हें छोड़कर कहीं नहीं जाऊँगी, कहते ही चन्दा के मन में दोनों के निर्मल नेह के चित्र उतर आये। और वह उन्हीं विचारों में डूब गयी।

—★—

: २५ :

बहू – बेटी

तहसील की कच्ची जेल के लोहे की शलाकाओं ने अनेक लोगों को देखा था। चोर, डाकू, खूनी, उसकी छोटी छोटी कोठरियों में कागज कपड़ा जलाकर विना कुछ बिछाये हुए रात की रात बिता देते थे। मिलनेवाले लोग इन बातों को भलीभाँति जानते थे। मानव जीवन को छूनेवाली धूप छाया इन शलाकाक्रान्त कोठरियों में आती रहती थी। और इन निर्जीवों को इस सबका अनुभव होता रहता था।

किन्तु अबकी बार इन कोठरियों की दीवारों को नया ही अनुभव हुआ। सात दिन से इस कच्ची कोठरी की दीवारों में से एक मत्त युवक की मदभरी लातों से झाड़न गिर रही थी। वह युवक बहुत विचित्र था, जब कभी वह अपनी बलिष्ठ लातें चलाकर सारी धरती कँपकँपा देता था। पर किसी को क्या मालूम कि ये लातें स्वप्न में चलती हैं या जागरण में। लातों के साथ ही उस युवक के मस्तिष्क में तो विचार समुद्र की उत्ताल तरंगे उठ रही थीं जिसका किसी को भी पता न था।

पूँजा के खून करने में क्या पाप हो गया ? उससे किसी को क्या लाभ था ? कितने घरों को उसने जला दिया था, कितने घरों को लूट खसोट मारधाड़ के बरबाद कर दिया था, गाँव की खेती बाड़ी को भी तो यह लुच्चा खूब तहस-नहस करता रहा है। गाँव के सैकड़ों ढोर भी तो उसने हाँक दिये थे कहीं के कहीं। बीसों स्त्रियों का पातिव्रत्य उसने चुटकी बजाते-बजाते लूट लिया था, भाव यह है कि गाँव में छोटा बड़ा कोई भी इसके कामों से सम्बद्ध न था, सभी को यह अच्छा न लगता था। शायद दूसरे यों ही उसे बदनाम करते होंगे, परन्तु उसकी पत्नी भी तो उसे रोती थी।

परन्तु वाह रे पुलिस और न्याय-विभाग ? कितनी सचाई है तेरी क्रियाओं में। दुष्टों को मालमलीदा और सज्जनों को विविध सजाएँ ! मालूम पड़ता है कि सरकार ये ही विभाग निकम्मे-से हैं। छोटी-छोटी बातों के अपराधी तो जेल में

भेजे जाते थे किन्तु उसके जनक पूँजा को पूछता भी न था। क्योंकि पूँजा तो पुलिस वालों का भाई-बन्द जो ठहरा। गाँव में जब कोई सरकारी कर्मचारी आता था तो वह पूँजा की सलाह से सारे काम-काज किया करता था। क्योंकि पूँजा नियमानुसार इन सभी को कुछ-न-कुछ खिलाया करता था। व्यक्तिगत रूप से जो पुलिस से मिलता था वह अलग था।

किन्तु इतना अक्षरशः सत्य होने पर एवं भगवान् की साक्षी में भी वर्तमान सरकार ऐसे व्यक्ति को अपराधी मानने के लिए कतई तैय्यार न थी। यह सरकार तो प्रत्येक बात में न्याय तथा साक्षी के बिना काम नही करती। सच्चा अभियोग झूठा, और झूठा सच्चा हो जाता है इस सरकार के रामराज्य में! कहने का सारांश यह है कि तुम भले ही कितने अच्छे संस्कारी क्यों न हो, किन्तु जब तक साक्षी न दे सको तब तक तुम्हारी बात सत्य सिद्ध नही हो सकती। भले ही तुम झूठा साक्षी दो, परन्तु साक्षी तो होना ही चाहिये। है न भगवान् भी सराचर का साक्षी?

भीमा ने और देवा ने खून किया था, और इस घटना के साक्षी न थे अतः इन्हें सजा न मिलनी चाहिये, किन्तु पूँजा को सब कुछ करते हुए भी सजा क्यों नहीं, जबकि सभी साक्षी हैं उसके!

भीमा ने अपराध नही किया इस बात की साक्षी न मिलने पर क्या वह छूट जायेगा?

वह तो अपने पिता के प्राण बचाने के लिए सच-सच कह देगा कि यह खून उसीने किया है, इसमें उसके बाप का कोई हाथ नही है। बाप घर पर होगा तो सारी बातें ठीक रहेंगी। भला बिना बाप के बुढ़िया रोगिणी माँ का कौन होगा सहारा? उन छोटे बच्चों को कौन प्यार करेगा? खेती-बाड़ी कौन सँभालेगा?'

परन्तु देवा का कहना था: 'नही बेटा! तू जियेगा तो अच्छा रहेगा, मुझे अब जीवन ही कितना बिताना है? कुछ दिनों का मेहमान हूँ। तू जीता रहेगा तो लाभ ही लाभ है। भला भीमा! तुझे मरवा कर मेरे जीवन का क्या होगा? तेरे पीछे किसी के प्राण भी तो बँधे हैं, उसका बिना तेरे क्या हो सकता है? मैंने दुनिया काफी देखभाल ली है।'

भीमा गहरे विचारों में खो जाता था, और उसके मन में भावोर्मियाँ उठ-उठ कर उसे झकझोर देती थीं, वह सोचा करता था कि पिताजी को क्या मतलब है मेरी आश्रिता चन्दा के बारे में सोचने से ? उन्हें अब चन्दा क्यों याद आने लगी है ? क्या उसके बहाने मुझे बचा कर वात्सल्य की रक्षा करना चाहते हैं ? चन्दा तो आयेगी अवश्य आयेगी, खबर सुनते ही वह तो दौड़ी दौड़ी आ गयी होगी, क्या मजाल जो उस सिंहनी को पुलिस तो क्या उनका बाप भी रोक सके ?

तो बाप को आजीवन कारावास की दारुण यातनाएँ देकर मैं छूट जाऊँ ? नहीं नहीं, ऐसा कभी नहीं होगा । मैं वीर पिता का वीर पुत्र हूँ, यह तो विश्वासघात है ।

यदि मै न छूटा और पिताजी भी न छूटें तो फिर घर....घर....घर का क्या ...... ? हाँ रामा ने यही तो साक्षी दी है कि बाप-बेटे दोनों ने ही पूँजा को मारा है । इस युग में तो जो पकड़ा जाय वही अपराधी और पकड़ में न आवे वही निर्दोष, सच्चा ! अब तो भागा भी तो नही जा सकता कहीं ।

इन्हीं विचारों में पड़े-पड़े भीमा का स्थिर मस्तिष्क भट्टी की भाँति उष्ण हो जाता था ।

अब अभियोग ऊपरी कोर्ट में पहुँचने वाला था । अन्तिम वक्तव्य लेना शेष था । भीमा की समझ में कुछ न आता था, उसका जी जब कभी उचाट हो जाता था तो उसे चन्दा की मोहनी मूरत याद आती थी । वह सोच रहा था कि चन्दा अब घर अवश्य आ गयी होगी । और वह जो कहेगी मैं वही करूँगा ।

तीन दिन से भीमा के हृदय में रह-रह कर चन्दा की स्मृति वेगवती हो गयी थी, और भीमा की आशा चौथे दिन जाकर फली ।

'हैं ! चन्दा आ गयी क्या ?' वह अपनी रानी का स्वागत करने झटपट उठ खड़ा हो गया । उसके कपड़ों के धूल झड़ रही थी, रूखे बाल अस्तव्यस्त मुख पर पड़े हुए थे । वह जैसे ही स्वागतार्थ आगे बढ़ा, तभी कोठरी के लोहे के सींचकों ने उसे पीछे धकेल दिया । उसे इस समय यह पराधीनता इतनी खल रही थी मत

पूछो। उसकी भौंएँ तन गयीं, आँखें लाल हो गयीं, वह अपने को न सँभाल सका, पर परवश था, आगे बढ़ कर आगवानी न कर सका।

वह सींखचों में बंद था, मगर उसकी वाणी अभी तक स्वतन्त्र थी, उन्मुक्ता थी। वह चिल्लाया: 'चन्दा तू आ गयी ?'

भीमा म्लान मुख, आँख की भृकुटी, और गद्‌गद ध्वनि चन्दा को रुलाने और सहमाने के लिए काफी थी। बेचारी ने बड़ी मुश्किल से तो सास को तीन-चार दिनों के बाद समझाया था और स्वयं भी कुछ-कुछ हलकी हो पायी थी कि तभी भीमा की भयंकर स्थिति ने उसे आत्म-विह्वल बना दिया था। परन्तु वह तो भीमा को ढांढ़स बँधाने आयी थी, कैसे रो जाती ?

चन्दा ने प्यार-भरे मीठे स्वर में कहा: 'क्यों मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे क्या ?'

'क्यों तुझे पता नहीं चला ?' भीमा के हाथ तो अभी तक भी शलाकाओं में गंथे......।

'ना क्यों न चलता ? बोलो क्या कहना है ?'

भीमा के कुछ कहने से पूर्व ही चन्दा आगे बोली: 'देखो, मुझे बात करने के लिए पाव घण्टा ही मिला है, जो आवश्यक बातें करनी हैं, कर लें। समय हो जाने पर वह पहरे वाला आयेगा, मुझे यहाँ से ले जायेगा।'

भीमा ने बिना सुने ही क ा: 'चन्दा ! इतने दिन कहाँ गयी थी तू ?'

'ये बातें तो मैं फिर कहूंगी, तुम्हें जो बातें करनी हैं, वे पहले कर लो।' चन्दा ने फिर वही व्यक्तिगत समय की बात की याद दिलायी।

'अच्छा, और कोई तो नहीं सुन रहा न ?'

'नहीं, यहाँ पर तो तुम और हम दोनों ही हैं।'

'तुझे मालूम तो है कि खून हो गया है ? तो बता किसने किया है वह खून ?'

'तुम्हीं बता दो न ? व्यर्थ में समय नष्ट करने से क्या लाभ ?'

'चन्दा ! यदि एक के बदले दूसरा अपराध स्वीकार कर ले तो तुझे यह पसन्द होगा या नहीं ?' भीमा बहुत धीरे से बोला।

'किन्तु कौन ओट ले अपने ऊपर ?' चन्दा ने अपने श्वसुर देवा की कोठड़ी की ओर संकेत करते हुए कहा: 'तुम या पिताजी ?'

'अपराधी के स्थान पर दूसरा निरपराध :'

'हैं !' चन्दा कुछ सोच कर बोलती हुई चुप हो गयी।

'बता न चन्दा ! इसी बात के लिए तो मैं तेरी प्रतीक्षा कर रहा था।'

'छोटा या बड़ा ?'

'चाहे कोई भी हो।'

'नहीं यह पहले बताना पड़ेगा।'

'बड़ा........।'

'और छोटा..........?' कहते-कहते चन्दा की आँखों में चमक जागी। वह भर्त्सना के स्वर में बोली : 'बूढ़े बाप को धकेल कर बेटा छूट जाये, यही न ?'

'पिताजी का ही तो कहना है।'

'और तुम्हें पिताजी की यह बात पसन्द आ गयी ?'

'नहीं तो।'

'फिर ?'

'मैं तो चन्दा ना कह रहा हूँ। किन्तु वे तेरा नाम लेकर कुछ-का-कुछ समझाने लगते हैं।'

'भला भीमा ! पिता के ऋण का यही बदला होना चाहिये ?'

'चन्दा ! तू मेरे ऊपर विश्वास नही करती। वे तो कहते हैं कि एक को दण्ड मिलने से दो को दण्ड मिल रहा है।'

'नही भीमा ! ऐसा कदापि न होगा। क्या तुम मेरे मुख पर जीवन भर के लिए कलंक-कालिमा पोतना चाहते हो ?'

'तू अब भी न समझी, चन्दा ! इसीलिए तेरी सम्मति माँग रहा हूँ।'

'किन्तु तुमने अपना विचार तो बताया ही नहीं ?'

'मेरा विचार तो ऐसा-वैसा थोड़े ही होगा ?'

'किन्तु...........?'

'किन्तु-विन्तु की बात तो जाने दो। यह बताओ तुम सजा भोगना चाहते हो या पिताजी ?'

'नहीं यह तो मैं सब समझता हूँ, पर वे तो अपने निश्चय पर दृढ़ हैं।'

'तुम उनकी बात मत करो, उन्हे तो मैं मना लूंगी । चन्दा नीच नहीं है । चन्दा को वह सुख नहीं चाहिये, जिसमें अकर्तव्य हो, मोह हो, विषय-वासना हो ! अच्छा यह बताओ, और कुछ कहना है ?'

'नही तो, अब मेरी बातों का समाधान तुमने कर ही दिया न चन्दा ।'

'तो भई भीमा ! जो सच हो भर-अदालत में कह देना । चन्दा तो ईमानदारी में ही सुख और आनन्द मनाती है ।'

'यह तो मुझे मालूम ही है ।'

'तब क्या चिन्ता है फिर ? हम दोनों जवान हैं, बिना एक-दूसरे के सहारे के भी काम कर सकते हैं, चल-फिर सकते हैं, यदि इस तरुणाई में हम अकेले न चल पाये तो आगे कौन-सा समय आयेगा ?'

भीमा चन्दा का मुंह ताकता रह गया।

चन्दा ने आगे कहा : 'जानते हो भीमा ! मुझे देर क्यों हो गयी थी ?' चन्दा ने पैर उठाते हुए कहा : 'तुम्हारी अपेक्षा घर में पिताजी की आवश्यकता धिक है । माँ तो उनके टेके के बिना बिना कमर के हो गई हैं । उन्हें समझाते-बुझाते, खिलाते-पिलाते चार दिन निकल गये, अभी उनके चित्त का क्या ठिकाना ? उनके जाने से माँ और भाई-बहन में जीवन खिल उठेगा, और तुम्हारी-हमारी तो कोई बात ही नहीं हैं ।'

दैव की माया बड़ी विचित्र है, कोई कुछ सोचता है, तो कोई कुछ । कंकू और सोच रही है, देवा कुछ और, और भीमा कुछ और ही, किन्तु चन्दा ने तो सबके विचारों को ही उलट-पुलट दिया ।

यह तो किसी धातु से बनी थी । न तो अपने अविकसित यौवन का ध्यान, न विषय-सुखों का भान । भान भी है तो उस बात का जिसे चतुर, सयाने लोग उन्नति में बाधक समझ कर छोड़ देते हैं ।

चन्दा ने आगे कहना शुरू किया : 'भीमा ! तुम घर लौट आओगे तो माँ को बेटा मिलेगा, भाई-बहन को भाई मिलेगा, यही न ? मैं और तुम दो थोड़े ही हैं ? मै रही तो तुम हो, और तुम हो तो मैं हूँ !'

बेचारा भीमा चन्दा को आँखों के रास्ते पीना चाहता था ।

अन्त में चन्दा ने कहा : 'नाथ ! यह तो हमारा ही अनुमान है न कि दो में एक छूट जायेगा, न करे भगवान् ऐसा, यदि एक भी न........... जब तक मैं हूँ, फिर किसी को घर-बार की चिन्ता करने की क्या पड़ी ? तुम्हारे घर के सारे मेरे अपने हैं, जब तुम मेरे हो तो तुम्हारे घर का सब कुछ भी तो मेरा ही हुआ न ?' पहुँचा की ओर संकेत करती हुई चन्दा बोली : 'इन पहुँचों में तुम्हारे ही नामकी चूड़ियाँ रहने वाली हैं, अतः किसी बात का सोच-विचार करने की आवश्यकता नहीं है।'

'नहीं नही, चन्दा ! मुझे ऐसी कोई चिन्ता थोड़े है।'

'फिर क्या बात है ? तुम सबकी चिन्ता छोड़ दो। मेरी बातें मन से निकाल देना।' और फिर अपने पेट की ओर संकेत करके बोली : 'मुझे अब सहयोग देने वाला आ ही जायेगा, मैं या तुम व्यर्थ में चिन्ता क्यों करें तब ?'

दोनों की आँखें जमीन में गड़ गयी थी, इतने में पाव घण्टा पूरा होने आया, और पहरेदार के बिना कुछ बोले ही चन्दा वीरांगना की भाँति आँखों से ही भीमा को प्रेमपूर्ण प्रणाम करके उठ गयी। परन्तु भीमा को चन्दा के चले जाने से बड़ा धक्का लगा। वह जोर से चिल्लाया : 'ओ चन्दा ! ओ चन्दा !'

किन्तु चन्दा सिंहनी की भाँति धड़धड़ाती वहाँ से बिना पीछे देखे-भाले ह का संकेत करके आगे बढ़ गयी। उसके संकेत की मौन भाषा थी : 'क्यों भीमं तू अभी तक नहीं समझ पाया ? धैर्य रखना, यही साथ देगा।'

देवा के साथ मिलने के लिए तो चन्दा को केवल पांच ही मिनट मिले थे।

चन्दा ने देवा की कोठरी में बिना पर्दे के जीवन में प्रथम बार हाँक मारी : 'पिताजी !' देवा उस समय अपने विचारों में खोया-खोया नीचे जमीन की ओर देख कर भविष्य की कल्पना कर रहा था।

देवा ने बहू का बिना घूँघट का मुख देख कर अपना मुख नीचे कर लिया।

चन्दा ने आगे बिना संकोच के कहा : 'पिताजी ! मुझसे लजाने की क्या आवश्यकता है ? मैं अब तुम्हारी बहू न होकर बेटा बन गयी हूँ।'

'हैं ! बेटा। क्या कह रही हो बहू तुम ?' उसकी समझ में कुछ न आया।

'मैं ठीक कह रही हूँ।' भीमा की ओर वह संकेत करते हुए बोली : 'मैं

उनसे यही तो कहने आयी थी। यह बात कैसे ठीक हो सकती है कि लड़के तो आराम से घर में बैठें और बूढ़े जेल के सींकचों में।'

'क्या कहा बहू तुमने ?'

'पिताजी ! वह सुपुत्र है जो पिता को मुसीबत में ढकेल कर स्वयं जीवन का.........'

देवा चन्दा का भाव समझ गया था, उसने चन्दा की ओर देख कर कहा : 'बेटा ! क्या मेरी अन्तिम बात पूरा न करोगी ?'

'क्यों पिताजी ! मैं तुम्हारी अन्तिम बात न रखूँ ?'

देवा का अंग अंग प्रसन्नता से ओतप्रोत हो गया। वह हर्षातिरेक में बोला : 'बेटा ! सच कहती हो तुम, बेटा बाप की साख न रखेगा तो और कौन रखेगा ?

'हाँ बेटा ! तुम कितनी अच्छी हो, समझदार हो, मेरा कहने का मतलब यही है कि मैं ही.......।'

'हैं, पिताजी ! इसी का नाम है क्या साख या सम्मान ? नहीं, नहीं यह कभी न होगा। पुत्र का मतलब ही यह है कि पिता के पसीने के स्थान पर खून बहा दे। यही है न अर्थ पिताजी बेटे का ?'

देवा ने बहू के रक्ताभ मुख को देखा जिसमें सात्विकता फूट रही थी। बेचारा देवा आगे कुछ न बोल सका। उसको बोलने ही न दिया चन्दा ने। चन्दा आगे बोली : 'पिताजी ! भले ही दूसरे लड़के पिता को मुसीबतों में डालने में सन्न होते हैं, किन्तु यह पुत्र ऐसा नहीं है, इसे तो पिता के लिए बलिदान देने में ।आनन्द आता है।'

'किन्तु बहू ! मेरा अन्त समय क्यों बिगाड़ना चाहती हो ?'

'पिताजी ! आपका अन्त समय तो बिगड़ने से रहा, पर आपकी बात मानने से हम दोनों का जीवन सचमुच किसी काम का नहीं रहेगा। दुनिया कुछ भी कहे, परन्तु हमारा आत्मा तो कहता है अभी से।'

देवा को लगा कि यह तो बनी बनायी बात बिगड़ती जा रही है। उसने अन्त में एक पाशा और फेंका : 'बेटा ! मेरे लिए अपना स्वर्णिल भविष्य क्यों धूल में मिला रही हो ?'

'हैं, पिताजी ! क्या कहा आपने ? मुझे स्वर्णिल भविष्य की याद दिलाते हैं आप ? मैं नन्हीं बच्ची नहीं हूं, मैं अपने जीवन की पवित्रता को अक्षुण्ण रखना चाहती हूँ। कृपया मुझे मेरे पथ से भ्रष्ट न करें। शायद आप मुझे नहीं पहचान पाये होंगे ?'

पहरेहार पाँच मिनट होते ही आ धमका। जाते जाते चन्दा ने देवा को प्रणाम करते करते याद दिलायी : 'पिताजी ! ठीक है न, मैंने जो प्रार्थना की है ? आप घबराना नहीं, मैं तो आपकी बहू न होकर बेटा ही हूँ हाँ जी !' कह कर चन्दा वहाँ से विदा हो गयी। देवा की और भीमा की तो कौन कहे कोठरी के जड़ सींकचे भी चन्दा की वीरता पर गर्वानुभव कर रहे थे।

★

: २६ :

काला पानी

समय को जाने में क्या लगता है ? वही उत्तरायण का दक्षिणायन हो रहा था। सूर्य की किरणें सीधी भूमि पर पड़ रही थी। पसीना ही पसीना, गर्मी ही गर्मी ! ज्वार बाजरे के खेतों में बालें पक कर झूमने लगी थीं, उनका यौवन पूर्णता पार करने लगा था। खेतिहर अपने अपने खेतों में फसल काटने में जुट गये थे।

इस वर्ष और वर्षों की अपेक्षा खेती में कुछ अन्तर था। इस अन्तर के साथ ही कंकू के स्वास्थ्य में कमी थी तो राहो और जेली की अवस्था एक वर्ष बढ़ गयी थी। यह एक वर्ष में कितना अन्तर पड़ गया था। आज भी कंकू घर से भोजन पका कर खेतों में लाती है, पर वह उल्लास और चैतन्य कहाँ है उसकी आत्मा में आज ?

दोनों भाई-बहन स्कूल में थे, कंकू अपने ढाई महीने के नाती को मीमल की शाखा में झूला डाल कर झुला रही थी। चन्दा, भागिया और दूसरे दो मजदूर बालें काटने में लगे थे।

मध्याह्न के बारह बज गये थे। सूर्य बिल्कुल सिर पर आ गया था। भोजन लाने वाले खेतों में काम करने वालों के लिए घरों से भोजन ला रहे थे। ठण्डी हवा के झोंके खाकर वह नन्हा-सा आशा का केन्द्र बच्चा सो गया था, कंकू ने अफीम की डली मुख में डाली और तब उसे होश आने पर समय का ठीक ठीक पता चला। भोजन का समय तो हो गया था, परन्तु चन्दा के मन में था कि यह थोड़ी-सी सीर और पूरी कर ले। इसी धुन में चन्दा आगे बढ़ती रही। यह काम एकाध घण्टे का था।

कंकू ने हाँक मारी : 'बहू ! चलो ना खा लेने के बाद कट जायेगा, क्या जल्दी है ?"

चन्दा ने बराबर काम करते करते कहा : 'माँ ! बस, थोड़ी-सी देर है, अभी आयी।'

कंकू को बड़ा आश्चर्य था, चन्दा में इतनी शक्ति कहाँ से आयी थी। प्रातः-काल उठकर सारा काम काज करती, चौका, चूल्हा, पानी, आटा पीसना करने के बाद खेत में ले जाने के लिए रोटी शाक दाल या कढ़ी बना लेती थी। शेष काम सायम्काल के लिए रख छोड़ती थी। बस दिन भर खेतों में मजदूरों के साथ काम करने के बाद भी घर के कामों में लग जाती थी। जाने उसे भगवान् ने कार्य करने के लिए ही बनाया हो। इस भाँति वह पाँच बजे प्रातः से आधी रात तक काम में लग कर अचम्भे में डाल रही थी, सभी को।

भीमा और देवा को कालापानी की सजा हुई थी। लोग कहते थे : 'अब चन्दा किसी दूसरे का घर बसायेगी।' वैसे तो इन निम्न वर्गों में यह प्रथा थी ही, तो लोग कहते थे क्या ? भला बीस बीस वर्ष तक यौवन के प्रथम प्रहर में कौन है जो पति का पथ देखती रहेगी ? जब इनकी बिरादरी में छोटी मोटी बातों में ही स्त्रियाँ दूसरा कर लेती हैं, तो यह कालापानी की बात है।

किन्तु ये नियम कहीं न कही अपवाद भी तो हो जाते है। चन्दा के बारे में लोगों की कल्पनायें मृग-मरीचिका बन कर रह गयी। चन्दा तो एक सतेज युवक के समान सास के कामों को अपने कन्धों पर उठा कर अपनी मस्ती की राह पर बढ़े चलो जा रही थी। उसने तो श्वसुर और पति की खेती को करते रहने का निश्चय कर लिया था। उसके सिर पर शंभू पटवारी के भी भीमा के नये ब्याह वाले रुपये आ पड़े थे। वह सदा तकादा किया करता था। चन्दा ने सोचा था कि नेमीचन्द सेठ अवश्य कुछ न कुछ सहायता करेगा, पर उसने सिवाय अपने डेढ़ सौ रुपयों के तकाजे के और कोई सहायता न दी। अब उसे सहायता देने की आवश्यकता ही क्या थी ? समय तो निकल ही गया था मुसीबत का। पर चन्दा के कहने से उसने एक बात कही : 'देख चन्दा ! वैसे तो मैं आजकल किसी को छदाम भी नहीं देता, किन्तु तू कहती है तो देने के लिए तैय्यार हूँ। बस अपनी दो बीघे जमीन रहन रख दो मेरे पास।'

चन्दा ने सोचा कि क्या वह इस घर में इसीलिए आयी है ? सेठ समझता होगा कि अब है ही कौन इनके घर में कमाने-धमाने वाला ? अतः सारी जमीन ही क्यों न हड़प ली जाय। किन्तु तभी उसकी आत्मा गरज उठी : 'कौन है

ऐसा जो उसके जीते जी जमीन की एक सूत पट्टी भी ले सके ? मैं अपने सिर पर कर्ज क्यों रखूँ ?'

चन्दा ने अपने एक तोला सोने की ज़ंजीर, कंकू के दो तोले के मुरखले, भीमा के हाथ में पहनने की साँकल और जेली के पैर की चांदी की पाजेब बेच कर नेमीचन्द सेठ एवं शंभू पटवारी का चुकता हिसाब कर दिया। कंकू को अपनों की तो ठीक लेकिन बहू की चीज बेचने में बड़ी पीड़ा हो रही थी, पर वह पर-वश थी बहूरानी के आगे।

बीच में प्रसवकाल आया। चन्दा को पुत्र-रत्न की प्राप्ति हुई। पुत्र भी क्या था ? बड़ा हृष्टपुष्ट शरीर, भीमा का मुख और चन्दा की गोराश, दादी के हाथ-पाँव तो दादा का सुदृढ़ शरीर, हनुमान का जन्मते ही सूरज पकड़ने के लिए दौड़ने की बात तो क्या सच्ची होती, किन्तु भीमा के लड़के की बात तो अक्षरशः सत्य निकली। यह तो जन्मते ही हँसा और वचवच करके दूध भी पीने लगा।

चन्दा तो दसवें दिन अपने प्रसव कार्य से छुट्टी लेकर घर के काम-काज में लग गयी। और बीस-पच्चीस दिनों के बाद तो सारे बाहर भीतर के काम ऐसे करने लगी, मानो इसे बच्चा हुआ ही नहीं।

शनैःशनैः वर्ष पूरा हो गया, एक ही बैल के सहारे, दूसरों के सहारे से चन्दा ने बड़ी धीरता से दस बीघे की खेती की, जिसमें ज्वार, बाजरा, अरहर, धान इत्यादि फसल तैय्यार हुई। इसके अतिरिक्त दो बीघे में कपास भी बोयी।

लोग चन्दा के कामों को देख कर हैरान थे। बड़े-से-बड़े दृढ़ किसान भी उससे मात खा गये थे। अरे ! वह कच्छा मार कर जब काम करती तो क्या मजाल जो उसे कोई थका दे ! लोग कहते : 'है बड़ी वीर यह !' तभी कुछ कहते : 'आज की वीर है, जिसने पुरुषों को नीचा दिखा कर साँड नाथ दिया था, उसके सामने ये काम क्या हस्ती रखते हैं ?' किसी का कहना था : 'साँड से भी भयंकर बात तो यह है बीस वर्ष तक पति का मुंह नहीं देखेगी तो भी कितनी मस्ती से घर-बार को चला रही है ?' किन्तु कुछ को तो अब भी अविश्वास था चन्दा के ऊपर। वे कहते : 'अजी ! बीस वर्ष तक कौन रहता है ? देख लेना दो-चार सालों में, करती है किसी को या नहीं ? तीन जनों का काम उठाना बड़ा असम्भव है।'

कोई इसका प्रत्युत्तर देते-देते कहता : 'नहीं भाई ! कालापानी का मतलब बीस वर्ष तो होता है, किन्तु दो-चार वर्ष तो छुट्टियों के कट जाते हैं, अच्छा व्यवहार हो तो दो-चार वर्ष उसके कट जाते हैं, फिर इसी बीच में कोई राज्यारोहण, राजकुमार जन्मा या राज्य का कोई विशिष्ट आनन्दोल्लास का प्रसंग आ जाये तो वह रही-सही कारावास की सजा भी समाप्त हो जाती है । तुम्हें मालूम तो होगा छगन पन्द्रह वर्ष में छूट आया था ।'

एक दूसरा बोला : 'राज्यारोहण के उत्सव पर गेमल दस वर्ष में ही छूट आया था, किन्तु उसका साथी न छूटा । भाग्य की बात है यह भी !'

तीसरा बोला : 'तो क्या दस वर्ष मामूली होते हैं ? इतने वर्षों तक भी घर चलाना बड़ा मुश्किल है । देख लेना, जहाँ थोड़ा-सा थकी नहीं कि ढूँढ़ा दूसरा ठिकाना ।'

'रणछोड़ ! तू बड़ा भोला है, तुझे क्या मालूम कि यह स्त्री साधारण स्त्रियों सी नहीं है । इसमें और दूसरियों में आकाश-पाताल का अंतर है ।'

'हाँ, इतना तो मैं भी समझता हूँ कि इसमें बड़ी विशेषताएँ हैं । पति के रहते तो पीहर में रही और जेल चले जाने पर ससुराल में आ गयी । है न बड़ी हैरानी की बात ?'

'यही तो बात है भैय्या रणछोड़ ! इसके मन में जो कुछ बैठ गया है यह उससे प्राण रहते डिग नहीं सकती ।'

'अरे भाई ! यह तो ठीक है कि दोनों बाप-बेटों ने खून किया था और वे दोनों कालापानी का दण्ड भोग रहे हैं, पर यह गरीब क्यों निरपराधी होते हुए भी कालेपानी की सजा भुगत रही है ?'

'नहीं भाई ! यहाँ की सजा के सामने कालेपानी की सजा तो कुछ भी नहीं है, वहाँ तो निर्दिष्ट ही कार्य करना पड़ता हैं । और ऊपर कोई उत्तरदायित्व नहीं है । परन्तु यहाँ पर तो सारे घर की चिन्ता है, सबके लिए रोटी-कपड़ा जुटाना है, दवा-दारू की व्यवस्था करनी है, देवा का व्यवहार चलाना है, छोटे बच्चों का पालन करना है, अतः यदि वह सब बातों को दुःखदायिनी मान ले तो फिर यह कितनी जियेगी ?'

'लेकिन तुम लोग तो व्यर्थ की बातें करते हो। उसे तो कुछ लग भी नहीं रहा है।'

धीरे-धीरे ये चर्चाएँ समयगति के साथ आगे बढ़ गयीं। अब तो किसी को भी चन्दा के व्यवहार से पुरानी बातें याद भी न रहीं। उसके व्यवहार से घर वाले सास, ननद-देवरों की तो बात ही क्या, सारे पास-पड़ोसी प्रसन्न थे। खेती भी चन्दा की और वर्षों की अपेक्षा कहीं अधिक और अच्छी हो रही थी। इन सब का कारण था चन्दा का सौजन्य एवं श्रम। लेन-देन में बिल्कुल स्पष्ट थी, न तो किसी से कर्ज लेना, न किसी को देना। यदि कभी वक्त-जरूरत पड़ जाये तो उसे देने में कोई आपत्ति न थी।

कंकू को अपनी बहूरानी के कन्धों पर पड़ा भारी बोझा मालूम था, अतः वह अपनी शक्ति के अनुसार पूरा-पूरा सहयोग देना चाहती थी। लेकिन रोगी और बूढ़ा शरीर कितना साथ दे सकता था? परन्तु चन्दा तो घर के मामूली काम भी सास को करने न देती थी। हाँ कंकू को एक काम अवश्य करना पड़ता था; कंकू के ऊपर चन्दा ने जाने या अनजाने समझ लो, अपने बेटे का काम अवश्य सौंप रखा था। यदि कंकू इतना भी सहयोग न देती तो चन्दा अपने बेटे को रखने के सिवाय और कोई काम न कर पायी होती। क्योंकि चन्दा बच्चे को प्राणों से भी अधिक प्यार करती थी। वह बच्चा कंकू के पास सोता-जागता, हँसता-खेलता था। चन्दा का तो दूध पिलाने का ही काम था।

आज भी नियमानुसार बच्चा कंकू के पास पेड़ पर लटके झूले में सो रहा था, कंकू को डर लग रहा था कि कही मुन्नाराजा जग पड़ा तो बहू को खाना खाना हराम हो जायेगा। कंकू अब हाँक न मार कर स्वयं ही चन्दा के पास जा पहुँची। और हाथ से श्रमसीकर सिक्त गरम-गरम कपोलों को सहला कर बोली: 'बहू! तू पागल तो नही हो गयी है? चल न भोजन कर ले। एक तो सवेर-अबेर का पकाया भोजन, सो भी समय पर अप्राप्त! जहन्नुम में जाय ऐसा काम-काज।'

सास की प्यार-भरी वाणी ने चन्दा को अनिच्छा पूर्वक वहाँ से उठा दिया।

वह पसीना पोंछती हुई खड़ी हो गयी और चुपचाप सास के पीछे मन्त्रमुग्ध-सी चल पड़ी।

चन्दा के साथ ही दूसरे जने भी काम से निबट कर सुस्ताने लगे। किन्तु चन्दा को छाया में बैठ कर भी काम करना शेष था। उसने आँच जलाकर कढ़ी गरम की, और बाद में रोटियाँ।

चन्दा ने मीठे शब्दों में सारे नौकर-चाकरों को बड़े प्रेम से भोजन जिमाया। जहाँ किसी को भोजन करने में मन्द देखा तो झटसे जबर्दस्ती रोटी और दे दी। मजदूर भी चन्दा की मानवता के कायल थे। भला कौन है ऐसा जिसे गरीब मजदूरों से इतनी सच्ची सहानुभूति हो ? होती भी क्यों नही, स्वयं भी तो निर्धन जो थी वह।

सबको जिमाने के बाद सास बहू की पारी आयी।

जैसे ही सास ने अपने लिए रोटियाँ सेकनी चाहीं वैसे ही चन्दा ने बुढ़िया के हाथ से रोटी छीन ली और स्वयं सेकने बैठ गयी। कंकू ने जब प्रतिवाद किया: 'बहू ! मेरे हाथ थोड़े टूट गये हैं, अरी रानी बहू ! तू ने तो मुझे बेभाव खरीद लिया है, भला मेरा भी क्या जीवन है जो इतनी गुणवन्ती बहू को पिदाये जा रही हूँ।'

चन्दा कहती : 'क्यों माँ ! मुझसे रुष्ट हो क्या ! जो मुझे मनपसन्द कार्य करने के लिए भी ना कहती हो ! यह तो मेरे अहोभाग्य हैं, कि मुझे बड़ों की सेवा करने का अवसर आया।'

कंकू तो क्या चंदा से जीतती जीतने वाले हार गये थे। चन्दा ने रोटी सेककर उन्हें कढ़ी में मींडकर दे दिया कंकू को। वह तो कहने लगी : 'माँ ! अभी तो कुछ भी नहीं खाया तुमने, एक और ले लो ना !' फिर अपने साथियों की ओर मुख करके कहती : 'अरे भाई तुम तो कुछ खाते ही नहीं हो ! हाँ तुम्हें रानी के भोजन के सामने हमारा नीरस भोजन क्या अच्छा लगे ?'

वे कहते : 'चन्दा भाभी ! तेरे सामने वे बेचारी क्या बना पायेंगी। सच कहते हैं तू जाने क्या डाल देती है भोजन में ! ऐसा स्वाद तो हमने कहीं पाया ही नहीं है ?'

इस प्रकार उन लोगों में वार्तालाप हो ही रहा था कि झूले में सोते हुए नन्हें मुन्ने ने हाथ पैर चलाने शुरू कर दिये । कंकू को तो यही डर था कि कहीं छोटा न उठ जाये, नहीं तो बेचारी चन्दा को रोटी खानी हराम हो जायेगी । वही होने वाला था, किन्तु कंकू ने अपना काम सँभाल लिया और वह मुन्ने को झुलाने लगी । उसने बहू को सुनाते हुए कहा : 'बहू ! तू तो आराम से रोटी भी नहीं खा पाती ?'

चन्दा चुपचाप भोजन करने लगी और दूसरे साथियों ने आराम के साथ हुक्का में दम लगाना शुरू कर दिया ।

सायंकाल सिर पर था, सब लोग जल्दी जल्दी घर लौटने की फिकर में थे, अपनी चीज वस्तु सँभाल रहे थे, किन्तु चन्दा को अपने प्यारे ननद देवर की चिन्ता थी। वह उनके लिए कुछ कम सी बाजरे पकी बालें ले रही थी, जिन्हें वे दोनों रात के समय बड़े प्रेम से भून भान कर खायेंगे।

घर आकर नियमानुसार चन्दा ने भोजन बनाने का श्री गणेश किया । चूल्हा सुलगाकर उस पर खिचड़ी रख दी । और स्वयं पानी लाने के लिए नदी पर जाने से प्रथम पशुओं को न्यार चारा डालने लगी । पशुओं को चारा देने के बाद वह नदी पर पानी भरने चली गयी ।

पानी भरने के बाद बच्चों को बालें भून दी और सबको खिला पिलाकर टंच कर दिया । इतने में रात के दस बजे का समय हो गया था । वह सोने के लिए थकी थकायी जैसे ही खाट पर लेटी थी कि तभी उन दोनों ने चन्दा के हाथ दबाये ।

'क्यों ! अभी सोये नहीं तुम !'

'हाँ, हाँ, खूब आयी रोज रोज बहकाने वाली !' चन्दा के हाथों को दृढ़ता से पकड़े हुए दोनों बहन भाई कहने लगे ।

खाट में पड़ी पड़ी दमा की खाँसी लेती हुई कंकू बोली : 'अरे भूतनी के मरो ! बेचारी को दिन भर तो मौका ही नहीं मिलता, अब तो कुछ आराम करने दिया होता !'

'माँ हमारी बातों में तुम्हें पड़ने की क्या आवश्यकता है ?' राहो गुर्राता सा

ला: 'भाभी तो रोज हमें कहानी सुनाने को कहती है, किन्तु सुनाती ही हीं है।'

'मैं क्या करूँ, तुम्हीं सो जाते हो बिना सुने रोज!'

'परन्तु आज कहाँ सोये हैं हम!'

'नहीं सोये हो तो कोई बात नहीं है, यह आज नहीं कहेगी; जानते भी हो ाज दिन भर कितने कसाले का काम किया है तुम्हारी भाभी ने! जरा सो तो ने देते इसे!' कंकू के स्वर में क्रोध था।

'माताजी! नहीं नहीं, मैं तो बेचारों को जानती हो कब से टाल रही हूँ, नका भी तो दिल है। कहीं कच्चा दिल बैठ न जाये हाँ!'

और वे दोनों बातों की मादकता में न जाने कब की निद्रा की गोद में जा वराजे थे! किसी को पता न चला।

—— o ——

हमारा उपन्यास साहित्य

नया रास्ता	रतीलाल त्रिवेदी
मीराँ प्रेमदिवानी	रामचन्द्र ठाकुर
आम्रपाली	,, ,,
बीरबल	,, ,,
नर्तकी	उमाकान्त
सर्व मंगला	ले० मामा वरेरकर आचार्य विभूदेव द्वारा अनुवादित
काला पानी	ले० ईश्वर पेटलीकर
तूफ़ान	ले० जॉर्ज स्टूअर्ट; परदेसी द्वारा अनुवादित
महाअमात्य चाणक्य	ले० गुर्जर साहित्य-सम्राट श्री 'धूमकेतू'
चौलादेवी	,, ,,
पहाड़ और फूल : भाग १ और २	रमणलाल वसन्तलाल देसाई
बाला जोगिन	,, ,,
सची पोलोमी	,, ,,

वोरा अेन्ड कंपनी पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड, बम्बई-२